शिक्षा संस्कार

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन

Version 1

१६ अक्टूबर २०१८

श्रद्धेय श्री ए. नागराज जी द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) में से शब्दों के संदर्भों के खोजने के क्रम में यह "शिक्षा संस्कार" शब्द के संदर्भों का संकलन है। यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वाङ्ग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वाङ्ग्मय को ही सही माना जाए। यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रोशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें।

Version 0.1		Roshani Sahu, 16/10/2018

शिक्षा संस्कार की परिभाषा

- **शिक्षा संस्कार** – ज्ञान विवेक विज्ञान सहज बोध होना। (समझ में आना, स्वीकार होना) **(पृष्ठ नंबर: 219) (परिभाषा संहिता, संस्करण : तृतीय 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016)**

अनुक्रमणिका

स्वास्थ्य और इससे संबन्धित शब्द को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1. मानव व्यवहार दर्शन ३
2. मानव कर्म दर्शन ५
3. मानव अभ्यास दर्शन ७
4. मानव अनुभव दर्शन ९
5. समाधानात्मक भौतिकवाद १०
6. व्यवहारात्मक जनवाद १७
7. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद २८
8. व्यवहारवादी समाजशास्त्र ४०
9. आवर्तनशील अर्थशास्त्र ६८
10. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान ८२
11. मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या ९६
12. जीवन विद्या – एक परिचय ११६
13. विकल्प ११९
14. जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु १२०
15. मानवीय आचरण सूत्र १२१
16. संवाद – भाग १ १२३
17. संवाद – भाग २ १२३
18. 10 सोपानीय व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षा संस्कार १२४

मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- **परंपरा में संपूर्णता**

  – मानवीय **शिक्षा संस्कार**।

  – मानवीय संविधान।

  – मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था। **(मध्यस्थ दर्शन के मूल तत्व में से)**

- मानव गलती करने का अधिकार लेकर तथा सही करने का अवसर एवं साधन लेकर जन्मता है. उपरोक्तानुसार मानव को न्यायवादी बनाने हेतु तथा न्याय में निष्ठा उत्पन्न करने हेतु उसे स्वभाववादी बनाने के लिए व्यवस्था व **शिक्षा संस्कार** का योगदान आवश्यक है। **(अध्याय: 15, पृष्ठ नंबर: 111)**
- जागृत मानव परंपरा में राज्य का स्वरूप अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र अध्ययन से और आचरण से व्याख्या होने के आधार पर विधि को पहचानने के मुख्य रूप से पाँच मुद्दे पाए गए हैं. यह– (१) मानवीय **शिक्षा संस्कार**, (२) न्याय–सुरक्षा, (३) उत्पादन कार्य, (४) विनिमय कोष, (५) स्वास्थ्य–संयम के रूप में गण्य हैं.

  राज्य प्रक्रिया में उक्त पाँचों व्यवस्थाएं सार्वभौमिकता के अर्थ में ही सार्थक होना पाया जाता है. मानवीय **शिक्षा–संस्कार** की सफलता अर्थ–बोध होने के रूप में है. न्याय–सुरक्षा की सफलता संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभय–तृप्ति के रूप में सार्थक होना पाया जाता है. उत्पादन–कार्य हर परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में, समृद्धि के अर्थ में सार्थक होना पाया जाता है. विनिमय–कोष श्रम–मूल्य के पहचान सहित, श्रम विनिमय पद्धति से सार्थक होता है. और स्वास्थ्य–संयम मानव–परंपरा में जीवन जागृति को प्रमाणित करने योग्य शरीर की स्थिति–गति के रूप में सार्थक होता है. यह सब मानव सहज जागृति के अक्षुण्णता का द्योतक है अथवा सार्वभौम व्यवस्था, अखंड समाज और उसकी अक्षुण्णता का द्योतक है. यही राज्य वैभव का स्वरूप है. इस विधि से हर परिवार समाधान–समृद्धि पूर्वक जीना होता है. **(अध्याय:16 (ii), पृष्ठ नंबर: 130–131)**

- यह विकल्प अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में है. इस प्रस्ताव में मानव ही अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण देना प्रतिपादित है. साथ ही मानव ही प्रमाण होने का साक्षी को भी संजो लिया है. इस मुद्दे पर सर्वमानव का ध्यानाकर्षण करना आवश्यक है ही. इस क्रम में समुदाय चेतना से मानव चेतना, मानव चेतना से समाज चेतना में परिवर्तित होना ही महत्त्वपूर्ण घटना है. ऐसे स्थिति की सफलता मानव ही, शिक्षा–संस्कार पूर्वक, सर्वतोमुखी समाधान संपन्न होना ही एक मात्र उपाय है. इसे सार्थक बनाने के क्रम में ही मानव व्यवहार दर्शन, मानव के सम्मुख प्रस्तुत है. इस प्रकार समग्र विकास और जागृति को परंपरा में प्रमाणित करने हेतु एक मात्र इकाई मानव है क्योंकि अस्तित्व में केवल मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में है. भ्रमित मानव के द्वारा भ्रमित मानव के चार ऐश्वर्यों (रूप, बल, पद, धन) का शोषण होता है. **(अध्याय:17, पृष्ठ नंबर: 150–151)**

- **गुरु, प्रामाणिक–**

  गुरु: – **शिक्षा–संस्कार** नियति क्रमानुशंगीय विधि से जिज्ञासाओं और प्रश्नों को समाधान के रूप में अवधारणा में प्रस्थापित करने वाला मानव गुरु है.

  प्रामाणिक: – प्रमाणों का धारक–वाहक, यथा अस्तित्व–दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण समुच्चय को प्रयोग, व्यवहार, अनुभवपूर्ण विधि से प्रमाणित करना और प्रमाणों के रूप में जीना. **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर:176)**

- **शिष्य, जिज्ञासु**

  शिष्य: – जागृति लक्ष्य की पूर्ति के लिए **शिक्षा–संस्कार** ग्रहण करने, स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति, जिसमे गुरु का सम्बन्ध स्वीकृत हो चुका रहता है.

  जिज्ञासु: – जीवन ज्ञान सहित निर्भ्रम शिक्षा ग्रहण करने के लिए तीव्र इच्छा का प्रकाशन। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर:176)**

मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- सहअस्तित्ववादी विचार के अनुसार ज्ञान, विवेक, विज्ञान के अनुसार सर्वमानव को मानव लक्ष्य के अर्थ में **शिक्षा संस्कार** को अपनाना आवश्यक है। इसमें मानवीयता पूर्ण आचरण मानव लक्ष्य के अर्थ में स्पष्ट रहना आवश्यक है, क्योंकि सभी अवस्था में आचरण के आधार पर ही उन अवस्थाओं का लक्ष्य पूर्ण हुआ समझ में आता है। जैसे पदार्थावस्था में सम्पूर्ण वस्तु परिणाम के आधार पर यथास्थिति रूपी लक्ष्य का आचरण करता हुआ देखने को मिलता है। इसी प्रकार प्राणावस्था और जीवावस्था में भी कार्यरत सभी इकाई उन–उन अवस्थाओं के लक्ष्य के अर्थ में आचरण करती हुई स्पष्ट है, यथा प्राणावस्था अस्तित्व सहित पुष्टि के अर्थ में, बीज से वृक्ष, वृक्ष से बीज तक यात्रा करता हुआ देखने को मिलता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीव संसार, अस्तित्व, पुष्टि सहित वंशानुषंगीय विधि से जीने की आशा में आचरण करता हुआ देखने को मिलता है। इतने सुस्पष्ट स्थितियों को देखने के उपरान्त यह भी आवश्यक रहा कि मानव का आचरण अस्तित्व, पुष्टि, आशा सहित सुख को प्रमाणित करने के अर्थ में होना है जिसके लिए ही मन:स्वस्थता प्रमाणित होना स्वाभाविक रही। **(अध्याय:3 (4), पृष्ठ नंबर: 68–69)**
- मानव लक्ष्य – समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करने और उस आधार पर जीवन लक्ष्य (मन:स्वस्थता) – प्रमाण ही सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द को सार्थक बनाने के अर्थ में मानव **शिक्षा संस्कार** की आवश्यकता सदा–सदा से बनी हुई है। इसकी सफलता ही मानव कुल का सौभाग्य है। **(अध्याय:3 (4), पृष्ठ नंबर: 70)**
- **'मानव कुल और रासायनिक–भौतिक क्रियाकलाप का सार्थक प्रमाण'**

  शिक्षा की सम्पूर्ण वस्तु सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में रासायनिक, भौतिक एवं जीवन क्रिया के रूप में ही है। इसमें से, इनके अविभाज्य रूप में मानव परम्परा का सम्पूर्ण क्रियाकलाप, व्यवहार, सोच विचार, समझ है। समझ के अर्थ में ही हर मानव का अध्ययन करना होता है। समझ अपने में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होती है। इसी अर्थ में सम्पूर्ण अध्ययन सार्थक होना पाया जाता है।

  अस्तित्व में सम्पूर्ण इकाईयाँ, रासायनिक, भौतिक एवं जीवन क्रिया के रूप में परिलक्षित है ही। गठनशील परमाणु से लेकर अणु, अणुरचित पिंड, प्राणकोषा, वनस्पति संसार, जीव संसार सभी स्वयं में व्यवस्था में रहते हुए, अपने–अपने निश्चित आचरण को व्यक्त करते हुए समझ में आते हैं। ऐसे प्रमाण में से ये धरती सबसे बड़ा प्रमाण है। धरती एक व्यवस्था के रूप में काम करती है। व्यवस्था के रूप में काम करने का प्रमाण ही है, इस धरती पर भौतिक–रासायनिक और जीवन क्रियाकलाप पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञान अवस्था के रूप में प्रकाशित है। इससे बड़ी गवाही क्या होगी। इस गवाही के आधार पर अर्थात् पदार्थ, प्राण, जीव अवस्था के निश्चित कार्यकलाप के अनुसार, मानव अपने व्यवस्था में होने का भरोसा कर सकता है।

  मनुष्य को सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व सहज विधि से स्वयं व्यवस्था रूप में जीने का सूत्र और व्याख्या स्वयंस्फूर्त विधि से समझ आता है।

  सहअस्तित्ववादी विधि से सम्पूर्ण मानव को एक अखण्ड समाज के रूप में पहचानना हो पाता है। अखण्ड समाज मानसिकता का पूर्ण समझ ही ज्ञान, विज्ञान, विवेक रूप में सार्वभौम व्यवस्था का ताना–बाना स्पष्ट हुआ रहता है।

ऐसे सर्वशुभ के अर्थ में ही मानव व्यवस्था के रूप में सार्थक होना पाया गया। इसलिये सार्वभौम व्यवस्था सम्पन्न होना, मानव कुल के लिये परम वैभव, सूत्र और व्याख्या है। इस प्रकार मानव कुल, मानव संचेतना पूर्वक ही अपने में से सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज में भागीदारी करने की प्रवृत्ति स्वयंस्फूर्त होना पाया जाता है। इसका एकमात्र कारण है कि सहअस्तित्ववादी विधि से मानव अपने को पहचानता है।

मानव जाति आचरण में धर्म प्रधान है, जीव जातियाँ स्वभाव प्रधान, वनस्पतियाँ गुण प्रधान, पदार्थ रूप प्रधान है। मानव धर्म अपने में सुख के आधार पर समाधान प्रमाणित होना आवश्यक हो चुका है। सर्वतोमुखी समाधान पूर्ण **शिक्षा संस्कार** ही इसके लिये परम्परा और स्त्रोत है। यही जागृत परम्परा है। **(अध्याय: 3 (4), पृष्ठ नंबर: 70 – 71)**

- सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व स्थिर है। सहअस्तित्व में ही विकास और जागृति निश्चित है। इस धरती पर हम मानव इस तथ्य का अध्ययन करने योग्य स्थिति में हो चुके हैं। सर्व शुभ का दृष्टा, कर्त्ता, भोक्ता, उसके मूल में **शिक्षा संस्कार** से पाई गयी ज्ञान, विज्ञान, विवेक का धारक–वाहक केवल जागृत मानव ही है।... **(अध्याय:3(5), पृष्ठ नंबर:71)**
- मानव परम्परा जागृत होने में स्थिरता, अस्तित्व सहज विधि से प्रमाणित होता है, सुस्पष्ट होता है। निश्चयता मानवीयता पूर्ण आचरण विधि से प्रमाणित होता है, सुस्पष्ट होता है। इसकी अपेक्षा मानव में पीढ़ी से पीढ़ी में रहा आया है। इस प्रकार मानव का विकास और जागृति को प्रमाणित करने में समर्थ होना ही, मानव का उत्थान, वैभव, राज्य होना पाया जाता है। राज्य का परिभाषा भी वैभव ही है। उत्थान का तात्पर्य मौलिकता रूपी ऊँचाई में पहुँचने से या पहुँचने के क्रम से है। वैभव अपने स्वरूप में परिवार व्यवस्था और विश्व परिवार व्यवस्था ही है। ऐसी व्यवस्था में भागीदारी मानव का सौभाग्य है। इस क्रम में अध्ययन, **शिक्षा संस्कार** के रूप में उपलब्ध होते रहना भी व्यवस्था का बुनियादी वैभव है। वैभव ही राज्य और स्वराज्य के रूप में सुस्पष्ट होता है। स्वराज्य का मतलब भी मानव के वैभव से ही है। यह वैभव समझदारी पूर्वक ही हर मानव में पहुँच पाता है। यह **शिक्षा** पूर्वक लोकव्यापीकरण हो पाता है। ऐसी व्यवस्था अपने आप में द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध मुक्त रहना इसके स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक रहना पाया जाता है। यही सार्वभौम व्यवस्था का तात्पर्य है। **(अध्याय:3 (6), पृष्ठ नंबर: 75–76)**

- परावर्तन प्रत्यावर्तन क्रिया के संबंध में काफी अध्ययन संभव हो गया है। इसी क्रम में परंपरा में **शिक्षा–संस्कार** एक अनूस्युत क्रिया है। परावर्तन विधि से अध्यापन, प्रत्यावर्तन विधि से अध्ययन होना पाया जाता है। अध्यापन एक श्रुति अथवा भाषा होना सुस्पष्ट है। भाषा का अर्थ है अस्तित्व में वस्तु होना सुस्पष्ट हो चुकी है, भाषा के अर्थ के स्वरुप में अस्तित्व में वस्तु बोध होना ही मूल आशय है। यही प्रत्यावर्तन क्रिया है। सह अस्तित्व में हर वस्तु बोध अनुभव मूलक विधि से परावर्तित हो पाती है। इस विधि में अध्ययन कार्य अनुभवगामी पद्धति से होना स्पष्ट हुई। यही प्रत्यावर्तन की महिमा है अथवा उपलब्धि है। इस विधि से परावर्तन अध्यापन क्रिया है। अर्थ बोध होना और अनुभव होना अध्ययन का फलन है। अर्थ बोध तक अध्ययन, अनुभव, प्रत्यावर्तन का अमूल्य फल है। अर्थ बोध का अनुभव के अर्थ में प्रत्यावर्तित होना एक स्वभाविक क्रिया है। क्योंकि हर अर्थ का अस्तित्व में वस्तु बोध होता है। अनुभव महिमा की रोशनी से वंचित होकर अध्ययन में वस्तु बोध होता ही नहीं। अभी तक भी जितने वस्तु बोध हुई हैं, ये सब अनुभव में ही प्रमाणित होकर अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुए हैं। **(अध्याय:3 (12), पृष्ठ नंबर: 119)**

मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2018)

- **"मानव जीवन में गुणात्मक जागृति के लिए शिक्षा–संस्कार प्रसिद्ध है।"** गुणात्मक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करने का कार्यक्रम पद्धति, वस्तु, विषय, प्रणाली एवं प्रक्रिया ही मानव जीवन में शिक्षा–संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। यह क्रम से माता–पिता, परिवार, संपर्क, संबंध, शिक्षा मंदिर, शिक्षा संस्थान एवं मानवकृत वातावरण से सम्पन्न होता है। प्रत्येक मानव जन्म से जाति एवं वर्ग विहीन है। शिक्षापूर्वक ही उसमें वर्गीय, जातीय संस्कारों को स्थापित किया जाता है, जो मानवता के लिए वांछित घटना नहीं है। इसका विकल्प अर्थात् मानवीयतापूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता का अप्रचुर होना ही ऐसी अवांछित घटना के लिए विवशताएं हैं। इसका निराकरण मानवीयतापूर्ण जीवन चित्रण एवं ऐसी चेतना की परम्परा ही है, जो शुद्धत: मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता में विलीन होती है। गुरू मूल्य में लघु मूल्य का विलय होना पाया जाता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी में क्रम से शैशव, बाल एवं किशोरावस्था से ही माता–पिता, परिवार, शिक्षा मन्दिर, शिक्षा संस्थान, व्यवस्था–पद्धति, प्रचार, प्रकाशन,प्रदर्शन–समुच्चय द्वारा मानवीयता पूर्ण जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को उद्बोधन–प्रबोधन कराने वाली प्रक्रिया परम्परा ही वर्ग विहीन चेतना को प्रस्थापित करने का एकमात्र उपाय है। यही मानवीय संस्कृति का मौलिक देय है। संस्कृति एवं सभ्यता से संबद्ध शिक्षा सर्वसुलभ न होने से अखंड सामाजिकता में प्रत्येक व्यक्ति के भागीदार होने की संभावना नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका सर्वसुलभ होना अनिवार्य है। यही **शिक्षा–संस्कार** की गरिमा, महिमा एवं जीवन में अविभाज्यता है।

  शिक्षा में प्रधानत: मानव की परस्परता में निहित स्थापित एवं शिष्ट मूल्य का प्रबोधन है साथ ही वस्तु मूल्यों का शिक्षण भी। स्थापित एवं शिष्ट मूल्य की पूर्ण स्वीकृति एवं अनुभूति ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है, जो व्यवहार में प्रमाणित होता है। व्यवहार में केवल स्थापित मूल्य का निर्वाह एवं शिष्ट मूल्य का प्रकटन होता है। यही मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता की चरितार्थता है। इसके अभाव की स्थिति में कितने भी विशाल वस्तु मूल्य की उपलब्धि एवं योग्यता का उर्पाजन करने पर भी सामाजिकता की सिद्धि होना संभव नहीं है। मानवीयता की सीमा में ही सामाजिकता सिद्ध होती है। सामाजिकता से ही सुसंस्कृति की अक्षुण्णता होती है। यही सत्यता प्रत्येक मानव को प्रत्येक स्तर एवं स्थिति में अमानवीयता से मानवीयता, मानवीयता से अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में प्रबोधन पूर्वक संक्रमित होने के लिए बाध्य की है। यही उदय एवं जागृति का प्रधान लक्षण है।

  धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा एवं करूणा पूर्ण स्वभाव से अभिभूत होकर व्यवहार में आरूढ़ होने के लिए प्रदान की गई शिक्षा एवं सम्मान, आदर एवं पुरस्कार पूर्वक सम्पन्न की गई प्रक्रिया ही मानव जीवन में उपादेयी सिद्ध हुई है। शिक्षा के माध्यम से ही श्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना होती है। न्यायान्याय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य पूर्ण दृष्टियों की सक्रियता पूर्वक सुयोजित पद्धति प्रक्रिया सहित व्यवहार एवं आचरण करने की क्षमता एवं आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने योग्य योग्यता को प्रबोधन पूर्वक व्यवहृत करने योग्य स्थिति, परिस्थितियों का निर्माण कर देने पर सर्वश्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना होती है। वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा एवं भ्रम मुक्ति के संदर्भ में किया गया प्रबोधन सर्वोत्तम संस्कारों को स्थापित करता है। मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं कर्माभ्यास पूर्ण उत्पादन **शिक्षा–संस्कार** से विद्यार्थियों में अभ्युदय अवश्यंभावी होता है। फलत: मूल्य के अनुभव योग्य क्षमता प्रकट होती है। ऐसी

संस्कार प्रक्रिया ही मानवीयता को व्यवहार रूप में साकार रूप प्रदान करती है। मूल्य व लक्ष्य तंत्रित राज्यनीति एवं धर्मनीति के प्रबोधन से श्रेष्ठ संस्कार स्थापित होते हैं। मानवीयतापूर्ण संस्कृति की **शिक्षा से ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान एवं स्नेहात्मक मूल्यों का अनुभव करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है।** मानवीयतापूर्ण संस्कृति के अनुसरण योग्य सौम्यता, सरलता, पुज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, आदर, सौहार्द्रता एवं निष्ठात्मक शिष्टता को अभिभूतता पूर्वक अभिव्यक्त करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति सम्बद्ध **शिक्षा** ही प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य का सदुपयोग एवं सुरक्षा करने योग्य संस्कारों की स्थापना करती है। यही क्रम से विधि–निषेध एवं व्यवस्था–अव्यवस्था का निर्णय करने योग्य सुसंस्कारों को स्थापित करती है। यही क्रम से मानव की चिर आशा एवं तृषा है। **शिक्षा ही मानव में संस्कार परिवर्तन की अतिमहत्वपूर्ण प्रक्रिया एवं कार्यक्रम है।** शिक्षा में ही संस्कृति एवं सभ्यता का उद्बोधन–प्रबोधनपूर्वक स्फुरण होता है, जो व्यक्तित्व को प्रकट करता है। **(अध्याय: 31, पृष्ठ नंबर: 101–103)**

- मानव जीवन का विधिवत् कार्यक्रम धर्मनीति, अर्थनीति एवं राज्यनीतिक रूप में स्पष्ट है। मानव का ऐसा कोई विधिवत् कार्यक्रम नहीं है जो इन तीनों से संबद्ध न हो। नीति, पद्धति एवं प्रणाली का संयुक्त रूप ही व्यवस्था है। व्यवस्था विहीन जीवन वांछित को पाने में असमर्थ रहेगा। व्यवस्था विहीनता अथवा व्यवस्था में अपूर्णता जीवन की पूर्णता के अर्थ में प्रयोजित नहीं होती है। यही प्रत्येक जीवन में अपूर्णता है। जीवन में अपूर्णता ही जीवन के कार्यक्रम में अपूर्णता है। जीवन के कार्यक्रम में अपूर्णता ही भ्रम एवं समस्या है। भ्रम एवं समस्या ही व्यवस्था में अपूर्णता है। व्यवस्था को मानव ही अनुभव एवं व्यवहारपूर्वक प्रमाणित करता है। फलत: उसे सर्वसुलभ बनाने के लिए प्रस्थापना, स्थापना एवं संचालन करता है जो चरितार्थता का स्पष्ट रूप है। प्रत्येक मानव नियति–क्रम व्यवस्था का अनुभव करने के लिए अवसर रहते हुए योग्यता, पात्रता न होने के कारण शिक्षा एवं व्यवस्था में समर्पित होता है या ऐसे अधिकार सम्पन्न अधिकारी होने के लिए समर्पित होते है। हर मानव संतान **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक ही प्रबुद्ध होने की व्यवस्था है। यह नियति है। क्योंकि मानव ज्ञानावस्था की इकाई है। ज्ञान परम्परा से ही सर्वसुलभ होता है। किसी मानव को ज्ञान की तृषा हो वह तृषा परम्परा में सुलभ न हो, ऐसे स्थिति में कोई मानव संतान ही उसकी भरपाई करता हुआ घटना विधि से स्पष्ट हुआ है। इसी क्रम में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन बनाम मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद) मानवीय शिक्षा–दीक्षा व्यवस्था परम्परा में समावेश होने अर्पित है। शिक्षा एवं व्यवस्था केवल प्रबुद्धता की प्रबोधन एवं संरक्षण प्रक्रिया है। यह विभूति मूलत: किसी मानव की ही अनुभूति है। अनुभूति ही वरीय प्रमाण है। ऐसी शिक्षा एवं व्यवस्था संहिता मानव के समग्र जीवन के प्रति अनुभवपूत होते तक उनमें परिवर्तन, परिमार्जन के लिए समुचित प्रक्रिया है। साथ ही वह दायी एवं उत्तरदायी भी है। ऐसी पूर्णता का प्रमाण अखण्ड समाज है जिसके लिए धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक एकरूपता पूर्वक दश सोपनीय व्यवस्था में एकात्मकता को प्रदान करने योग्य सक्षम दर्शन संहिता ही आधार है। यही प्रत्येक मानव में मन–तन–धनात्मक अर्थ की सर्ववांछित सुरक्षा एवं सदुपयोगात्मक क्षमता को प्रादुर्भावित करता है। साथ ही सर्वसुलभता भी करता है। फलत: अखण्ड समाज की सिद्धि होती है।**(अध्याय: 33, पृष्ठ नंबर: 113–114)**

मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

- आत्म बोध और ब्रह्म अनुभूति के लिए सहज जिज्ञासा है। यह मानव परम्परा में जागृत **शिक्षा संस्कार** पूर्वक समाधानित सार्थक होना पाया जाता है। (**अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:3**)

समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण: 2009)

- मानव स्वाभाविक रूप में ही सुख चाहता हैं भले ही सुख को वह नहीं जानता, इसके बावजूद वह सुख का पक्षधर होता है। अधिकांश मानव सुख के लिए ही रुचियों, प्रलोभनों के पीछे दौड़ते रहते हैं। इस तथ्य के निरीक्षण परीक्षण के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि परम्परा जिन दिशा कोणों में प्रोत्साहित करता है अथवा जितना जागृत हुआ रहता हैं उसी के अनुरूप दिशा निर्देशन कर पाता है। परम्परा का तात्पर्य शिक्षा–संस्कार, संविधान और व्यवस्थाओं का अविभाज्य रूप में क्रियारत होना है। यह एक सहज प्रमाण है कि हर समुदाय किसी न किसी संविधान, शिक्षा, व्यवस्था तथा संस्कार को अपनाया रहता है। इसे इस धरती के सभी समुदायों में निरीक्षण परीक्षण करके देखा जा सकता है। इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि उन चारों आयामों के संबंध में मानव की कर्म स्वतंत्रता कल्पनाशीलता ने सहज रूप में कार्य किया है। अभी तक किसी एक अथवा एक से अधिक समुदायों में स्थापित संविधान व्यवस्था और संस्कार सभी समुदायों के लिए स्वीकृत नहीं हो पाया। सभी समुदायों में मानव विचारशील रहे हैं। समीचीन ज्ञान विज्ञान के अनुरूप अभय और शांति सबको सुलभ होने के उद्देश्य से ही सभी संविधानों की स्थापना हुई है। प्रत्येक समुदाय अपने संविधान के अनुरूप शिक्षा, संस्कार, राज्य और धर्म व्यवस्था पाने की आशा और आकांक्षा से इसमें अर्पित होते आया है। आज भी ऐसी ही स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। इस प्रकार सभी समुदायों में संविधान, शिक्षा, संस्कार व्यवस्था संबंधी तथ्यों को सोचते हुए समुदाय चेतना से विवश होकर समस्त कार्य किए गए। फलत: वाद–विवाद व द्रोह–विद्रोह की संभावनाएँ आदिकाल से अभी तक बनी हुई है। यह समस्या विश्व मानव के सम्मुख स्पष्ट है अर्थात् समुदायों के सम्मुख स्पष्ट है।

  उक्त समस्या के कारण तत्वों का निरीक्षण परीक्षण किया गया। इसका उत्तर यही मिला कि मानव ने मूलत: मानव को पहचानने में सह–अस्तित्व रूपी परम सत्य को समझने में ही भूल किया है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 9–10)**

- पदार्थावस्था में तात्विक क्रिया में परस्पर परमाणु अंश की निश्चित दूरियाँ स्वयं उनके परस्परता की पहचान को प्रकाशित करता है। साथ ही भौतिक और रासायनिक वस्तुओं का संगठन भी परस्पर अणुओं की पहचान का द्योतक सिद्ध हो जाता है। प्राणावस्था में रासायनिक अणु संरचनाएँ, प्राणकोशिकाओं की पहचान का द्योतक है। यह बीज वृक्ष नियम पूर्वक सम्पादित होते हैं। जीवावस्था में जड़–चैतन्य–प्रकृति का प्रारंभिक प्रकाशन है, जिसमें से शरीर रचना जड़–प्रकृति स्वरूप होने के कारण वंशानुषंगी सिद्धांत पर आधारित रहता हैं। साथ ही जीवन संचेतना जीवावस्था में अध्यास के रूप में प्रभावित रहता है। अध्यास का तात्पर्य परम्परागत कार्यकलापों और विन्यासों को गर्भावस्था से ही स्वीकारने के क्रम में गुजरते हुए जन्म के अनन्तर उसे अनुकरण करने की प्रक्रिया से है। जैसे गाय की सन्तान गाय जैसे कार्यकलापों को करते हुए देखने को मिलता है। इसी प्रकार सभी प्रजाति के जीवों में स्पष्ट है। ज्ञानावस्था में मानव जड़–चैतन्य का संयुक्त प्रकाशन होते हुए मानव शरीर भी प्रधानत: वंशानुषंगी होता है। साथ ही संचेतना संस्कारानुषंगी होता है। इसका साक्ष्य स्वयं **शिक्षा–संस्कार** व्यवस्था परम्पराएँ है। इससे सिद्ध हुआ कि मानव संस्कारानुषंगी प्रणाली से पहचानने के कार्यकलाप को सम्पादित करता है।**(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 56)**

- **शिक्षा–संस्कार** ही बोध और अवधारणा का एकमात्र स्रोत है। ऐसे स्रोत को सार्थक रूप देने, उसमें प्रामाणिकता और समाधान की निरन्तरता को बनाये रखना चैतन्य–प्रकृति में, से ज्ञानावस्था की इकाई का दायित्व और वैभव होता हैं। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 86)**
- समाधान और व्यवस्था अविभाज्य है। समाधान का धारक–वाहकता प्रत्येक मानव में आवश्यकता के रूप में देखने को मिलता है। व्यवस्था समग्रता के साथ ही प्रमाणित होता है। समाधान जागृति का द्योतक है। हर व्यक्ति जागृत होना चाहता है। जागृति का मार्ग प्रशस्त होना ही इसका एकमात्र उपाय है। परंपरा में जागृति का तात्पर्य –**शिक्षा–संस्कार**, व्यवस्था, संविधान में जागृत मानव का लक्ष्य, स्वरूप, कार्य और प्रयोजन स्पष्ट हो जाने से है। संस्कारों का मतलब स्वीकृति से ही है, अवधारणा से ही हैं। अस्तित्व में जागृत मानव के उद्देश्य से अवधारणा को देखा गया वह है–

  1. जीवन ज्ञान
  2. अस्तित्व दर्शन ज्ञान
  3. मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान

  ये ही स्वीकारने के लिए वस्तुएँ हैं। मानव परंपरा में जागृति पूर्णता की वस्तु भी इतनी ही हैं। इन्हीं तीन बिंदुओं में इंगित परम सत्य वस्तु को स्वीकारने योग्य परम्परा ही मानव संस्कार पंरपरा हैं। उक्त तीनों बिंदुओं में इंगित वस्तु की उपयोगिता विधि, सदुपयोगिता विधि, प्रयोजनशील होने की विधि, अध्ययन की अर्थात् **शिक्षा** की मूल वस्तुएँ है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:114)**

- प्रामाणिक होने के लिए सह–अस्तित्व रूपी सत्य में अनुभव करना मानव के लिए संभव है। यह सभी को तभी संभव हैं, जब **शिक्षा** का मानवीयकरण हो जावे। इन तीनों स्थितियों में मानव के वैभवित होने के लिए जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन (अनुभव) ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही प्रधान तत्व है। इस सत्य सहज जागृति को मानव प्रमाणित करें यह एक आवश्यकता है क्योंकि:–
  1. जागृति पूर्वक ही मानव परपंरा सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक व्यक्त होता है।
  2. जागृतिपूर्ण मानव परंपरा में ही जागृति पूर्ण **शिक्षा–संस्कार** सर्व सुलभ होता है।
  3. जागृति पूर्वक ही मानव परंपरा में न्याय और सुरक्षा सर्व सुलभ होता है।
  4. जागृति सहज मानव परम्परा में उत्पादन सुलभता प्रमाणित होता है।
  5. जागृतिपूर्ण मानव पंरपरा में ही आवर्तनशील अर्थ प्रणाली श्रम नियोजन, श्रम विनिमय पद्धति से विनिमय सुलभता होता है।
  6. जागृति पूर्ण मानव परंपरा में ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था दस सोपानीय विधि से सर्वसुलभ हो पाता है। ये सभी मानवों को लिए आशित (अपेक्षित), आकांक्षित और आवश्यकीय उपलब्धियाँ हैं। इसके सफल होने के मूल में मानव परंपरा है। अर्थात् मानवीयतापूर्ण शिक्षा, संस्कार, संविधान और व्यवस्था है। यह मानवीयतापूर्ण अथवा जागृतिपूर्ण पद्धति, प्रणाली और नीति से प्रमाणित होता ही है।

परम्परा में जागृति होना तभी संभव हैं जब परिवर्तन की बेला में सच्चाईयों के आधार पर गहराई के साथ व्यवहार में, प्रमाणों को प्रमाणित करने की निष्ठा, कम से कम एक व्यक्ति में हो। एक से अधिक व्यक्ति में प्रमाणित करने की निष्ठा होना और भी अच्छा है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:119–120)**

- न्याय पूर्वक सुख और शांति, व्यवस्था पूर्वक शांति और संतोष, तथा अनुभव पूर्वक संतोष और आनंद जीवन में प्रमाणित होता है। प्रत्येक मानव इसे अनुभव कर सकता है। ऐसे अखण्ड समाज– परिवार मूलक व्यवस्था, विश्व परिवार में व्यवहार रूप दे सकता है। व्यवस्था कम से कम 100 से 200 परिवारों के बीच में, अर्थात् 1000 से 2000 जनसंख्या के बीच स्वायत्त विधि से सफल हो सकती है। स्वराज्य की परिभाषा ही हैं–स्वयं का वैभव, स्वयं का स्वरूप मानव, मानव के समान वस्तु जीवन है। जीवन का संबोधन ''स्वयं" अथवा ''स्व" है। इस प्रकार जीवन का वैभव ही राज्य है। अस्तु, जीवन का वैभव– स्वराज्य। जीवन वैभव जागृति की अभिव्यक्ति हैं। जागृति का अर्थ सर्वतोमुखी समाधान एवं प्रामाणिकता है। इसका व्यवहार रूप परिवार परंपरा में समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। यही एक परिवार से विश्व परिवार तक प्रमाणित होने की वस्तुएँ हैं। इसके क्रियान्वयन क्रम में सर्वमानव के लिए न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता लक्ष्य है। इसकी अक्षुण्णता के लिए **शिक्षा–संस्कार**, स्वास्थ्य–संयम सहज सुलभ रहेगा। इसको ही ग्राम स्वराज्य व्यवस्था का रूप देने के क्रम में दस सदस्यीय परिवार स्वयं अपने एक परिवार के प्रतिनिधि को, पहचानने की व्यवस्था रहेगी। हर दस (10) परिवार से एक एक सदस्य ''परिवार समूह सभा" के लिए निर्वाचन पूर्वक पहचान करेगा। ऐसे दस परिवार समूह सभा अपने में से एक एक व्यक्ति को ग्राम परिवार सभा के लिए निर्वाचन पूर्वक पहचान करेगा। ग्राम सभा में समाहित दस (10) व्यक्तियों में से सभा प्रधान को पहचाने रहेंगे। ग्राम सभा, ''स्वराज्य कार्य संचालन" समितियों को, मनोनीत करेगी। ऐसी समितियाँ पाँच होगी–
  1. **शिक्षा–संस्कार** समिति
  2. न्याय सुरक्षा समिति
  3. स्वास्थ्य संयम समिति
  4. उत्पादन कार्य समिति
  5. विनिमय कोष समिति

  इन सबके अपने–अपने कार्य परिभाषित, व्याख्यायित रहेंगे।....**(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:180–182)**

- जागृति पूर्ण मानव की मौलिकता को:–
  1. दया:– जिस किसी में जो कुछ भी पात्रता के लिए अर्हता हो उसके लिए वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हो रही हों, ऐसी स्थिति में उनमें पात्रतानुकूल वस्तुओं को सुलभ करा देना ही, दया का व्यावहारिक प्रमाण है।
  2. कृपा:– जिस किसी में भी वस्तु और प्राप्तियाँ हों उनके अनुरूप पात्रता न हो अर्थात् मानवीयतापूर्ण नजरिया सहित तन–मन–धन का उपयोग, सदुपयोग विधि से सम्पन्नता से है। उनमें पात्रता को स्थापित करा देना कृपा है।
  3. करुणा:–जिस किसी में भी मानवीयता सहज पात्रता, योग्यता भी न हो और वस्तु भी उपल्बध न हो, उस स्थिति में उनको पात्रता और वस्तु तथा (उपयोग, सदुपयोग विधि) उपलब्धियों को सुलभ करा देना, यही करुणा का तात्पर्य हैं।

इस प्रकार दया, कृपा, करुणा सहज मौलिकता को मानव के कार्य, व्यवहार विन्यास में पहचाना जा सकता हैं। इसकी आवश्यकता रही हैं। यह मानव संचेतना पूर्ण व्यवहार, संविधान, **शिक्षा–संस्कार**– जब से मानव परंपरा में प्रमाणित होगी तभी से दया, कृपा, करुणा संपन्न देव मानव, दिव्य मानव सहज व्यक्तित्व को परंपरा के रूप में पहचान सकेंगे, निर्वाह कर सकेंगे। मानव सहज मौलिकता की पहचान मानव परंपरा में होना एक अनिवार्य स्थिति हैं। **(अध्याय: 9 (1), पृष्ठ नंबर:198)**

- मानवीयता पूर्ण व्यवहार, व्यवस्था, संविधान, **शिक्षा–संस्कार** के साथ–साथ आहार, विहार, व्यवहार, व्यक्तित्व और प्रतिभा में संतुलन को प्रमाणित करने के लिए अति आवश्यक है। **(अध्याय:9 (1), पृष्ठ नंबर: 200)**
- अस्तित्व सहज राज्य, धर्म, समाज व्यवस्था और उसकी निरंतरता की व्याख्या:– मूलत: अस्तित्व ही वैभव है, वैभव ही राज्य हैं। अस्तित्व में मानव का अविभाज्य होना भी स्पष्ट हो गया हैं। सह–अस्तित्व के रूप में ही संपूर्ण वैभव हैं, क्योंकि सत्ता में सभी अवस्थाएँ अविभाज्य हैं। इनका अलग–अलग विभाजित कर देखना संभव नहीं है। सत्ता में सभी अवस्थाएँ समाहित होना दिखाई पड़ता हैं। सत्ता व्यापक है। सत्ता न हो, ऐसी किसी स्थली की कल्पना भी नहीं हो सकती है। सत्ता में ही संर्पूण वस्तुओं का होना पाया जाता हैं अर्थात् अस्तित्व ही संपूर्ण वस्तु है। सह–अस्तित्व ही मूलत: सम्पूर्ण अस्तित्व हैं। इस प्रकार समग्रता सहज अविभाज्यता का मूल सूत्र अथवा परम सूत्र सत्तामयता में संपृक्त प्रकृति ही है। इसलिए सत्ता में ही सम्पूर्ण अवस्थाएँ नियमित, नियंत्रित, संतुलित और समाधानित रहना देखने को मिलता हैं। इन सभी तथ्यों में सह–अस्तित्व ही परम सौंदर्य, परम सुख एवं परम समाधान और परम सत्य हैं। अस्तित्व स्वयं सह–अस्तित्व हैं। ऊपर वर्णित विश्लेषणों, निष्कषों के आधार पर धर्म और राज्य का मूल रूप सह–अस्तित्व नित्य व्यवस्था होना ही इंगित होता हैं। क्योंकि सह–अस्तित्व सहज कार्यकलाप और वैभव ही हैं सम्पूर्ण ''त्व" सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का ताना–बाना। कोई भी अवस्था और ऐसी कोई इकाई दिखाई नहीं पड़ती है, जो इस ताना–बाना से अलग रहे। खूबी यही है कि सत्ता स्वयं अस्तित्व में अविभाज्य हैं। इस प्रकार अस्तित्व अपने में सम्पूर्ण स्वरूप और वैभव है। यही व्यवस्था है। इसलिए मानव का स्वयं में व्यवस्था होना और व्यवस्था में भागीदारी सहज कार्य में अपने को वैभवित कर पाना ही कर्म–स्वतंत्रता कल्पनाशीलता का तृप्ति बिंदु हैं। कल्पनाशीलता का तृप्ति स्वराज्य व्यवस्था में हो जाता हैं। इसकी निरंतरता का सहज वैभव होता है। यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का वैभव हैं। इसी में प्रत्येक मानव मानवत्व सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत कर पाता है। यही परिवार मानव होने के आधार पर परिवार मूलक विधि से सर्वसुलभ हैं, यह समझ में आता हैं। अस्तु, परिवार मूलक विधि से गुंथा हुआ विश्व परिवार ही, समाज रचना का क्रियाकलाप है और निरंतर गति है। ऐसे परिवार का भी व्यवस्था का स्वरूप होना स्वाभाविक है। व्यवस्था, अपने आप में न्याय, उत्पादन, विनिमय में भागीदारी है। यह परिवार से विश्व परिवार पर्यन्त सूत्रित व्याख्यायित तथ्य है। इन आधारों पर ''व्यवस्था समाज का वैभव हैं और धर्म समाज का स्वरूप हैं।" मानव का मानवत्व सहित व्यवस्था होना समाज हैं और समग्र व्यवस्था हैं – न्याय, उत्पादन, विनिमय में भागीदारी। यही समग्र व्यवस्था का तात्पर्य है। इनकी निरंतरता के लिए दूसरी भाषा में, मानव परंपरा में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी निरंतर वैभवित होने के लिए, मानवीय **शिक्षा–संस्कार** और स्वास्थ्य–संयम रूपी स्रोत के साथ ही मानव परंपरा का जागृत वैभव स्पष्ट हो जाती है। **(अध्याय:9 (4), पृष्ठ नंबर: 240–242)**

- जानना, मानना, पहचानना ही संस्कार है। संस्कारानुषंगीयता ही मानवीय व्यवस्था का आधार है:–दृष्टिगोचर, ज्ञान गोचर में से पहले सह–अस्तित्व में ही पदार्थावस्था, ''त्व'' सहित नियम को परिणामानुषंगीय विधि से, संपन्न कर देते हैं। यही पदार्थावस्था के नियमित रहने का तात्पर्य है। प्राणावस्था में नियमित विधि से ''त्व'' सहित व्यवस्था बीजानुषंगीय प्रक्रिया पूर्वक नियंत्रित रहना पाया जाता है। जीवावस्था अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था को वंशानुषंगीय विधि से संतुलित रूप में प्रमाणित करते हैं। मानव ज्ञानावस्था में एक मौलिक वैभव हैं। यह वैभव दृष्टा पद व जागृति सहज प्रमाणों के रूप में परंपरा है। ऐसा दृष्टापद जागृति सहज परंपरा में निरंतर सफल होता है। मानव परंपरा संस्कारनुषंगीय अभिव्यक्ति हैं। वंशानुषंगीयता केवल शरीर तक ही प्रक्रियाबद्ध है। मानव की अभिव्यक्ति जीवन प्रधान हैं, न कि शरीर प्रधान। यद्यपि शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में ही मानव ख्यात है। जीवन में ही संस्कारों की स्वीकृति और जागृति प्रमाणित होती हैं। संस्कार जानने, मानने, पहचानने और प्रमाण रूप में निर्वाह करने की प्रक्रिया हैं। इसकी जागृति जानना, मानना को पहचानना और निर्वाह करना ही है। संस्कार प्रक्रिया परिवार परंपरा में, से, के लिए प्रदत्त होती है। संस्कार प्रक्रिया का यही प्रमाण हैं और **चेतना विकास मूल्य शिक्षा** संस्कार है। इस प्रकार संस्कार परंपरा और विधि प्रक्रिया के रूप में संस्कार स्पष्ट हो जाता है। यही मानव संचेतना सहज महिमा है। मानव का संपूर्ण संस्कार व प्रमाण जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है। यह निर्भम विधि से न्याय, धर्म, सत्य सहज प्रकाशन है। अर्थात् निर्भम पूर्ण विधि से प्राप्त जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करना स्वयं न्याय, धर्म, सत्य का प्रमाण ही है। यही मानवीयतापूर्ण अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन सहज रूप में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी है। **(अध्याय:9 (4), पृष्ठ नंबर: 246–247)**
- न्याय:– संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति है। मौलिकता न्याय का स्वरूप सहज रूप में ही संबंध मूल्य और मूल्यांकन ही है। यह मानव संबंध, नैसर्गिक संबंध और उत्पादन सबंध के रूप में स्पष्ट होता है। मानव संबंध व्यवहार सूत्र का स्वरूप हैं। नैसर्गिक संबंध पूरकता सहज सत्यता हैं। उत्पादन संबंध उपयोगिता सहज सबंध हैं। इनमें उपयोगिता को प्रमाणित करने के लिए प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन और कला मूल्य की स्थापना और उसके मूल्यांकन के रूप में हैं। आवर्तन विधि संपन्न विनिमय प्रक्रिया पूर्वक व्यवहारिक होना पाया जाता हैं मानव संबंध समाज रचना का आधार है। परिवार मूलक विधि से समाज रचना निरंतर सहज है। मानवत्व ही परिवार संबंधों की तृप्ति का सूत्र है। परिवार ही विश्व परिवार के रूप में अखण्ड समाज है। परिवार रचना के साथ व्यवस्था की अभिव्यक्ति एक अनिवार्य स्थिति है। व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति क्रम में न्याय, विनिमय और उत्पादन प्रधान प्रक्रिया है। न्याय प्रक्रिया में स्थापित एवं शिष्ट मूल्यों का मूल्यांकन मौलिक है। विनिमय प्रकिया में श्रम मूल्यों का मूल्यांकन मौलिक है। उत्पादन कार्यों में अथवा उत्पादन विधि में श्रम नियोजन मौलिक है। इस प्रकार मौलिकता त्रय पूर्वक सार्वभौमिकता और अक्षुण्णता सहज होता है। इसी अभिव्यक्ति के लिए मानवीय **शिक्षा–संस्कार** और स्वास्थ्य–संयम आवश्यकीय कार्यक्रम हैं। इसी के आधार पर सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज रचना के लिए, मानव का जागृत होना पाया जाता है। **(अध्याय: 9 (4), पृष्ठ नंबर : 247–248)**
- जागृत मानव परम्परा का प्रभाव **शिक्षा–संस्कार**, संविधान और व्यवस्था के रूप में देखने को मिलता है। वर्तमान परंपरागत विधियों से अप्राप्ति की प्राप्ति तथा अज्ञात का ज्ञात होना संभव नहीं हैं। इसलिए अस्तित्व सहज वैभव का चिंतन, साक्षात्कार, विचार, अनुभव, व्यवहार, व्यवस्था, संविधान, अध्ययन बनाम **शिक्षा–संस्कार**– बनाम दर्शन–ज्ञान सहज रूप में जीना, क्रियारत रहना अनिवार्य हो गया। इस क्रम में अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान, मानवीय **शिक्षा**, मानवीय संस्कार सर्व सुलभ होने

का मार्ग प्रशस्त होता है। इन मूलभूत सिद्धांतों को हृदयंगम करना एक आवश्यकता है। अनुभव पूर्वक मानव के दृष्टा पद में होने की साक्षी में ही मूलभूत सिद्धांतों को समझा गया है।

1. मानव जाति एक, कर्म अनेक।
2. मानव धर्म एक, मत अनेक।
3. सत्ता व्यापक रूप में एक, देवता अनेक।
4. यह धरती एक (अखण्ड राष्ट्र) राज्य अनेक।

उक्त चार एकता और अनेकता का सिद्धांत समझ में आता है। अस्तित्व सहज प्राकृतिक रूप में अथवा सह–अस्तित्व के रूप में एकता अपने आप स्पष्ट है। मानव समुदाय की भ्रमित मान्यताओं एवं इन यथार्थताओं में मतभेद ही समस्या के रूप में स्पष्ट है। **(अध्याय: 9 (5), पृष्ठ नंबर : 252–253)**

- मानव, मानवीय **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक, जीवन–ज्ञान और अस्तित्व दर्शन सहज जागृति संपन्न होता है। फलस्वरूप सर्वतोमुखी समाधान जैसे– अस्तित्व में सह–अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना संबंधी निर्भ्रम ज्ञान संपन्न होता है। इसके फलस्वरूप, सर्वतोमुखी समाधान सहज अभिव्यक्ति होती है। **(अध्याय:9(5), पृष्ठ नंबर: 257)**
- मानव सहज शरीर यात्रा, जीवन और शरीर के संयुक्त यात्रा के प्रयोजनों को देखने पर पता लगता है कि जागृति अर्थात् जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना, उसकी तृप्ति और निरंतरता का होना ही है। यही प्रामाणिकता, स्वानुशासन, सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होना ही है। यही व्यवसाय, व्यवहार, समाज व्यवस्था, विचार और अनुभव सहज रूप में वांछित, आवश्यकीय चिरप्रतीक्षित घटना है अथवा उपलब्धि है। उल्लेखनीय बात यही है कि अब संपूर्ण सौभाग्य, मानव के लिए करतलगत होना संभव हो गया है। इस क्रम में प्रत्येक मानव, प्रत्येक परिवार, सम्पूर्ण मानव के तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा सहज रूप में होगी। फलस्वरूप पर्यावरणीय नैसर्गिक समस्या, प्रदूषण समस्या, न्याय समस्या, सुरक्षा समस्या, उत्पादन समस्या, विनिमय समस्या, **शिक्षा–संस्कार** समस्या और स्वास्थ्य–संयम समस्याएँ दूर होंगी। **(अध्याय: 9 (10), पृष्ठ नंबर : 317–318)**
- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि से ही न्याय–सुलभता और लाभ–हानि मुक्त विनिमय सुलभता संभव हो जाती हैं। ऐसा संभव होने पर संग्रह के स्थान पर समृद्ध होना ही है। प्रत्येक परिवार मानव आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने के क्रम में समृद्धि का अनुभव करता है। न्याय सुलभ होने से मानव वर्तमान में विश्वास करता ही है। फलत: सभी ओर समाधान नजर आता है। इसी सत्यतावश समृद्धि सहित परिवार मानव व्यवस्था के रूप में प्रमाणित हो जाता है।

  हर परिवार में आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने के आधार पर प्रत्येक परिवार में शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति के अर्थ में निश्चित उत्पादन–कार्य विधिवत् निर्धारित रहना संभव हो जाता हैं। फलस्वरूप उत्पादन सुलभता का अनुभव होना सहज है। इस प्रकार न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता सहज आवर्तनशील वैभव, स्वयं नित्य उत्सव के रूप में स्वराज्य व्यवस्था को प्रमाणित कर देता है। ऐसे उत्सव के अभिन्न अंगभूत मानवीय **शिक्षा–संस्कार** और स्वास्थ्य संयम सहज कार्यक्रम मानव कुल में व्यवहृत होता ही रहेगा। **(अध्याय:9 (10), पृष्ठ नंबर : 338)**

- अस्तित्व में चारों अवस्थाएँ इस धरती पर होना प्रमाणित हैं। यह धरती एक सौर व्यूह का अगंभूत (अंग के रूप में) कार्य करती हुई हैं यह स्पष्ट हो चुका है। ऐसे अनंत सौर व्यूह होने की कल्पना मानव में होती हैं, इस धरती पर जितने भी मानव हैं वे सब धरती पर जागृति सहज प्रमाणों को प्रमाणित करें, इसकी परम आवश्यकता है। क्योंकि सभी समस्याएँ मानव में, मानव से, मानव के लिए की हुई हैं। इसलिए सभी आयामों, कोणों, दिशाओं, परिप्रेक्ष्यों में समाधान प्रस्तुत करना भी परम आवश्यकता है। इसका आधार यही है कि मानव को समस्याएँ स्वीकृत नहीं हैं। अपितु समाधान सहज ही स्वीकार्य होते हैं। समाधान का सम्पूर्ण प्रयोजन मानव इकाई के अंतर–संबंधों और अस्तित्व में परस्पर सह–अस्तित्व सहज वर्तमान में, पहचाना जाता है। अर्थात् पूर्णता क्रम, पूर्णता और उसकी निरंतरता सहज सूत्रों, व्याख्याओं जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के प्रमाणों से संप्रेषित होता है। यही मानव भाषा का अर्थ है। इस अर्थ को संप्रेषित करने के लिए कारण, गुण, गणितात्मक विधि से, विवेक और विज्ञान सम्मत तर्क प्रणाली को अपनाना होता है। इसी विधि से पूर्णता की अवधारणा, उसकी अक्षुण्णता सहज रूप में ही मानव परंपरा में प्रवाहित होती हैं। मानव परंपरा अर्थात् मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, मानवीय आचरण संहिता रूपी संविधान इसकी प्रतीक्षा सबको हैं। इसका कारण एक ही है, इसका नित्य सर्वशुभ, मानव में ही स्वीकृत रहता है। इसी सत्यतावश मानव में नित्य स्वीकारा हुआ प्रमाण इच्छा के रूप में, शुभ विचार के रूप में, शुभ कल्पना के रूप में प्रस्तुत कर लेना स्वाभाविक है। उत्पादन में व्यवहार में आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण में होने वाली सहज संप्रेषणा ही मानवीय आचरण, मानवीय व्यवहार और मानवीय व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होती हैं। इसके लिए मानवीय **शिक्षा–संस्कार** परपंरा के रूप में प्राप्त होना भी, सहज है। यही प्रमाण परंपरा का तात्पर्य और अपेक्षा है।...**(अध्याय : 9 (11), पृष्ठ नंबर : 346–347)**

व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- व्यवहारात्मक जनवाद क्यों ?
  - मानव भय, प्रलोभन एवं संघर्ष से मुक्ति चाहता है तथा आस्था से विश्वास का प्रमाणीकरण चाहता है।
  - मानव लाभोन्माद, भोगोन्माद से मुक्ति एवं विकल्प का स्पष्टता चाहता है।
  - मानव शासन से मुक्ति एवं व्यवस्था का ध्रुवीकरण चाहता है।

  सुदूर विगत से मानव परम्परा भय, प्रलोभन, आस्था, संघर्ष से गुजरती हुई देखने को मिलती है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सर्वाधिक मानव संघर्ष को नकारते हैं। भय को नकारते हैं। कुछ लोग सोचते हैं, प्रलोभन और आस्था से छुटकारा पाना संभव नहीं है। कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि प्रलोभन और आस्था में ही राहत है। कुछ लोगों का सोचना है कि इससे छुटकारा पाना जरूरी तो है, परन्तु रास्ता कोई नहीं है। इन सब स्थितियों में निष्कर्ष यही निकलता है कि भय, प्रलोभन, आस्था और संघर्षो से गुजरते हुए मानव परम्परा का रास्ता; राज्य और राजनैतिक, धर्म और धर्मनैतिक, अर्थ और अर्थनैतिक, **शिक्षा–संस्कार** सहज वस्तु पद्धतियों का निर्धारण, निष्कर्ष, उसकी सार्वभौमता, सार्थकताओं के अर्थ में देखने को नहीं मिली। इस लम्बे समय की यात्रा में मानव परम्परा में संस्कति–सभ्यता का, विधि–व्यवस्था का, तथा आचार–संहिता का ध्रुवीकरण एवं निश्चयन नहीं हो पाया। यही जनचर्चा का मुद्दा है। इन सभी मुद्दों पर सार्थकतापूर्ण निश्चयन को जनचर्चा के सूत्र रूप में प्रस्तुत करने के लिए इस ग्रन्थ का उद्घाटन हुआ है। इसमें सर्वशुभ का सारभूत अर्थ समाहित है।

  मानव परम्परा में राज्य, धर्म, अर्थ और **शिक्षा–संस्कार** सम्बन्धी सार्वभौम निष्कर्षों को पाने का प्रयास सदा ही रहा है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर : 2)**

- इस बात से हर व्यक्ति सहमत होता है कि वह मानव ही है। किन्तु अपना परिचय वह किसी वर्ग या समुदायिक पहचान के साथ ही देता है। यह भी अन्तर्विरोध का जीता जागता उदाहरण है। आम जन–मानसिकता के गति, कार्य वार्तालाप के क्रम में यह भी देखने को मिलता है कि सर्व शुभ होने का कार्य राज्य, धर्म और शिक्षा में होना चाहिए। जबकि इन तीनों विधाओं में विशेष और सामान्य का प्रभेद बना ही है। (विशेष और सामान्य का तात्पर्य विद्वान–मूर्ख, ज्ञानी–अज्ञानी, बली–दुर्बली, धनी–निर्धनी के रूप में मान्यता है)। यह विशेषकर समुदायगत अन्तर्विरोध के रूप में देखने को मिलता है। जनचर्चा में यह भी सुनने को आता है कि **शिक्षा–संस्कार** आदि चारों परम्परा (**शिक्षा संस्कार**, राज्य, धर्म, व्यापार व्यवस्था) ठीक है और इस बात को स्वीकारा जाता है। परम्परा सहज विधि से हर मानव संतान किसी न किसी परिवार में समर्पित रहता ही है। जिसके फलस्वरूप परिवार के रूढ़िगत, स्वीकृत खान–पान, बोली, भाषा, रहन–सहन और व्यवहार मर्यादाओं को यथा संभव हर शिशु ग्रहण करता ही रहता है। इसके कुछ दिनों बाद किसी शिक्षण संस्था में भाई–बहनों, मित्रों–गुरूजनों के बीच जो कुछ भी सीखने को, सुनने को, समझने को, पढ़ने को मिलता है इन सबको हर बालक अथवा हर विद्यार्थी अपनी ग्रहणशीलता सहज विधि से ग्रहण करते हैं। युवा अवस्था को पार करते–करते किसी न किसी धर्मगद्दी, धर्मप्रणाली, धार्मिक रूढ़ियों को स्वीकार लेते हैं। इसी के साथ साथ किसी न किसी देश, राष्ट्र, संविधान और

भाषा, जाति चेतना सहित अपनी पहचान को सजाने के लिये हर युवा और प्रौढ़ व्यक्ति यत्न प्रयत्न करते ही हैं। इसके उपरान्त इस अवस्था तक जो कुछ भी स्वीकारा रहता है उसके प्रति अपनी निष्ठा को जोड़ते है। जिन–जिन मुद्दों को स्वीकारे नहीं रहते है उसमें उनकी निष्ठाएँ अर्पित नहीं हो पाती है। इसी कारणवश हर समुदाय में पीढ़ी दर पीढ़ी परिवर्तन की दिशा बनती रहती है। यही मानव परम्परा की विशेषता है।... **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:3–4)**

- ....हर व्यक्ति एक दूसरे के साथ व्यवहारिक संगीत को स्थापित करना चाहता है। **शिक्षा–संस्कार**(प्रचलित) कार्यक्रम में इसके लिए कोई निश्चित प्रावधान न होने के कारण हर व्यक्ति एक दूसरे से सशंकित मानसिकता को लिये हुए संघर्ष को अपनाने के लिए विवश होता जा रहा है। इसका जीता जागता साक्ष्य यही देखा जा रहा है पति–पत्नि दोनो अलग–अलग कोषालयों में खाता बनाए रखना चाहते है। इतना ही नहीं है घर में रखी हुई पति पत्नि की पेटियों में अलग–अलग ताला होना भी पाया जाता है। हर परिवार में घर के दरवाजे पर ताला लगाया ही जाता है। ताला लगाने का तात्पर्य मानव जाति के प्रति शंका–कुशंका ही है। हर व्यक्ति इस बात को स्वीकार कर चलता ही है कि चोर डाकू होते ही है। इसलिए ऐसा प्रबंध करके ही रखना ही है। कोषालयों को देखे वहाँ भी अभेद्य कक्ष बनाए जाते है – इसके बावजूद भी यह सब लूटे जाते हैं। ऐसी घटनाओं को बारम्बार सुना जाता है। इन सभी घटनाओं को याद दिलाने के मूल में एक ही मकसद है– हम मानव को अभी व्यवस्था में जीना है। ऐसी समझदारी विकसित नहीं हुई और उचित प्रणालियों को अपनाना दूर ही है इसलिए जनवाद में व्यवस्था रूपी व्यवहार चर्चा को पहल करना परम आवश्यक है ही। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:15–16)**
- साहित्य कला क्रम में आनन्द रूपी रस को संप्रेषित करने के उद्देश्य से प्रयासोदय होने का उल्लेख है। अंततोगत्वा यह रहस्य में अन्त होकर रह गये क्योंकि आनंद एक रहस्य ही रहा। इसमें आनंदित होने वाला, आनन्द का स्रोत, संयोग विधियाँ मानव के समझदारी का अभी तक अध्ययन सुलभ नहीं हो पाया है। किसी वस्तु के अध्ययन सुलभ होने के उपरान्त ही इसकी अभिव्यक्ति–संप्रेषणा सहज होना सर्वविदित है। अतएव' काल्पनिक आनन्द अभिनयात्मक प्रदर्शन के योगफल में क्रमागत विधि से श्रृंगारिकता ही सर्वाधिक अभिनयों के माध्यमों से भ्रमित मानव को प्रिय लगना स्वाभाविक है। इसी को एक मानव के लिए आवश्यकता, उपलब्धि के रूप में कल्पना करते हुए वीभत्स और रौद्र रस तक कल्पनाएँ दौड़ा ली। इसे चाव से लोगएकत्रित एकत्रित होकर देखते रहे अभी भी देखते है। जबकि काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य ये सब मानव के आवेश का विन्यास और प्रकाशन है। इसके स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, प्रमाणिकता, व्यवस्था मूलक जनचर्चा कला साहित्य प्रकाशन, प्रदर्शन, **शिक्षा–संस्कार** व्यवस्था पर आधारित जनवाद की आवश्यकता है। क्योंकि जिस विधि हम आदि काल से अभी तक गतित हुए है, उस जनचर्चा में भ्रमात्मक भाग ही सर्वाधिक है। प्रयोजनवादी यथार्थ का भाग न्यूनतम है। इसको हम भली प्रकार से मूल्यांकन कर सकते हैं। पूर्णत: प्रयोजनशील याथार्थ को रोज़मर्रा की चर्चा में ला सकते हैं। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:18–19)**
- सम्बन्ध की परिभाषा ही है " पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना" ऐसे सम्बन्ध का स्वरूप निरन्तरता में ही वैभव और प्रयोजन प्रमाणित होना पाया जाता है। प्रयोजन मूलत: सहअस्तित्व में नित्य प्रमाण ही है। यही जागृति, वर्तमान में विश्वास (परस्परता में भय, शंकामुक्ति) और समाधान होना स्वाभाविक है। इन तीनो विधाओं के आधार पर अथवा इन तीनों विधाओं में प्रमाण होने के उपरान्त समृद्ध होना एक अवश्यकता, सम्भावना और इस हेतु प्रयास होना स्वाभाविक स्वयं स्फूर्त है। इसका तात्पर्य यही हुआ कि हम मानव समझदारी पूर्वक ही समाधानित होते हैं और वर्तमान में विश्वास अर्थात सम्बन्ध की पहचान और उसकी निरन्तरता बनाए रखने में निष्ठा ईमानदारी

होने का प्रमाण है। पहचान और उसकी निरन्तरता स्वयं जिम्मेदारी के रूप में स्पष्ट होती है। इस प्रकार, समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी पूर्वक ही परिवार व्यवस्था में प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होना और समृद्धि का साक्ष्य स्पष्ट होना पाया जाता है। इसके लिए परिवार में चर्चा, परिवार के कार्य–व्यवहार के लिए चर्चा, संवाद और परिवार लक्ष्य के लिए संवाद मानव परंपरा में सम्पन्न होना एक प्रतिष्ठा है।

ऐसी प्रतिष्ठा **चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कार** से अनुप्राणित होना रहना स्वाभाविक है। शिक्षा में सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरणज्ञान का साक्ष्य स्पष्ट होना परम आवश्यक है। सहअस्तित्व नित्य प्रकटन व समाधान का स्रोत है क्योंकि हम सहअस्तित्व सहज सूत्र, व्याख्या के आधार पर ही समाधानित हो पाते हैं। जीवन ज्ञान स्वयं सार्थक अर्थात समाधान पूर्ण प्रवृतियों का धारक–वाहक होता है और स्वीकृत होता है। इन दो ध्रुवों के आधार पर मानवीयता पूर्ण आचरण, कार्य–व्यवहार पूर्वक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था को प्रमाणित करता है। इस विधि से इन तीनो मुद्दो का प्रयोजन स्वीकृत होता है। इन तीनो मुद्दो पर जितना जितना भी संवाद हो पाता है, सब सार्थक होना पाया जाता है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 42–43)**

- संवाद के लिए यह भी एक प्रधान मुद्दा है सुखी होने के लिए समाधानित होना जरूरी है। समाधान के लिए समझदारी और व्यवस्था में जीने की तमन्ना और अभ्यास आवश्यक है। इस क्रम में हम परम्परा के रूप में व्यवस्था में जीते हुए समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक सुखी होना, पूरी परम्परा सुखी होना मानव व्यवस्था के आधार परजीने जीना संभव हो जाता है। इसीलिए हम यह निर्णय कर सकते हैं मानव समझदारी पूर्वक ही सफल होता है। समझदारी मानवीयतापूर्ण **शिक्षा–संस्कार**, पूर्वक सर्व सुलभ होना पाया जाता है। इस विधि से हम इस बात पर निर्णय कर सकते है संवाद भी कर सकते हैं कि जीव संसार शरीर स्वस्थता को प्रमाणित करते हैं। अपनी आहार पद्धति से विहार पद्धति से, मानव अपने आहार, विहार, व्यवहार पूर्वक सर्वतोमुखी समाधान को प्रमाणित करने की आवश्यकता आ चुकी है। इसलिए हर नर नारी को सुखी होने के अर्थ में जीना स्वीकार है। इसे सार्थक, सुलभ अथवा सर्वसुलभ होने के अर्थ में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के अंग भूत व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 48)**
- संवाद मानव परम्परा में एक सहज कार्य है। इसमें कहीं न कहीं सर्वशुभ की कामना समायी रहती है। सर्व शुभ घटनाएँ घटित होने के उपरांत मानव परम्परा स्वयं शुभ परम्परा के रूप में प्रमाणित होने की सम्भावना बनी ही है। मानव में चाहत भी बनी है। चाहत और सम्भावना का संयोग योग बिन्दु में ही शुभ परम्परा का उद्गम है। इसका प्रमाण रूप चेतना विकास मूल्य **शिक्षा–संस्कार** में मानव की पहचान, मानव की पहचान का मतलब मानवीय शिक्षा, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान और मानवीयता पूर्ण आचरण को बोधगम्य कराना ही है। इस क्रम में मूल सूत्र "त्व सहित व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी" ही है। मानवत्व अपने में जागृति के रूप में सुस्पष्ट है। जागृति अपने में समझदारी का स्वरूप होना स्पष्ट हो चुकी है। समझदारी अपने आप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व होना स्पष्ट हुआ। इसी क्रम में अर्थात जागृति क्रम में मानव परम्परा का वैभव, मानवत्व सहित महिमा, परिवार में प्रमाणित होना समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण, विश्व परिवार व्यवस्था तक सोपानीय क्रम में प्रमाणित होना है। इसी विधि से मानव संबंध और प्राकृतिक संबंध संतुलन होना पाया जाता है। नियति विरोधी, प्रकृति विरोधी, मानव विरोधी गति विधियो से मुक्ति पाने का उपाय भी यही है। हर मानव विरोधो से मुक्ति पाना

चाहता ही है। इसी तथ्यवश इसकी संभावना सुस्पष्ट होती है। प्रमाणित होना मानव परम्परा को ही है।**(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 52–53)**

- मानव के भ्रमित रहने का मूल कारण परम्परा जागृत न रहना ही है। परम्परा का स्वरूप प्रधान रूप में **शिक्षा–संस्कार**, राज्य व्यवस्था, धर्म व्यवस्था है।...**(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:59)**
- **शिक्षा–संस्कार** विधा में सहअस्तित्व और प्रमाणों को प्रस्तुत करना ही कार्यक्रम है। इसे क्रमिक विधि से प्रस्तुत किया जाना मानव सहज कर्तव्य के रूप में, दायित्व के रूप में स्वीकार होता है। मानवीय शिक्षा में जीवन एवं शरीर का बोध और इसकी संयुक्त रूप में अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन और दिशा बोध होना ही प्रधान मुद्दा है। इन दोनो मुद्दों पर संवाद होना आवश्यक है।**(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 68)**
- ...इस तथ्य को भली प्रकार से देखा गया है, समझा गया है, कि हर मानव तृप्ति पूर्वक ही जीने का इच्छुक है। ऐसी तृप्ति, सुख ,शांति, संतोष, आनंद के रूप में पहचान में आती है। ऐसी पहचान, जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के फलस्वरूप प्रमाणित होना पायी गयी। सुख, शांति, संतोष, आनंद अनुभूतियाँ समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का, प्रमाण के रूप में परस्परता में बोध और प्रमाण हो जाता है। ऐसी बोध विधि का नाम ही है **शिक्षा संस्कार**। शिक्षा का तात्पर्य शिष्टता पूर्ण अभिव्यक्ति से है। ऐसी शिष्टता अर्थात मानवीय पूर्ण शिष्टता समझदारी पूर्वक ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। इसकी आवश्यकता के लिए जनचर्चा भी एक अवशम्भावी क्रियाकलाप है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 70)**

- जागृत मानव परम्परा में मानवीय **शिक्षा–संस्कार** को पहचान लेना स्वाभाविक है। जिसमें सहअस्तित्व वादी विधि से सम्पूर्ण ताना बाना होना पाया जाता है। इसमें मानव अपने मानवत्व को पहचानना सहज हो जाता है मुख्य मुद्दा यही है। मानवत्व का पहला सूत्र मानवीयता पूर्ण आचरण सहित परिवार में व्यवस्था का प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी। इस व्याख्या के समर्थन में भौतिक, रासायनिक और जीवन क्रियाओं को, उन–उन में त्व सहित व्यवस्था सहित पहचानने, जानने, मानने की विधि से लोकव्यापीकरण योग्य होना पाया जाता है। मानवीय शिक्षा में मानव का अध्ययन सर्वाधिक होना चाहिए जबकि अभी तक शिक्षा का आधार और स्वरूप भौतिकवाद और आदर्शवाद के आधार पर रहा। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:80)**
- सम्पूर्ण मानव **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक ही अपनी दिशा, उद्देश्य और कर्तव्यों को निर्धारित कर पाता है। मानव की दिशा लक्ष्य निर्धारित हो पाना जागृति का प्रथम सोपान है। इसके आगे अपने आप में कार्यक्रम और कार्यव्यवहार सम्पादित होना स्वाभाविक है। जिसके फलन में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व प्रमाणित होना है जिसके लिए हर मानव नित्य प्रतीक्षा में है और उपलब्धि ही गम्यस्थली है। उसकी निरन्तरता ही परम्परा है। ऐसी लक्ष्य संगत परम्परा ही जागृत परम्परा है। इसी क्रम में संज्ञानशीलता प्रमाणित होना, संवेदनाएँ नियंत्रित होना पाया जाता है। संवेदनाओ के नियंत्रण को अपने आप में मर्यादा के सम्मान के रूप में पहचाना गया है। मर्यादाएँ परस्परता में अति आवश्यक स्वीकृतियाँ है। इन स्वीकृतियों के आधार पर किये जाने वाली कृतियाँ अर्थात कार्य और व्यवहार से मानव परम्परा में हर मानव सुखी होना स्वाभाविक है।...**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 82)**

- व्यवहार व्यवस्था का तात्पर्य अथवा समाज व्यवस्था का तात्पर्य मानव में, से, के लिए लक्ष्य समेत जीने की विधि, विधान, कार्य और व्यवहार ही है। व्यवहार विधि संबंधो के आधार पर मूल्यों के निर्वाह करने के दायित्व पर निर्भर किया जाता है। इसके लिए जो क्रमबद्धता अर्थात निर्वाह के लिए जो क्रम बद्धता होती है यही विधान है। इन विधि विधान के आधार पर सर्वप्रथम स्वस्थ मानसिकता की पहचान, निर्वाह, मूल्यांकन विश्वास का मूल आधार होता है। स्वस्थ मानसिकता जागृत मानसिकता होती है। जागृत मानसिकता अनुभवमूलक मानसिकता है। जागृतिपूर्ण मानसिकता अपने में मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता को प्रमाणित करने के क्रम में उद्धत रहती ही है। मानवीयता, देव मानवीयता, में परिवार और समाज व्यवस्था मानवीयता पूर्ण आचरण सहित प्रमाणित होना बनता है। इसी क्रम में दिव्य मानवीयता समग्र व्यवस्था में भागीदारी पूर्वक स्वतंत्रता, स्वराज्य को प्रमाणित करने में सार्थक हो जाती है। स्वतंत्रता, स्वराज्य सह अस्तित्व विधि से वैभवित होते है। स्वराज्य व्यवस्था में स्वाभाविक विधि से **मानवीय शिक्षा–संस्कार**, न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य, विनिमय–कोष, स्वास्थ्य–संयम कार्य और व्यवस्था अपने आप में निर्वाह होते है। ऐसे स्वराज्य व्यवस्था परिवार मूलक विधि से विश्व परिवार व्यवस्था तक दश सोपानीय विधि से सार्थक हो जाते है। हर स्थितियों में सामान्य रूप में 10–10 समझदार व्यक्तियों की एक सभा सम्पन्न होती है। एक परिवार में 10 समझदार व्यक्तियों होते हैं। ऐसे 10 व्यक्तियों में से एक व्यक्ति परिवार व्यवस्था के अतिरिक्त और सोपानीय व्यवस्था में भागीदारी के लिए निर्वाचित रूप में प्रस्तुत होना बनता है। ऐसे व्यक्ति को हर परिवार में पहचान लेना एक स्वाभाविक प्रक्रिया रहता ही है।

  जागृत मानव परिवार में परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने के आधार पर उपकार कार्य में प्रवृत होना स्वाभाविक है। समाधान समृद्धि के साथ परिवार में उपकार प्रवृति, ऐसे उपकार प्रवृति की परिवार समूह, ग्राम, ग्राम समूह, क्षेत्र, मंडल, मंडल समूह, मुख्य राज्य, प्रधान राज्य, विश्व परिवार राज्य सभा में भागीदार के लिए प्रस्तुत होना होता है। यही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप है। इस क्रम में हर परिवार अपने में से एक व्यक्ति को समग्र व्यवस्था में भागीदारी जैसे पावन और उपकारी कार्य के लिए अर्पित करना एक अनुपम स्वरूप है। ऐसे ही हर व्यक्ति और परिवार में मर्यादा सम्पन्न मानवीयता पूर्ण आचरण के साथ सहज रूप में तृप्त होना स्वाभाविक है। इस मुद्दे पर जनचर्चा की आवश्यकता है यह अति आवश्यक है। यह मुद्दा सार्थक है कि नहीं, इसे भी परामर्श करना आवश्यक है। (**अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:83–84**)

- यह भी चर्चा का मुद्दा है कि हम शासन में जीना चाहते है या व्यवस्था में। यदि शासन चाहते हो तब अभी हो रहे भ्रष्टाचार, दूराचार, अनाचार उसी प्रकार होते रहेंगे। यदि जन मानस इसे नहीं चाहता तो परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को अपनाना होगा। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था अपने आप में समझदारी सम्पन्न अनेक परिवारो की संयुक्त व्यवस्था है। प्रत्येक परिवार में उपकार प्रवृति होने के आधार पर स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार स्वयं स्फूर्त होता है। इसमें जनप्रतिनिधि किसी भी प्रकार से धन व्यय के बिना उपलब्ध होना एक महिमा सम्पन्न घटना है जिसकी आवश्यकता है। इस प्रकार 10% प्रतिशत व्यक्ति हर गांव, मुहल्ले, देश में सम्पूर्ण धरती में उपलब्ध होना समीचीन है। इस मुद्दे पर परामर्श कार्य, संवाद सघन रूप में होना चाहिए। इसके लिए हर मानव को समझदार होना आवश्यक है। हर नर नारी समझदार होना भी चाहते है। समझदारी के लिए वस्तु लोक सम्मुख प्रस्तुत हो चुकी है यही मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद है। इसके आधार पर मानवीय **शिक्षा–संस्कार** का प्रारूप लोकमानस के लिए

अर्पित हुआ है। ये सभी विधा को जन चर्चा में लाकर निष्कर्ष निकालना और स्वयं स्फूर्त विधि से अपनाना सारी दरिद्रता से छुटकारा है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 86-87)**

- जागृति पूर्वक जीने में समझदारी व्यवस्था और मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही कार्यक्रम के रूप में निर्धारित होता है। मानव लक्ष्य अपने आप में स्पष्ट हो चुका है। ऐसे लक्ष्य को प्रमाणित करती हुई मानव परम्परा जागृत मानव परम्परा में होना पायी जाती है। ऐसी स्थिति में मानवीय **शिक्षा-संस्कार** का प्रबल प्रमाण परम्परा में बना ही रहता है। मानवीय **शिक्षा** में मानव का अध्ययन पूरा हो जाता है। मानव के अध्ययन में शरीर और जीवन ही है। इसके कारण रूप में समग्र अस्तित्व ही है। समग्र अस्तित्व में पूरक विधि से जीवन का होना और भौतिक रासायनिक वस्तुओ की रचना विधि से मानव शरीर का भी रचना होना वर्तमान है। शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में मानव अपने कार्यकलापो को करता हुआ, जीता हुआ, अपनी पहचान बनाने के लिए यत्न प्रयत्न करता हुआ देखने को मिलना स्वाभाविक है। जागृत परम्परा में **शिक्षा** में सम्पूर्ण अस्तित्व का अध्ययन एक मौलिक विधा है। पूरकता विधि से एक दूसरे की यथा स्थितियो का वैभव समझ में आता है। इसी क्रम में हर पद और अवस्था की यथा स्थितियाँ अध्ययनगम्य हो जाती है। अध्ययनगम्य होने का तात्पर्य सह-अस्तित्व में होने के रूप में स्वीकृत होने से है। अस्तित्व में जो कुछ होता है, जो कुछ है उसी का अध्ययन है। अस्तित्व में जितनी भी विविधता दिखाई पड़ती है इन सभी में विकास और जागृति का सूत्र समाया रहता है। फलन में मानव जागृति को प्रमाणित करने के लिए उद्यत है ही। इस प्रकार मानव परम्परा को जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करना सुलभ हो जाता है। संवाद का मुद्दा यही है कि जागृति हमको चाहिये कि नहीं।

  मेरे अनुसार लोकमानस जागृति के पक्ष में है जागृति का मतलब जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है। मानव परम्परा में अभी छ: सात सौ करोड़ की जनसंख्या बतायी जाती है। इन सात सौ करोड़ आदमियों में से कोई ऐसा मेरी नजर में नहीं आता है जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से मुकरे। जानने, मानने के उपरान्त पहचानना निर्वाह करना स्वाभाविक होता है। जानना मानना नहीं होने पर भी मानव में पहचानना निर्वाह करना होता ही है। न जानते हुए पहचानने के लिए प्रयत्न संवेदनशीलता के साथ ही हो पाता है। मानव परम्परा में संवेदनाओ का आधार झगड़े की जड़ बन चुकी है। हर मानव आवेशित न रहते हुए स्थिति में झगड़े के पक्ष में नहीं होता है जब आवेशित रहता है तभी झगड़े के पक्ष में होता है। आवेशित होना भय और प्रलोभन के आधार पर ही होता है। सारे प्रलोभन संवेदनाओं के पक्ष में है सारे भय भी संवेदनाओ के आधार पर ही है। इसलिए समझदारीपूर्वक व्यवस्था में भागीदारी के आधार पर मानव लक्ष्य को सार्थक बनाने के कार्यक्रम में क्रियाशील रहना, निष्ठान्वित रहना ही समाधान परम्परा का आधार है। समाधान अपने आप में न भय है न प्रलोभन है निरन्तर सुख का स्रोत है। यही संज्ञानशीलता का प्रमाण है। यही मानवीयता पूर्ण **शिक्षा संस्कार** का फलन है। इस प्रकार से जीने के लिए आवश्यक जनचर्चा, संवाद विश्लेषण अपने आप में महत्व पूर्ण मुद्दा है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:102-103)**

- ...इस प्रकार से **तीसरे सोपान** के लिए दस जनप्रतिनिधि परिवार समूह सभा से निर्वाचित होकर ग्राम सभा के लिए उपलब्ध रहेंगे। इसके निर्वाचन की कालावधि को हर ग्राम सभा अपनी अनुकूलता के आधार पर अथवा सबकी अनुकूलता के आधार पर निर्णय लेगी। उस कालावधि तक मूलत: परिवार से निर्वाचित होकर परिवार समूह से निर्वाचित होकर ग्राम परिवार सभा कार्यक्रम में भागीदारी करने के लिए पहुँचे रहते है। इनके लिए कोई मानदेय या

वेतन स्वीकार नहीं होता है। क्योंकि हर परिवार समृद्ध रहता ही है। समाधान समद्धि के आधार पर ही जनप्रतिनिधि निर्वाचन होना पाया जाता है। जब दसो जनप्रतिनिधि एकत्रित होते है ये सभी प्रतिनिधि हर कार्य करने योग्य रहते हैं। व्यवस्था कार्य में ऐसा कोई भाग नहीं रहेगा जिसे यह कर नहीं पायेगे। दूसरा हर कार्य के लिए समय और प्रक्रिया को निर्धारित करने में समर्थ रहेंगे। **इस शोध के आधार पर मानवीय शिक्षा– संस्कार में पारंगत जैसे एक गॉव में प्राथमिक शिक्षा का आवश्यकता तो रहता ही है उसमें पारंगत रहेंगे।** न्याय–सुरक्षा कार्य में पारंगत रहेंगे। उत्पादन–कार्य में पारंगत रहेंगे। विनिमय कार्य में पारंगत रहेंगे। स्वास्थ्य संयम कार्य में भी पारंगत रहेंगे। प्राथमिक स्वास्थ्य विधा में सभी पारंगत रहेंगे। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:112–113)**

- **शिक्षा**–संस्कार की मूल वस्तु अक्षर आरंभ से चलकर सहअस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान सम्पन्न होने तक क्रमिक **शिक्षा** पद्धति रहेगी। हर गाँव में प्राथमिक **शिक्षा** का प्रावधान बना ही रहेगा। गाँव के हर नर–नारी समझदार होने के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से प्राथमिक **शिक्षा** को सभी शिशुओ में अन्तस्थ करने का कार्य कोई भी कर पायेंगे। इस विधि से प्राथमिक **शिक्षा** के कार्य के लिए कोई अलग से वेतन या मानदेय की आवश्यकता नहीं रहती है। गाँव के हर नर–नारी शिक्षित करने का अधिकार सम्पन्न होगें।

  दूसरे विधि से हर गाँव में प्राथमिक **शिक्षा** शाला के साथ हर अध्यापक के लिए एक निवास साथ में ग्राम शिल्प का एक कार्यशाला, हर अध्यापक के लिए 5–5 एकड़ की जमीन और 5–5 गाय की व्यवस्था रहेगी यह पूरे गाँव के संयोजन से सम्पन्न होगा। यह शाला, अभिभावक विद्याशाला के रूप में कार्यरत रहेगी। इस दोनो विधि से शिक्षा–संस्कार कार्य को पूरे गॉव में उज्ज्वल बनाने का कार्यक्रम सम्पन्न होगा। मानवीय **शिक्षा** मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद पर आधारित रहेगी। **शिक्षा** सहअस्तित्व दर्शन जीवन ज्ञान के रूप में प्रतिपादित होगी। इस प्रकार हम एक अच्छी स्थिति को पायेंगे। जिससे सहअस्तित्ववादी मानसिकता बचपन से ही स्थापित होने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:113–114)**

- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में **चौथा सोपान** ग्राम समूह सभा के रूप में प्रकट होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। क्योंकि केवल परिवार व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। सम्मिलित परिवार व्यवस्था आवश्यक है क्योंकि परिवार की सार्वभौमता सम्पूर्ण मानव के साथ जुड़ी हुई है। इसे प्रमाणित करने के लिए एक निश्चित क्रम आवश्यक है ही। चौथे सोपान में 10 ग्राम मोहल्ला परिवार सभाओं से एक–एक व्यक्ति निर्वाचित होकर एक ग्राम समूह परिवार सभा को गठित होना स्वाभाविक है। ये सभी निर्वाचित सदस्य अपने में तृतीय सोपानीय कार्यक्रमों में पारंगत होते हुए चौथे सोपान में अपनी–अपनी भागीदारी की पहचान प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत हुए रहते है। **इसमें दस गाँव के लिए शिक्षा संस्था रहेगी।**पहले की तरह से दो विधियों से इसे क्रियान्वयन करना बन जाता है। स्वायत्त परिवार में से विद्वान नर नारी को भागीदारी करने का अवसर बना रहेगा। इसमें सामर्थ्यता की पहचान है। पढ़ाई लिखाई रहेगी समझदारी भी रहेगी और प्रतिभा की छ: महिमाएँ प्रमाणित रहेगी। ऐसे कोई भी व्यक्ति के किये स्वयं स्फूर्त विधि से **शिक्षा** संस्था में उपकार के मानसिकता से कार्य करने के लिए अवसर रहेगा। दूसरे विधि से हर दस गाँव से अर्थात 1000–1000 परिवार के श्रम सहयोग से अथवा योगदान से अभिभावक विद्याशाला बनी रहेगी।

  इस विद्या शाला में दस गाँव से विद्यार्थियों को पहुँचने के गतिशील साधन को ग्राम समूह सभा बनाए रखेगा। इन साधनो का उपार्जन 1000 परिवार के योगदान से बना रहेगा। हर परिवार उपने श्रम नियोजन के फलस्वरूप उपार्जित किये (धन) गये में से प्रस्तुत किये गये अंशदान के फलस्वरूप विद्यालय सभी प्रकार से सम्पन्न हो पाता

है। इसी ग्राम समूह परिवार से संचालित **शिक्षा** संस्थान में जो भागीदारी करते हैं यह अध्यापक, विद्वान, संस्कार कार्यों को, समारोहो को, उत्सवो को सम्पादित करने का कार्य करेंगे। जैसे जन्म उत्सव, नामकरण उत्सव, अक्षराभ्यास उत्सव, विवाह उत्सव आदि संस्कार कार्यो को सम्पन्न करायेंगे। जहाँ स्वतंत्र उत्सव, मूल्यांकन उत्सव, कार्यक्रम उत्सव को ग्राम परिवार सभा, ग्राम समूह परिवार सभा संचालित करेंगे। हर उत्सव में विद्यार्थियों और अध्यापको के प्रेरणादायी वक्तव्यों को प्रस्तुत करायेंगे। प्रेरणा का आधार समझदार होने, समझदारी के अनुसार ईमानदारी, ईमानदारी के अनुसार जिम्मेदारी रहेगी। जिम्मेदारी के अनुसार भागीदारी रहेगी। इसी मंतव्य को व्यक्त करने के लिए साहित्य का प्रस्तुतिकरण रहेगा। स्वास्थ्य संयम प्रेरणादायी प्रस्तुतियाँ स्वागतीय रहेगी। शोध अनुसंधान का स्वागत और मूल्यांकन करता रहेगा।

सर्वमानव अपने में शुभ चाहने वाला होने के आधार पर और सर्वमानव समझदार होने के आधार पर और सर्वमानव व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के आधार पर मूल्याँकन होता रहेगा। ग्राम समूह सभा में **शिक्षा–संस्कार** पहली कड़ी है।...(**अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:117–118**)

- **पाँचवे सोपान** में दस ग्राम समूह सभा से निर्वाचित दस सदस्य क्षेत्र परिवार सभा के रूप में पहचाने जायेंगे। इसमें अनुभव की और भी मजबूती बनी रहेगी। समझदारी में परिपक्व होना स्वाभाविक है भागीदारी में गति और तीव्र होती जायेगी। इन ही सब सौभाग्य को एकत्रित होना क्षेत्र परिवार सभा अपने वैभव को प्रमाणित करने में समर्थ होगी।

  बुनियादी तौर पर हर परिवार समझदार होने के आधार पर ही क्षेत्र परिवार सभा का वैभव भी प्रमाणित होने की संभावना बनी रहती है। हर मानव का उद्देश्य साम्य होने के आधार पर व्यवस्था सूत्र व्याख्या अपने आप स्पष्ट होती है। **इसकी भी प्रथम कड़ी शिक्षा–संस्कार कार्यक्रम है।** इन **शिक्षा** संस्कार कार्यो में यथावत एक विद्यालय रहेगा। इसके पहले की सीढ़ी में जो प्रौद्योगिकी बनी रहती है उसके योगदान पर उत्तर माध्यमिक शालाएँ और स्नातक शालाएँ क्रम विधि से कार्य करेगी। क्रम विधि का तात्पर्य हर इन्सान चाहे नारी हो, नर हो समझदार होने के लिए कार्य करेगा। समझदारी का किसी उँचाई इस क्षेत्र परिवार सभा के अन्तर्गत प्रमाणित होना स्वाभाविक है। ऐसे प्रमाण के लिए तमाम व्यक्ति प्रशिक्षित रहेंगे। इसी कारणवश स्नातक पूर्व और स्नातक विद्यालय किसी क्षेत्र सभा के अन्तर्गत संचालित रहेंगे। जिसमें मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद की रोशनी में ज्ञान, विज्ञान, विवेक सम्पन्न विधि से हर विद्यार्थी की मानसिकता में स्थापित करने का कार्य होगा।...(**अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:119**)
- **छठवाँ सोपान** मंडल परिवार सभा का गठन दस क्षेत्र सभाओं से निर्वाचित दस सदस्यों के संयुक्त रूप में प्रभावित होगा। इसमें भी यथावत पाँच कड़ियो के रूप में सम्पूर्ण कार्य सम्पादित होंगे। **शिक्षा–संस्कार कार्य स्नातक व स्नातकोत्तर रूप में प्रभावित रहेगी। स्नातकोत्तर शिक्षा–संस्कार में जीवन ज्ञान सहअस्तित्व दर्शन में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी। इसी के साथ साथ अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का सम्पूर्ण तकनीकी विज्ञान विवेक कर्माभ्यास सम्पन्न कराना बना रहता है। ऐसी संस्था में कार्यरत सारे अध्यापक संस्कार कार्यो के लिए जहाँ–जहाँ जरूरत पड़े वहाँ–वहाँ पहुँचेगे और कार्य सम्पन्न कराने के दायी रहेंगे।** उत्सव सभा मूल्याँकन प्रक्रिया सब ग्राम सभा सम्पन्न करेगी। (**अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:120**)

- मंडल समूह परिवार सभा दस मंडल परिवार सभा में से एक–एक व्यक्ति निर्वाचित होकर मंडल समूह परिवार सभा के कर्णधार रहेंगे। इसी क्रम में सभी प्रकार के कार्यकलापो को तथा पांचों कड़ियो के कार्यक्रमों को इस **सातवीं सोपान** में प्रमाणित करने का दायित्व रहेगा इसमें सम्पूर्ण मानव प्रयोजनो को स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया जाना कार्यक्रम रहेगा। ऐसे मानव अधिकार परिवार सभा से ही प्रमाणरूप में वैभवित होते हुए शनै: शनै: पुष्ट होते हुए मंडल समूह परिवार सभा में मानव अधिकार का सम्पूर्ण वैभव स्पष्ट होने की व्यवस्था रहेगी। समान्यत: मानव अर्थात समझदार मानव शनै: शनै: दायित्व के साथ अपनी अर्हता की विशालता को प्रमाणित करता ही जाता है। अपनी पहचान का आधार होना हर व्यक्ति पहचाने ही रहता है। समूचे अनुबंध समझदारी से व्यवस्था तक को प्रमाणित करने तक जुड़ा ही रहता है। प्रबंधन इन्हीं तथ्यो में, से, के लिए होना स्वाभाविक है। समझदारी में परिपक्व व्यक्तियों का समावेश मंडल समूह सभा में होना स्वाभाविक है। ऐसे **देव मानव दिव्य मानवता को प्रमाणित करते हुए दृढ़ता सम्पन्न विधि से शिक्षा विधा में शिक्षा–संस्कार कार्य को सम्पादित करते है।**

  शिक्षा–संस्कार एक प्रथम कड़ी है इसमें अति सूक्ष्मतम अध्ययन, शोध प्रबंधो को तैयार करने की व्यवस्था रहेगी। शोध प्रबंधो का मूल उद्देश्य मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था को और मधुरिम सुलभ करना ही रहेगा। इसके लिए सारी सुविधाएँ जुटाने का कार्यक्रम मंडल समूह सभा बनाये रखेगा। इसका प्रबंधन मंडल सभा के जितने भी प्रौद्योगीकी रहेगी उसकी समृद्धि के आधार पर व्यवस्थित रहेगा। ऐसी व्यवस्था के तहत में और विशाल विशालतम रूप में व्यवस्था सूत्रों को सुगम बनाने का उपाय सदा–सदा शोध विधि से व्यवस्थापन रहेगा। ऐसे शोध कार्यो के लिए सामग्री में सातो सीढ़ियों की गतिविधियाँ रहेगी इस प्रकार शोध प्रबंधन का स्रोत बनी रहेगी। ऐसे शोध प्रबंधन स्वाभाविक रूप में दसो सीढ़ी और पाँचों कड़ियो की समग्रता के साथ नजरिया बना रहेगा। इस विधि से मंडल समूह सभा की प्रथम कड़ी का लोक उपकारी और मानव उपकारी होने के रूप में प्रमाणित रहेगी।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:121–122)**
- **आठवीं सोपान** में मुख्य राज्य सभा होगी। जिसके लिए मंडल समूह सभा से एक एक निर्वाचित सदस्य रहेंगे। जिनके आधार पर समूचे कार्यकलाप सम्पन्न होगे। जिसमें **पहली कड़ी शिक्षा–संस्कार** कार्य की गतिविधियों में सर्वोत्कृष्ट समाज गति, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट न्याय–सुरक्षा कार्य, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट विनिमय कार्य गति और सर्वोत्कृष्ट स्वास्थ्य–संयम का शोध संयुक्त रूप में होता रहेगा। ये सभी सोपानीय परिवार सभाओं के लिए प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत होती रहेगी। इस विधि से अपनी गरिमा सम्पन्न शिक्षण कार्य, कर्माभ्यास पूर्ण कार्यक्रम को सम्पन्न करता रहेगा।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:123–124)**
- **नवें सोपान** में प्रधान राज्य सभा होगी यह दस निर्वाचित सदस्यों से गठित होगी। यह दस सदस्य दस मुख्य राज्य परिवार सभा में कार्यरत दस–दस सदस्यों में से एक–एक व्यक्ति निर्वाचित किये जाने की विधि से उपलब्ध रहेगी। इसमें ऐसे पारंगत विद्वान होने के आधार पर प्रधान राज्य सभा का गठन गरिमामय होना स्वाभाविक है। इस सभा गठन कार्य के लिए जितने भी साधनो की आवश्यकता रहती है दस मुख्य राज्य सभाओं के द्वारा संचालित उद्योगो के आधार पर प्रावधानित रहेगी। ये सभी प्रावधान अपने आप में लोकार्पण विधि से संपादित रहेगी। दूरसंचार व्यवस्था भी इन्हीं स्रोतों से समावेशित रहेगी। फलस्वरूप प्रधान राज्य सभा की गति सुस्पष्ट रहेगी अथवा आवश्यकता अनुसार रहेगी।

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा–संस्कार ही रहेगी। प्रधान राज्य परिवार सभा से संचालित **शिक्षा** समूचे दसो मुख्य राज्यों की संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था की सार्थकता और समग्र व्यवस्था की सार्थकता के आँकलन पर आधारित श्रेष्ठता और श्रेष्ठता के लिए अनुसंधान, शोध, शिक्षण, प्रशिक्षण, कर्माभ्यासपूर्वक रहेगी। प्रौद्योगिकी विधा का कर्माभ्यास प्रधान रहेगा। व्यवहार अभ्यास प्रक्रिया में प्रमाणीकरण प्रधान रहेगा। इस प्रकार यह उन सभी जनप्रतिनिधियो के लिए प्रेरणादायी **शिक्षा** व्यवस्था रहेगी और लोकव्यापीकरण करने के नजरिये से चित्रित करने की प्रवृत्ति रहेगी। इसी मानवीय **शिक्षा** कार्यक्रम में साहित्य कला की श्रेष्ठता के संबंध में प्रयोजन के अर्थ में मूल्यांकन रहेगी। श्रेष्ठता प्रबंध, निबंध, कला प्रदर्शन, साहित्य, मूर्ति कला, चित्रकलाओं के आधार पर मूल्यांकन और सम्मान करने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:124–125)**

- **दसवीं सोपान** विश्व परिवार राज्य सभा है। सभी प्रधान राज्य सभाएं निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रस्तुत किए रहते हैं। ऐसे दस प्रतिनिधि विश्व राज्य सभा में होंगे। इस कार्य में इस धरती पर आज की स्थिति में दस प्रधान राज्य सभा होना संभव नहीं है। इसलिए मंडल समूह या मुख्य राज्य सभाएँ जो और सदस्यों को देना चाहते हैं उनसे दस का पूरा खाका बना लेना होगा। विश्व राज्य सभायें दस जन प्रतिनिधि कार्य संचालन करेंगे।

  इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा संस्कार कार्य रहेगी। शिक्षा संस्कार कार्य में प्राकृतिक संतुलन, (उद्योंग वन व खनिज) जीव संतुलन, मानव न्याय संतुलन का कार्य सम्पादित होगा। साथ में जलवायु संतुलन, ऋतु संतुलन, धरती का संतुलन, वन खनिज का संतुलन सम्बंधी अध्ययन करने की व्यवस्था रहेगी। ऐसे अध्ययन के लिए किसी भी सोपानीय सभा के सीमा में किसी भी व्यक्ति को भेज सकते हैं विद्वान बना सकते हैं और लोकव्यापीकरण के लिए प्रावधानित कर सकते है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:126)**

- **जनचर्चा ही शिक्षा–संस्कार का शिलान्यास/**

  वातावरण का सूत्र :

  मानव अपनी परस्परता में संवाद विधि से तथ्यो को जानने, मानने, पहचानने के आशय का प्रयेाग करता है। सर्वमानव में इसकी आवश्यकता रहती ही है। तथ्य अपने में सहअस्तित्व सहज ही होता है। सहअस्तित्व से मुक्त तथ्य को प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए सहअस्तित्व में पूर्ण तथ्य विद्यमान है। इस विधि से हम मानव तथ्यान्वेषी होना प्रमाणित होते हैं। तथ्य पूर्ण स्वरूप मानव में सहअस्तित्व पूर्ण नजरिया और जागृति का प्रमाण ही है। जागृति का प्रमाण सर्वमानव में स्वीकृत है। सहअस्तित्व पूर्ण नजरियें में ध्रुवीकरण होना शेष रहा इसे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद ने प्रस्तावित कर दिया है। अध्ययनपूर्वक सुस्पष्ट होने की सम्पूर्ण ज्ञान मीमांसा, कर्म मीमांसा और व्यवस्था मीमांसा को स्पष्ट कर दिया है। सुदूर विगत से ज्ञान मीमांसा, कर्म मीमांसा का पक्षधर रहा है। ये दोनो प्रतिपादन रहस्य से मुक्त नहीं हो पाए हैं। विगत प्रयास के अनुसार वर्तमान में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्वाद के अनुसार स्पष्ट हो जाता है इसे हर मानव जाँच परख सकता है कर्माभ्यास पूर्वक प्रमाणित कर सकता है।

  हर मानव संवाद के लिए इच्छुक है संवाद में परस्पर भरोसा करना भी आवश्यकता है। भरोसा इस बात का है कि संवाद से हम निश्चित ठौर तक पहुँच पाते हैं। यह परस्पर मानव में व्यक्तित्व पर निर्भर रहता है। व्यक्तित्व आहार विहार व्यवहार के रूप में पहचानने में आता है। इस क्रम में मानव द्वारा एक दूसरे को पहचानने का अभ्यास सर्वाधिक रूप में सार्थक हो चुका है। अर्थात हर मानव में अपने अपने तरीके से जाँचने की विधि बन चुकी है यह

मानव कुल के उत्थान की एक यथा स्थिति है। यह यथा स्थिति स्वयं आगे की यथा स्थिति के लिए आधार है ही। इसलिए मानव संवाद पूर्वक ही यथा स्थिति तक, सत्यता तक, यथार्थता तक, वास्तविकता तक पहुँच पाता है। पहुँच पाने का मतलब स्वीकृत होने और प्रमाणित होने से है। इसक्रम में हम मानव आसानी से स्वीकार सकते है, मंगल मैत्री पूर्वक संवाद कार्य को परिवार से चलकर विश्व परिवार तक व्यवस्थित विधि से सम्पन्न कर सकते हैं। इसकी आवश्यकता सदा–सदा से सदा–सदा तक बनी ही रहेगी। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:131–132)**

संदर्भ: अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण: 2009)

- मानव परंपरा तब तक भ्रमित रहना भावी है जब तक समुदाय और समुदायगत आवश्यकता की हठधर्मिता, सुविधा संग्रह की हठधर्मिता, भोग–अतिभोगवादी हठधर्मिता, आदमी को मूलत: दुखी मानने वाली हठधर्मिता, स्वार्थी, अज्ञानी और पापी मानने वाली हठधर्मिता, कोई एक समुदाय अपने को धर्मी अन्य को विधर्मी मानने की हठधर्मिता, द्रोह–विद्रोह–शोषण और युद्ध को एक आवश्यकता मानने वाली हठधर्मिता, व्यक्तिवादी (अहम्तावादी) मानसिकता के लिये सभी हठधर्मिता रहेगी। इसका निराकरण जागृति ही है। जागृति पूर्ण परंपरा मे ही अर्थात् जागृत **शिक्षा–संस्कार**, जागृत न्याय व्यवस्था और जागृत उत्पादन कार्य–व्यवस्था, जागृत लाभ–हानि मुक्त विनिमय व्यवस्था और जागृत स्वास्थ्य संयम पीढ़ी से पीढ़ी को सुलभ होने से है। ऐसी जागृत पूर्ण परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी जागृत होते ही रहना एक अक्षुण्ण परंपरा है। ऐसी परंपरा में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वसुलभ होने की कार्यप्रणाली, पद्धति, नीति क्रियाशील रहेगी फलत: विविध प्रकार से समुदायों को अपनाया हुआ भ्रम अपने आप विलय होना स्वाभाविक है। यह अनुभव मूलक जीने के क्रम में पाया जाने वाला वैभव है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 21–22)**
- मानव परंपरा में यह विदित है कि मानव क्रियाकलाप के मूल में मानसिकता का रहना अत्यावश्यक है। मानसिकता विहीन मानव को मृतक या बेहोश घोषित किया जाता है। विकृत मानसिकता (मान्य, सामान्य मानसिकता के विपरीत) वाले मानव को पागल, असंतुलित अथवा रोगी के नाम से घोषणा की जाती है। यह सभी क्रियाकलाप वांछित, इच्छित और आवश्यकीय मानसिकता हर क्षण, हर पल, हर दिन शरीर यात्रा पर्यन्त प्रभावित होने के क्रम में ही राज्य मानसिकता, धर्म मानसिकता, व्यापार मानसिकता, अधिकार मानसिकता, भोग मानसिकता, सुविधा–संग्रह मानसिकता समीक्षित होता है। न्याय मानसिकता, धर्म (समाधान) मानसिकता, नियम मानसिकता, प्रामाणिकता पूर्ण मानसिकता, समृद्धि मानसिकता, सह–अस्तित्व मानसिकता, वर्तमान में विश्वास मानसिकता, परिवार मानसिकता, स्वायत्त मानसिकता, समाज मानसिकता, व्यवस्था मानसिकता, मानवीय **शिक्षा–संस्कार** मानसिकता, स्वास्थ्य संयम मानसिकता का मूल्यांकन किया जाना जागृत परंपरा में संभव होता है।... **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 26–27)**

- अनुभवमूलक विधि से **शिक्षा** का स्वरूप अपने आप से जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहज विधि से **शिक्षा–संस्कार** सम्पन्न करने का उपक्रम सहज होना देखा गया है। इसे सर्व सुलभ करना सम्भव है। इस तथ्य को भी परिशीलन कर चुके हैं। ऐसी **शिक्षा–संस्कार** को मानवीय **शिक्षा–संस्कार** का नाम दिया है। यह **शिक्षा** का स्रोत सह–अस्तित्व सहज है। इस बात को सत्यापित किये हैं। अस्तित्व में नित्य व्यवस्था है न कि शासन। शासन को व्यवस्था मानना ही पूर्ववर्ती दोनों विचारधारा भटकने का एक बिन्दु रहा है। दूसरा प्रधान बिन्दु अस्तित्व को समझने में असमर्थ रहा है या अड़चन रहा है अथवा भ्रम से पीड़ित रहे हैं। इन्हीं कारणों से दोनों प्रकार के विचारधाराएँ अस्तित्व सहज यर्थाथता, वास्तविकता, सत्यता को स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में अनुभव करने में वंचित रहे हैं या अनुभव हुआ किन्तु अभिव्यक्ति संप्रेषणा में प्रमाणित होना संभव नहीं हो पाया है। जबकि हमें अस्तित्व में अनुभव के अनंतर अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन में

कोई अड़चन उत्पन्न नहीं हुई। अब यह भी सर्वेक्षण, निरीक्षण, परीक्षण की बेला समीचीन है कि यह संप्रेषणा मानव कुल में, से, के लिये आवश्यकता के रूप में विदित होगा या नहीं। हमें इस पर पूर्ण भरोसा है – मानव में, से, के लिये अस्तित्व में अनुभव एक आवश्यकता के रूप में स्वीकार्य हुआ हो ऐसी स्थिति में यह अभिव्यक्ति, संप्रेषणाएँ स्वाभाविक रूप में बोधगम्य, हृदयंगम पूर्वक सह–अस्तित्ववादी मार्ग को प्रशस्त करेगा क्योंकि अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में नित्य विद्यमान है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 35–36)**

- इस दशक तक दंडाधिकार, दमनाधिकार, पूंजी का अधिकार, धरती का अधिकार, मानव पर अधिकार, जीवों पर अधिकार, वनों पर अधिकार, खनिजों पर अधिकार, प्रौद्योगिकी पर अधिकार, व्यापार अधिकार, राज्याधिकार, समुद्र और आकाश पर अधिकार, धर्माधिकार और बौद्धिक संपदाओं पर अधिकारों का चर्चा, अधिकारों की सीमा और मर्यादाओं पर भी ध्यान दिया जाना देखा गया। इन सभी मुद्दों के सम्बन्ध में कई समुदायों अथवा सभी समुदायों का सम्मिलित अथवा समुदाय प्रतिनिधियों का सम्मिलित गोष्ठी, विचारपूर्वक गोष्ठी, विचार पूर्वक निर्णयों को स्वीकारा गया। अब ऐसी सभी स्वीकार्यताएं महिमामय दस्तावेजों के रूप में माने गये हैं। महिमा सम्पन्न दस्तावेज का तात्पर्य जिस स्वीकृतियों का हेराफेरी होने से उसके लिये डरावनी सबक सीखने के लिये स्वीकृतियाँ बनी रहती हैं। या इसको मर्यादा माना जाता है। ये सब ऐसे मौलिक दस्तावेजों का मूल तात्पर्य सभी अपने–अपने देश में शांतिपूर्वक जी सके इसी मानसिकता से उक्त सभी बातों पर एक समझौता किया जाता है। जबकि अभी तक पूर्वावर्ती किसी भी चिन्तन के अनुसार, कोई भी वांग्मय जो मानव सम्मुख प्रस्तुत हुई है उसमें सार्वभौम शांति का कोई परिभाषा, प्रतिपादन, उसका व्याख्या संप्रेषित नहीं हो पाया। साथ ही सुख शांति की अपेक्षा हर मानव में होना पाया जाता है।

  उक्त मुद्दों पर स्वीकृत अधिकारों के आधार पर किये गये समझौते बारंबार बदलते भी रहते है। इसी के साथ इस शताब्दी के अंतिम दशक तक में यह भी देखा गया जिस देश के पास सर्वाधिक समर शक्ति हाथ लगी है वह किसी के अधिकारों को भी हथिया लिया है और अपने अधिकार के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस शताब्दी के पहले भी इस प्रकार की नजीरें उपनिवेश के रूप में घटित होना ख्यात हो चुकी है। इस प्रकार कोई भी अपने सामरिक कूटनीतिक (अन्त:कलह को पैदा करो–राज करो) मानसिकता से ही पहले भी जो अपना देश नहीं है ऐसे देशों पर अधिकार पाने का प्रयोग किया है। यह राज्याधिकार मानसिकता मूलत: अपने स्वजनों, स्वजातियों और स्वदेशियों के सुविधा के लिये अन्य देश की सम्पदाओं को अपहरण कर, शोषण कर अपने देश में उपयोग करने के रूप में प्रयास करना देखा गया है। आदिकाल से ही सामरिक शक्ति सम्पन्न राज्य को विकसित राज्य, उस देश में निवास करने वालों को विकसित जनजाति होना मान्यता के रूप में लोकव्यापीकरण हुआ है जबकि युद्ध न तो विकास का आधार है, कड़ी है, न प्रक्रिया है। क्योंकि इससे अखण्ड समाज का एक भी सूत्र–व्याख्या, प्रयोजन प्रमाणित नहीं होता। जबकि मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति से अखण्ड समाज का ही सूत्र रचना, व्याख्या व प्रयोजन नित्य समीचीन है। इससे वंचित होने का एक ही कारण है, भ्रमात्मक मानसिकता अथवा भय, प्रलोभन, आस्थाओं से ग्रसित मानसिकता ही है। अभी तक जितने भी झीना–झपटी युद्ध, विश्वयुद्ध हुए हैं, वे सब उक्त तीनों आधारों पर ही सम्पन्न हुए हैं। अतएव अनुभव मूलक विधि से ही मानवीयतापूर्ण पद्धति प्रणाली नीतिपूर्वक है। अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था, मानवीयतापूर्ण **शिक्षा**–संस्कार सुलभता, न्याय–सुरक्षा सुलभता, उत्पदान–कार्य सुलभता, विनिमय–कोष सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता नित्य वैभव के रूप में इसी धरती पर वैभवित

होना सहज है, नियति है, एक अपरिहार्यता है। ऐसी ऐश्वर्य सम्पन्न मानव परंपरा **महिमा** से ही अनेक राज्य, समुदाय सम्बन्धी अधिकारोन्माद समापन होना स्वाभाविक है। इसका समापन और मानवीयता का उदय अर्थात् जागृति ही मानव परंपरा में, से, के लिये मौलिक संक्रमण और परिवर्तन है। **(अध्याय : 2, पृष्ठ नंबर : 36 – 38)**

- स्वायत्त मानव का प्रमाण रूप **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** ही है। इसकी महिमा को स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन और व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वालंबन है। ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। हर परिवार मानव परस्परता में सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति को पाना देखा गया है। परिवार मानव ही परिवार सहज आवश्यकता के अनुसार अपनाया गया उत्पादन कार्य में एक दूसरे के पूरक होते हैं, भागीदारी का निर्वाह करते हैं, फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना देखा गया है। यही समृद्धि, समाधान, न्याय सूत्र होना देखा जाता है। परिवार में समाधान और समृद्धि सम्बन्धों के आधार पर पाये गये उभय तृप्ति सहज न्यायपूर्वक व्यवस्था में जीना सहज होता हुआ देखा गया है। इन्हीं सहजता की पुष्टि में आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि को प्रमाणित कर देता है। व्यवस्था में जीना ही समाधान का प्रमाण है और वर्तमान में विश्वास है। अतएव स्वायत्त मानव स्वरूप अनुभव मूलक होना देखा गया है। फलस्वरूप परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव के रूप में होना नियति सहज अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) और प्रामाणिकता (अनुभव और पूर्ण जागृति) सहज मानव में सार्थक होना देखा गया है। इसी आधार पर यह "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" लोक मानस के लिये प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 40–41)**
- स्थिरता और निश्चयता का स्वरूपों को अध्ययन करने के लिये
  1. अस्तित्व
  2. परमाणु में विकास
  3. परमाणु ही व्यवस्था का आधार
  4. सह–अस्तित्व में व्यवस्था
  5. व्यवस्था सूत्र ("त्व" सहित व्यवस्था)
  6. पूरकता–उदात्तीकरण, रचना–विरचना
  7. पूरकता–उदात्तीकरण और संक्रमण
  8. परमाणु ही गठनपूर्णतापूर्वक जीवन पद (चैतन्य पद) में वैभवित होना
  9. जीवन में जीवनी क्रम
  10. बंधन सहित जीवन का कार्यक्रम और जागृतिक्रम
  11. जीवन ही जागृति पूर्वक क्रियापूर्णता में संक्रमण
  12. जीवन ही जागृतिपूर्णता पूर्वक आचरण पूर्णता में संक्रमण, प्रधान बिन्दु है।

  इसमें से कोई भी बिन्दु यंत्र प्रमाण से प्रमाणित नहीं हो पाती जबकि हर मानव इसको समझ सकता है और व्यवहार में प्रमाणित कर सकता है। आदर्शवाद जिसका आधार आप्त पुरुषों के वचन हैं के आधार पर भी ये बारह बिन्दुओं में से कोई भी बिन्दु अध्ययन, बोध और प्रमाणगम्य नहीं हो पाते।

इसलिये अनुभव मूलक जागृतिपूर्ण विधि से सभी दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य, आयामों में व्यवहार प्रमाण मानव कुल में अति आवश्यक है। अनुभव व्यवहार में प्रमाणित होना अपरिहार्य है और हर प्रयोग व्यवहार में सार्थक होना उतना ही अनिवार्य है। इस प्रकार अनुभव मूलक जागृति विधि पूर्ण प्रमाण सूत्रों पर आधारित विचारों और विचार सूत्रों पर आधारित संप्रेषणा और वांग्मय शैलियों से इंगित 'वस्तु' के रूप में अर्थों–प्रयोजनों के सार्थकता के रूप में व्यवहार, उत्पादन, व्यवहार–न्याय, व्यवहार और न्यायिक विनिमय, व्यवहारिक स्वास्थ्य–संयम और व्यवहारिक **शिक्षा–संस्कार** परंपरा की आवश्यकता है। और उसकी आपूर्ति ही स्वाभाविक रूप में अग्रिम पीढ़ियों के सहस्त्राबदियों तक इस धरती पर मानव परंपरा सहज वैभव और उसकी सार्थकता रूपी जागृति और व्यवस्था को प्रमाणित कर सकते हैं। यह हर व्यक्ति के लिये सहज सुलभ हो सकता है। सार्थक रूप में जीने की कला अर्थात् जीने की हर तरीकों का जागृतिसूत्र के अनुरूप मूल्यांकित होना संभव है। हर मानव में जागृति और मानवत्व प्रमाणित होने का अनुमान विद्यमान है ही। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 53–54)**

- परंपरा अपने में पीढ़ी से पीढ़ी के लिए सूत्र है ही–भले ही समुदाय विधि से हो या अखण्ड समाज विधि से हो। अखण्ड समाज विधि जागृति का द्योतक है एवं समुदाय विधि भ्रम का द्योतक है यह स्पष्ट है। समुदाय विधि से मानव स्वायत्त होना नहीं हो पाता है पराधीनता बना ही रहता है। अखण्ड समाज विधि से ही मानव में स्वायत्तता परंपरा **शिक्षा–संस्कार** विधि से संपन्न होता है। इसका प्रमाण अर्थात् स्वायत्तता का प्रमाण परिवार में होना देखा गया। परिवार मानव में सह–अस्तित्व सूत्र से स्वायत्तता का प्रमाण सिद्ध हो जाता है। यह प्रचलित होने के लिये परंपरा की आवश्यकता है। दूसरे भाषा से सर्वसुलभ होने के लिए अथवा लोक व्यापीकरण होने के लिए परंपरा की आवश्यकता है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:64)**
- परस्पर पहचानना–निर्वाह करना शाश्वत् नियम है। उपयोगिता सहित पूरक होना शाश्वत् नियम है। पूरकता का तात्पर्य विकास और जागृति में प्रमाण सहित प्रेरक पूरक होने से है। विकास और जागृति में स्व शक्तियों का अर्पण समर्पण है। जड़ प्रकृति में पूरकता किसी एक के अंश को स्वयं स्फूर्त विधि से विस्थापित कर देने के रूप में ही है। मानव में समाधानपूर्वक समृद्ध होने की विधियों को देखा जाता है। यही पुन: जड़ प्रकृति में रचना–विरचना में भी देखने को मिलता है कि रचना विधि में पूरकता, विरचनाएं पुनर्रचना के लिये पूरकता के रूप में प्रस्तुत होना देखा जाता है। इस प्रकार पूरकता जड़ प्रकृति में भी देखने को मिलता है। परस्पर पूरक है इस तथ्य का साक्ष्य पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था और जीवावस्था से ज्ञानावस्था विकसित स्थिति में वर्तमान रहना ही है। सभी जीव संसार जीने की आशा से ही वंशानुषंगीय कार्य में तत्पर रहना पाया जाता है। ज्ञानावस्था के मानव उसी का अनुकरण–अनुसरण करने के जितने भी कार्यकलापों को अपनाया स्वपीड़ा–परपीड़ा, स्वशोषण–परशोषण, स्वयं के साथ वंचना और अन्य के साथ प्रवंचना और इन सबका सारभूत बात स्वयं के साथ समस्या और उसकी पीड़ा से पीड़ित रहना, अन्य को पीड़ित करना रहा। यही भ्रमित मानव परंपरा रूपी समुदायों में देखने को मिला। यही **शिक्षा– संस्कार**, संविधान और व्यवस्था इस दशक तक मानी जा रही है। ये सब समस्याकारी है। समस्या स्वयं पीड़ा के रूप में प्रभावित होना देखा गया। इसका निराकरण जागृति, उसका प्रमाण रूप में समाधान ही है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 69–70)**

- आशा बन्धन से 'जीवनी क्रम' परंपरा को आरंभ किया हुआ जीवन, आशा से विचार, विचार से इच्छा बन्धन तक भ्रमित विधि से मानव कार्यकलापों को प्रस्तुत करता है। इच्छाएँ चित्रण कार्य को, विचार विश्लेषण कार्य को और आशा चयन क्रिया को सम्पादित करता हुआ मानव परंपरा में भय, प्रलोभन और आस्था में जीता रहता है। प्रिय, हित, लाभ संबंधी संग्रह–सुविधा–भोग द्वारा प्रलोभन के अर्थ को; युद्ध, शोषण, द्रोह–विद्रोह–संघर्ष ये सब भय को और भक्ति–विरक्ति पूर्वक आस्था त्याग–वैराग्य को मानव ने प्रकाशित किया है। यह परंपरा सहज विधि से ही होना पाया जाता है। परंपरा में इसी के लिये **शिक्षा–संस्कार**, उपदेश, शासन–पद्धति, संविधान भी स्थापित रही है। इसी क्रम में सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा संबंधी और सामरिक सामग्रियों के रूप में अनेकानेक चित्रण कार्य सम्पन्न हुआ। ऐसे कुछ यंत्र संचार के लिये मार्ग और सेतु का चित्रण हुआ। इसी से सम्बन्धित अनेकानेक वस्तु, सामग्री, यंत्रों का चित्रण मानव ने किया है।

  जीवनी क्रम जीवों में वंशानुषंगीय स्वीकृति के रूप में देखने को मिलता है। यही आशा बन्धन का कार्यकलाप है। वंशानुषंगीय कार्य में उस–उस वंश का कार्यकलाप निश्चित रहता है। तभी जीवावस्था व्यवस्था के रूप में गण्य हो पाता है। ऐसे जीव शरीर जो वंशानुषंगीय निश्चित आचरण को प्रस्तुत करते है उनमें समृद्ध मेधस का होना पाया जाता है। ऐसी वंशानुषंगीय रचना क्रम में मानव शरीर भी स्थापित है। इसकी परंपरा भी देखने को मिलती है। उल्लेखनीय मुद्दा यही है, मानव परंपरा में निश्चित आचरण स्पष्ट नहीं हो पाया। इसका कारण मानव ने तीनों प्रकार के बंधन वश जीवों के सदृश्य जीने का प्रयत्न किया। जबकि मानव अपने मौलिक विधि से ही जीने की प्रेरणा बना रहा। इसी क्रम में आचरणों की विविधता, विचारों की विविधता, इच्छाओं की विविधता, अनेकता का कारण बना। इसलिये केवल आशा, विचार, इच्छा से मानव में मानवीयता की स्थापना नहीं हो सकी। अथक प्रयास अवश्य किया गया। 'जीवन' के और आयामों का प्रयुक्ति मानव परंपरा में अवश्यंभावी होने के आधार पर ही अनुभवमूलक विधि का स्थापित होना अनिवार्यतम स्थिति बन चुकी है।

  मुख्यत: न्याय, धर्म, सत्य रूपी दृष्टियों की क्रियाशीलता वृत्ति में एवं फलन स्वरूप इनका साक्षात्कार चित्त में, बुद्धि में बोध और अनुभव की स्वीकृति, आत्मा में इनका अनुभव और अनुभव बोध तथा साक्षात्कार की पुष्टि चिंतन में सम्पन्न होना ही अनुभवमूलक जागृतिपूर्ण स्थिति गति होना स्पष्ट है। अतएव **जीवन को विधिवत् चेतना विकास मूल्य शिक्षा विधि से मध्यस्थ दर्शन सह–अस्तित्ववाद का अध्ययन एवं समझ लेना जीवन ज्ञान का तात्पर्य है।** जीवन ही दृष्टा पद में होने के कारण अस्तित्व सहज सम्पूर्ण दृश्य का दृष्टा होना सहज है। इस प्रकार अनुभव करने वाली वस्तु जीवन है। अनुभव करने योग्य वस्तु अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व है। प्रमाणित करने योग्य वस्तु हरेक मानव है। प्रमाणित होने के लिये वस्तु अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था है। **अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में अनुभव ही परम सत्य में अनुभव।**

  जीवन रचना (चैतन्य पद) + जीवन क्रियाकलापों का निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण = जीवन ज्ञान। (अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 74–76)

- मानव शरीर का संचालन भी जीवन ही सम्पन्न करने का तथ्य सुस्पष्ट है। मानव शरीर संचालन संस्कारानुषंगीय होने के अर्थ में ही बहुमुखी परंपराएँ देखने को मिला, यह केवल मानव परंपरा में ही मिला। इसमें यह भी देखने को मिला मानव ही अपने विभूतियों का सदुपयोग और दुरूपयोग कर सकता है। क्योंकि सम्पूर्ण मानव में शुभाकांक्षा उमड़ती ही रहती है। इन उमड़ती हुई शुभाकांक्षा ध्रुविकृत होने के ओर ही सुदूर विगत से इस दशक तक किये गये

प्रयास और अभिव्यक्तियों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है। सर्वशुभ और उसकी प्रतिष्ठा सर्वसुलभ रूप में तभी संभव होना देखा गया है कि हर बच्चे–बड़े जागृति को प्रमाणित कर दे। ऐसी लोकव्यापीकृत जागृति, लोक व्यापीकृत सर्वशुभ प्रमाण योग्य जागृति, जागृत परंपरा में, से, के लिये होना भी सुस्पष्ट हो चुकी है। **जागृत जीवन में मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ बल के स्वरूप को समझने की विधि सहित उसका कार्य, कार्य–स्वरूप और प्रयोजनों को ज्ञात कर लेना आवश्यक है। यही शिक्षा–संस्कार का प्रयोजन है।** इससे लोकव्यापीकरण कार्यक्रम में सहज गति सुलभ होगा ही। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 93–94)**

- हर मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व व उसकी निरंतरता विधि से जीना चाहता है। इसके लिये अनुभवमूलक **शिक्षा–संस्कार** विधि समीचीन है। इसके विपरीत यह मानना कि मानव कभी सुधर नहीं सकता यह सर्वथा भ्रम है। हर मानव संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति पूर्वक परिवार मानव होना चाहता है इसके नित्य सफलता के लिये मानवीयतापूर्ण **शिक्षा–संस्कार** समीचीन है। यह अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित होना पाया जाता है। मानव सम्बन्धों में निरंतर मूल्यों का अनुभव कर सकता है। इसे सफल बनाने का कार्य–विचार–व्यवहार विधि को अनदेखी करते हुए यह मानना कि बैर विहीन परिवार नहीं हो सकता और बैर रहेगा ही, दुख रहेगा ही इन्हें सत्य कहकर अपने भ्रम को दूर–दूर तक फैलाना है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:108–109)**
- मानव जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक और सत्य वक्ता होता है। परंपरा सहज विधि से (**शिक्षा–संस्कार**, संविधान और व्यवस्थापूर्वक) हर व्यक्ति में न्याय प्रदायी क्षमता, सही कार्य व्यवहार करने की योग्यता सत्यबोध करने–कराने की परमावश्यकता है। यह अनुभवमूलक मानव परंपरा में ही सार्थक होता है। इसे अनदेखी करते हुए हर व्यक्ति को जन्म से ही स्वार्थी, अज्ञानी और पापी इतना ही नहीं अपराधी, गलती करने वाला मानना, कहना, कहलाना, करने के लिये सम्मति देना भ्रम की पराकाष्ठा है।...**(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:110)**
- हर मानव में जागृतिपूर्वक चारों अवस्था में वैभवित वस्तुओं को उन–उन के स्वभाव–गति प्रतिष्ठा में जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने का अर्हता रहता ही है। उस अर्हता के अनुसार **शिक्षा–संस्कार** को संपन्न करने की योग्यता से वंचित रहकर उसके विपरीत आवेशित गति को ही "वैभव और आवश्यक" मानते हुए, मनाने का जितना भी कार्यकलाप है (**शिक्षा, संस्कार** सहित) वे सभी अथ से इति तक भ्रम है क्योंकि सम्पूर्ण अस्तित्व सह–अस्तित्व के रूप में विकास, जीवन, जीवन–जागृति प्रतिष्ठा ही है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:111)**
- जो बन्धन था, मुक्ति पाने के बाद उसका प्रयोजन क्या है ?

  जीवन जागृति अर्थात् मानव चेतना, देव चेतना पूर्णता में, दिव्य–चेतना सहज प्रमाण और जागृति पूर्णता के अनन्तर उसकी निरंतरता का परंपरा के रूप में होना नियति क्रम व्यवस्था है। इस सत्यता के आधार पर जागृति पूर्णता विधि से मानव परंपरा वैभवित होना ही इसका प्रयोजन है। जीवन नित्य होने के कारण जागृति भी नित्य होना स्वाभाविक है। इन क्रम में बन्धन, भ्रम, समस्या से ग्रसित बुद्धिजीवी बनाम शब्दजीवी में यह तर्क उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि जागृति क्रम की भी निरंतरता होना चाहिए। इसके लिए जागृति पूर्ण प्रणाली से उत्तर यही है कि जागृति क्रम विधि से जीवन अथवा भ्रम बन्धन विधि से जीवन शैशवकाल से शरीर संचालन करता हुआ मानव संतान जागृत होने का अभिलाषा सहित व्यक्त होने के आधार पर अथवा प्रकाशित होने के आधार पर जागृति क्रम और जागृति पूर्ण परंपरा स्वाभाविक रूप में सहज विधि से ही जागृति प्रतिष्ठा स्थापित करना सहज है। क्योंकि जागृत परंपरा में स्वायत्त मानव के लिए अति आवश्यकीय **शिक्षा–संस्कार** सहज रूप में उपलब्ध रहता ही है।

अतएव भ्रमबन्धन का निरन्तरता केवल जीवावस्था में ही प्रमाणित होता है। मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में, से, के लिए भ्रमबन्धन की आवश्यकता सर्वथा निरर्थक, अनावश्यक होना पाया गया है।....**(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:127–128)**

- स्वनारी/स्वपुरूष का प्रयोजन इस विधि और आधार से देखा गया है कि समाज रचना क्रम में एक नारी–पुरूष का शरीर संयोग मानव शरीर रचना अथवा संतान परंपरा के लिए आवश्यकता विधि से सहज कार्यकलाप विधि से भी आवश्यक घटना है। शरीर रचना विधि से यौवन ही इसका आधार है। कार्य विधि से मानव परंपरा बना रहना एक आवश्यकता है। प्रयोजन विधि से व्यवस्था में जीना एक अनिवार्यता है। व्यवस्था का तात्पर्य न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता ही है जिसका स्रोत **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** और स्वास्थ्य–संयम कार्यकलाप ही है। इसी से परिवार परंपरा होना भी सहज है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:161–162)**
- बन्धन–से–मुक्त होने का स्रोत संभावना जीवन सहज विधि से ही स्पष्ट हो चुकी है। सम्पूर्ण अस्तित्व ही व्यवस्था है। अस्तित्व में सम्पूर्ण वस्तुएँ अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में होना इसका गवाही है। अस्तित्व में मानव जागृतिपूर्वक ही व्यवस्था के रूप में व्यक्त हो पाता है। मानव भी अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति है। मानव भी अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में जीने की कला, विचार शैली, अनुभव, बलार्जन करना ही **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** का सार्थक स्वरूप है। अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से ही अनुभव बल से जीने की कला, जीने की कला से अनुभव बल पुष्ट होना पाया जाता है। ऐसी पुष्टि ही मानव परंपरा में उत्सव है। हर व्यक्ति उत्सवित रहना चाहता है। जागृति का फलन ही उत्सव का स्रोत है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:163–164)**
- जागृति विधि का लोकव्यापीकरण **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार**, कार्यविधि से सम्पन्न होना भी देखा गया है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा** अपने में सत्ता में संपृक्त प्रकृति नित्य वर्तमान और विकास क्रम विकास एवं जागृति क्रम जागृति सहज विधि से पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्थाओं का पूरकता, उपयोगिता, उदात्तीकरण का अध्ययन है। जिसके फलस्वरूप प्रत्येक मानव में स्वायत्तता, परिवार व्यवस्था में जीने की कला और समग्र व्यवस्था में भागीदारी स्वयं स्फूर्त होना स्पष्ट हुआ है। ये सभी तथ्य अस्तित्व में अनुभव होने का ही फलन है। कोई भी व्यक्ति अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित कर सकता है।...**(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:173)**
- ...उक्त विश्लेषण पूरकता विधि से भौतिक–रासायनिक क्रिया–प्रक्रियाएँ, परमाणु में अंशों का परिवर्तन, परस्पर अणुओं के पूरक विधि से रासायनिक द्रव्यों की महिमा सम्पन्न कार्यकलाप अनेक रचनाएँ, प्रत्येक रचना अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण इसी क्रम में यह धरती भी एक रचना, ग्रह–गोल आदि भी एक रचना है। यह धरती भी अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण है। इस धरती का पूरकता परस्पर ग्रह–गोल, सौर–व्यूह, अनेक सौर–व्यूह, अनेक सौर–व्यूहों के समूह रूपी आकाशगंगा परस्परता में पूरकता विधि से कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। यही व्यवस्था के रूप में कार्य करने का गवाही है। सौर–व्यूह में हर ग्रह–गोल परस्परता में निश्चित दूरी के साथ ही तालमेल बनाया हुआ दिखाई पड़ते है। ऐसे तालमेल ही व्यवस्था का स्वरूप है। क्योंकि ऐसे तालमेल विधि से पूरकता, उदात्तीकरण, विकास इसी धरती पर देखने को मिलता है। विकसित परमाणु ही चैतन्य इकाई जीवन है आशा बन्धन जीवों में जीवनी क्रम, आशा, विचार, इच्छा बन्धन से जागृति क्रम मानव के रूप में स्पष्ट है। जागृति क्रम ही जागृति रूपी मंजिल के लिए सीढ़ी होना स्वाभाविक रहा। स्वाभाविक प्रक्रिया का तात्पर्य विकासक्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति और उसकी निरंतरता से है। विकास क्रम भी अपने में निरंतर है। विकास भी निरंतर

है, जागृति क्रम भी निरंतर है और जागृति भी निरंतर है। जागृति क्रम का स्वरूप है **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक जागृति की स्वीकृति सम्पन्न होता है। जागृति के अनन्तर मानव कुल सार्वभौम व्यवस्था सहज वैभव सम्पन्न होना। फलस्वरूप जागृति स्वीकृति के अनन्तर प्रमाणित होने का मार्ग प्रशस्त रहता है। इस विधि से अनेकानेक मानव संतान जागृति क्रम में अवतरित होना, जागृतिपूर्ण मार्ग प्रशस्त होना यही मानव कुल का स्वराज्य है, वैभव है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:179–180)**

- स्वराज्य व्यवस्था ही होता है, शासन नहीं होता। व्यवस्था के संदर्भ में पहले से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया जा चुका है। परिवार मानव विधि से ही स्वराज्य वैभव का उदय होना देखा जाता है। हर परिवार में शरीर यात्रा के लिए शरीर पोषण, संरक्षण एवं समाज गति के लिये आवश्यकीय वस्तुओं को उत्पादित करने का भी कार्यकलाप समाया रहता है। सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति अथवा परस्पर तृप्ति विधि से व्यवहार और आचरण को प्रकट करना मूलत: परिवार का तात्पर्य है। ऐसे परिवार में उक्त तीनों प्रकार की आवश्यकताएँ बनी ही रहती है। इसके निर्वाह क्रम में उत्पादन कार्य की आवश्यकता बना ही रहता है। इसका तात्पर्य यह हुआ परिवार गति और समाज गति के लिए उत्पादन कार्य भी एक आवश्यकीय तत्व है। अस्तु, सम्बंध–मूल्य–मूल्यांकन और उभय तृप्ति विधि से परिवार और समाज सूत्र और आवश्यकता से अधिक उत्पादन–कार्य में परिवार के हर सदस्य का उपयोगिता–पूरकता विधि से भागीदारी परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था के सूत्र में प्रमाणित हो पाता है। इसीलिये प्रत्येक परिवार में, से, के लिए न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता, स्वास्थ्य–संयम सुलभता नित्य सार्थक होना सहज है। जिसका स्रोत रूप में मानवीयतापूर्ण **शिक्षा–संस्कार** और स्वास्थ्य–संयम कार्यकलापों के रूप में होना पाया जाता है। इस प्रकार व्यवस्था सार्वभौमता के दिशा में प्रशस्त होता है और अखण्ड समाज का सूत्र भी नित्य प्रभावी होना पाया जाता है। इसमें मूलसूत्र सह–अस्तित्व सूत्र ही है। यह अथ से इति तक अनुभवमूलक विधि से ही समझ में आता है। अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन होता है फलत: हर व्यक्ति स्वायत्त मानव, परिवार मानव, समाज व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही अनुभव परंपरा की गरिमा और महिमा है। इसी का फलन मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा परिपूर्ति और तृप्ति व उसकी निरंतरता बन पाती है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:180–181)**
- .....इस सहज आशय के साथ ही यह तथ्य हर मेधावी व्यक्ति में,से, के लिए स्पष्ट होना स्वाभाविक है कि हम सर्वमानव बंधन मुक्ति रूपी जागृतिपूर्वक ही सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होते हैं। ऐसे जागृति सम्पन्नता में, से, के लिए **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** विधि ही एक मात्र उपाय है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** का मूल वस्तु जीवन ज्ञान, अस्तित्व–दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान है। यह मानव जागृति पंरपरा के लिए सार्थक सिद्ध होता है।**(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:187)**
- पूर्वावर्ती विचार में रहस्यमयी ईश्वर केन्द्रित विचार के अनुसार ईश्वर ही कर्ता–भोक्ता होना भाषा के रूप में बताते रहे। इसी के आधार पर ब्रह्म, आत्मा या ईश्वर सबका दृष्टा होना बताने भरपूर प्रयास किये। यह मुद्दा रहस्य होने के आधार पर अभी तक वाद–विवाद में उलझा ही हुआ है। जबकि सह–अस्तित्ववाद जीवन ही मानव परंपरा में दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहित कर्ता व भोक्ता के रूप में सफल होना देखा गया है। जागृति का प्रमाण केवल मानव परंपरा में ही होता है। जितने भी विधा से सह–अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण संगत विधि से किया गया तर्क से, विश्लेषण से, किसी भी दो ध्रुवों के बीच त्व सहित व्यवस्था सहज कार्य प्रणाली से, जीवनापेक्षा अर्थात् जीवन मूल्य और मानवापेक्षा अर्थात् मानव सहज लक्ष्य के आधार पर और सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज क्रम को

जानने–मानने–पहचानने, निर्वाह करने के आशयों से अवधारणाएँ सहज रूप में ही जीवन में स्वीकार हो जाता है। इस क्रम में इस तथ्य का उद्घाटन **चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार** विधि से होता है जीवन ही सार्थकता के लिये जागृत होता है। सार्थकता में जीना ही भोगना है। सार्थकता के लिये ही जागृतिपूर्ण विधि से सभी कार्य व्यवहार करता है। जागृति ही दृष्टा पद सहज प्रमाण है। करना ही कर्ता पद है और जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को भूरि–भूरि विधि से जीना ही भोक्ता पद है। शरीर केवल करने के क्रम में एक साधन के रूप में उपयोगी होना देखा गया है। अध्ययन क्रम में भी सार्थक माध्यम होना देखा गया। अध्ययन–अध्यापन करना भी कर्ता के संज्ञा में ही आता है। दृष्टा पद में पूर्णतया जीवन ही जागृति के स्वरूप में प्रमाणित होता है। यह प्रमाण जान लिया हूँ, मान लिया हूँ, प्रमाणित कर सकता हूँ के रूप में स्थिति के रूप में अध्ययन का प्रयोजन होता है। अर्थात् हर व्यक्ति में जागृति स्थिति में होता है, भोगने का जहाँ तक मुद्दा है, मानवापेक्षा सहज समाधान समृद्धि को भोगते समय में सम्पूर्ण भौतिक–रासायनिक वस्तुओं का शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति के अर्थ में अर्पित, समर्पित कर समृद्धि को स्वीकार लेता है। जहाँ तक समाधान, अभय और सह–अस्तित्व में जीवन ही अनुभव करना देखा गया है। जीवनापेक्षा संबंधी सुख, शांति, संतोष आनन्द का भोक्ता केवल जीवन ही होना देखा गया है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 208–209)**

- मानव परंपरा में **शिक्षा–संस्कार**, न्याय–सुरक्षा, उत्पादन कार्य, विनियम कोष, स्वास्थ्य–संयम, व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी सहज मुद्दों पर जागृत सहज प्रमाण होना, जानने–मानने–पहचानने में निरीक्षण समर्थ होना और निर्वाह करने में निष्णात रहना ही प्रामाणिकता है। निष्णातता का तात्पर्य निरीक्षण पूर्वक हर कार्य व्यवहारों को पूर्ण रूपेण, पूर्णता के अर्थ में प्रतिपादित, प्रकाशित और प्रमाणित करना ही है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 225)**
- मानव में जागृत परंपरा स्थापित होने प्रमाणित होने और उसकी निरंतरता को बनाए रखने के लिए सर्वसुखवादी विधि और व्यवस्था ही एक मात्र शरण है। यह पहले से ही स्पष्ट हो चुकी है जागृति ही विधि है, इसे प्रमाणित करना ही व्यवस्था है। यही व्यवस्था मानवीयता पूर्ण **शिक्षा–संस्कार** सुलभता व्यवस्था अपने स्वरूप में न्याय–सुरक्षा सुलभता, विनियम–कार्य सुलभता, उत्पादन–कार्य सुलभता, स्वास्थ्य–संयम कार्य सुलभता रूप में होना देखा गया है। यह सर्वसुलभ होना समीचीन है, आवश्यक और संभव है। मानव परंपरा में जागृति का प्रमाण **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** ही है। जागृति और व्यवस्था के निरंतरता क्रम में स्वास्थ्य–संयम प्रणाली अपने आप मानव में, से, के लिये करतलगत होता है। इस प्रकार जागृति और जागृतिमूलक विधि से व्यवस्था सार्वभौम होना स्वाभाविक है। क्योंकि हर मानव जागृत होना चाहता ही है और हर मानव व्यवस्था में जीना चाहता ही है। यही अस्तित्व में अनुभव की महिमा है सह–अस्तित्व का प्रभाव है फलत: जागृति और जागृति का प्रमाण रूप सार्वभौम व्यवस्था मानव परंपरा में सार्थक होता है। यही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" का प्रयोजन है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 226–227)**
- जीवन ही दृष्टा, सह–अस्तित्व ही दृश्य, न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण दृष्टियों का क्रियाशीलता ही दृष्टि का स्वरूप है। इसका साक्ष्य है न्याय सुलभता (परस्पर मानव और नैसर्गिकता में) धर्म सुलभता (सर्वतोमुखी समाधान सुलभता) और जागृति सुलभता (प्रामाणिकता और प्रमाण सुलभता) यह सब जागृति केन्द्रित विधि से सह–अस्तित्व रूपी परम सत्य व्यवहार– कार्य रूप में सम्पन्न होना देखा गया है। जागृति हर व्यक्ति का आकांक्षा है ही। इसलिये परंपरा में निर्दिष्ट रूप में **शिक्षा–संस्कार** परंपरा में इनका सहज अध्ययन–मूल्यांकन पद्धति, प्रणाली, नीतियों को अपनाना ही परंपरा में वांछित परिवर्तन का स्वरूप है। दृष्टा पद रूपी जीवन अथवा दृष्टा पद प्रतिष्ठा में वैभवशील जीवन

परंपरा में न्याय, धर्म, सत्य को अभिव्यक्त, संप्रेषित, प्रकाशित करने में मानव ही समर्थ है। इस तथ्य को परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक देखने के उपरान्त ही उद्घाटित किया है। इसलिये कि मानवाकांक्षा, जीवनाकांक्षा ही सर्वशुभ के रूप में है। यह सर्वदा मानव परंपरा में सफल होते ही रहेगी। जागृत परंपरा में ही हर मानव और परिवार सर्वाधिक उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील होते हुए उपकारी होना देखा गया है। उपकारिता का तात्पर्य मानव को, मानव जागृति मार्ग को प्रशस्त कराते हुए देखने को मिला है। यह क्रिया वश जो मानव कर पाता है वह उपकारी होता है वह जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करता ही है, वर्तमान में समीचीन मानव जो जागृत नहीं हुए हैं उन्हें जागृत होने के लिये योग्य प्रस्तुति के रूप में हो जाता है। यह सह-अस्तित्व में अनुभव सहज प्रामाणिकता सहित सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि सम्पन्न स्थिति और गति के रूप में होना देखा गया है; क्योंकि जागृतिगामी अध्ययन प्रणाली से हर व्यक्ति स्वायत्त होता है। स्वायत्तता का स्वरूप स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी होना देखा गया है। ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में जीने देकर जीने में समर्थ होता है। यही अद्भूत सामर्थ्यवश सर्वतोमुखी समाधान और समृद्धि वैभवित होता है। यही हर स्वायत्त परिवार मानव सफलता का प्रमाण है और सर्वशुभ का भी प्रमाण है। अस्तु, मानव सत्य दृष्टि पूर्वक, धर्म दृष्टि पूर्वक, न्याय दृष्टि सहज स्वायत्त होता है और स्वायत्तता का मूल्यांकन कर पाता है। इसीलिये परिवार मानव का सार्वभौमता (परिवार मानवता में, से, के लिये सर्वमानव में स्वीकृति) प्रवाहित होना सहज है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 231-232)**

- मानव में संपूर्ण कारण रूपी दृष्टि (जागृति) के आधार पर हर व्यक्ति करणीय कार्यों का निर्धारण कर पाता है। ये निश्चित वैचारिक प्रक्रिया है। इन्हीं कारणवश करने, स्वीकारने के रूप में कार्यकलाप सम्पन्न होते हुए देखने को मिलता है। सर्वमानव में छ: दृष्टियाँ क्रियाशील होने की आवश्यकता और संभावना ही अध्ययनगम्य है, इसे स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रिय, हित, लाभ दृष्टि पूर्वक कोई भी मानव सामाजिक होना संभव नहीं है, व्यवस्था में जीना अति दुरूह रहता ही है। इसी अवस्था को भ्रमित अवस्था के नाम से स्पष्ट किया गया। जागृतिपूर्वक मानव में न्याय, धर्म, सत्य, दृष्टि विकसित होती है। जागृतिपूर्वक मानव सामाजिक होता है और व्यवस्था में जीता है। हर मानव में, से, के लिये जागृति न्याय, धर्म, सत्य स्वीकृत है और वांछनीय है। भ्रमवश विभिन्न समुदाय परम्पराएँ अपने-अपने सामुदायिक अहम्ता के साथ उनके परंपरा में आने वाले सन्तानों को भ्रमित करने का तरीका खोज रखे हैं। इसलिये हर परंपरा में आने वाले संतान पुन: पुन: भ्रमित होते आए। यह काम बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक देखने को मिला। दसवें दशक में **"अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित दृष्टिकोण"** सम्पन्न कुछ लोगों में यह सुस्पष्ट हो गई कि विगत से परम्परा में प्राप्त **शिक्षा-संस्कार** भ्रम की ओर है। इससे छूटना आवश्यक है। इसी के साथ यह भी समझ में आया कि हर मानव परम्परागत समुदाय मानसिकता से बड़ा होना देखने को मिलता है। इसका साक्ष्य यही है परम्पराओं में कहे हुए विधि से जितना खराब होना था, उतना न होकर उतना भाग सही की ओर होना पाया जाता है। जैसे हर प्रकार की धर्मगद्दियाँ अपने-अपने धर्म के विरोधी सभी पापी है, विधर्मी हैं, अधर्मी हैं, इन सबका नाश होगा। नाश करने वाला ईश्वर परमात्मा, सर्वशक्तिमान है। धर्म को बचाने वाला ही विधर्मियों का संहार करेगा। ऐसे विधर्मियों को संहार करना न्याय है और इससे ईश्वर प्रसन्न होते हैं। यह तो हुई परस्पर विद्रोहीता के लिये तत्व। यदि ईमानदारी से हर धर्म परम्पराओं में कही हुई बातों पर तुला जाये तो सदा लड़-झगड़ कर मारते ही रहना चाहिये या मरते ही रहना चाहिये। इतना कुछ हुआ नहीं। इसके विपरीत धरती में जनसंख्या बढ़ते ही रहा। इसलिये पता चलता है परंपरा जिस बदतर स्थिति में

डालने के लिये अपने–अपने वचनों को बनाये रखा है उससे बेहतरीन स्थिति में अधिकांश लोगों को देखा जाता है। जिसका गवाही में किसी भी देश, काल, जाति, मत, संप्रदाय पंथों के अनुयायी हो अथवा समर्थक हो उन किसी सामान्य मानव से यह पूछने पर कि परस्पर समुदाय लड़ना चाहिये या साथ में जीना चाहिये ? उत्तर साथ में जीना चाहिये मिलता है। इस प्रकार हमें समुदाय परम्पराओं के मान्यताओं से बेहतरीन मानव होने की इच्छा आज भी दिखाई पड़ते हैं। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 234–236)**

- ....इस धरती में कलात्मक विज्ञान, तकनीकी, व्यापार की **शिक्षा** ही स्थापित हुई दिखती है। **इस धरती में अभी तक न्याय पूर्ण व्यवहार और समाधानपूर्ण व्यवस्था मानवीयता पूर्ण शिक्षा में प्रवेश ही नहीं हो पाया। जबकि विनिमय व सार्वभौम व्यवस्था ही शिक्षा की सम्पूर्ण आत्मा है। ऐसी व्यवहार शिक्षा के लिये आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था, व्यवहारवादी समाज शास्त्र और व्यवस्था, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान और व्यवस्था अनिवार्यतम स्थिति है।** उत्पादन, प्रौद्योगिकी, तकनीकी को हर परिवार में समृद्धि सम्मत विधि से विकसित और स्थापित करने की आवश्यकता है। एक पीढ़ी समृद्ध होता है, आगे पीढ़ी को समृद्ध बनाने के लिये स्थापना कार्य को करते रहता है। समृद्धि के मूल में मानव व्यवहार ध्रुवीकृत होना आवश्यक है। मानव व्यवहार सूत्र मानव की परिभाषा और मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में अनुप्राणित होना देखा जाता है। फलस्वरूप परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। **शिक्षा–संस्कार** से हर मानव में स्वायत्तता प्रमाणित होना ही इसकी सार्थकता है। इन तथ्यों को पहले भले प्रकार से स्पष्ट किया जा चुका है। यथार्थ यही है हर जागृत मानव सुख, शांति, संतोष को ही भोगता है और कोई चीज को भोगता नहीं है। सुविधा–संग्रह भी सुख, लक्षित होना सुस्पष्ट हो चुका है। इसी के साथ इसकी क्षणिकता–भंगुरता भी है, अतएव मानव इतिहास रूपी चारों सोपानों में कहीं भी सुख भोग की निरंतरता नहीं हो पायी। अब केवल परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था उसके पाँचों आयामों सहित कार्यप्रणाली में मानवापेक्षा सहित जीवनापेक्षा रूपी सुख, शांति, संतोष, आनंद भोगने में मिलता है। इसे भले प्रकार से हम देख पाये हैं। इस स्थिति के लिये हर व्यक्ति जागृत हो सकता है। इसी तथ्य के आधार पर सर्वसुख समीचीन है। सर्ववांछनीयता भी यही है। इस प्रकार जीवन भोक्ता है, सुख भोग है, भोग्य वस्तु व्यवस्था है। शरीर सहित मानव समाधान–समृद्धि अभय, सह–अस्तित्व सहज तथ्यों को भोगता है।**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 249–250)**
- सर्वशुभ विधि जागृति मूलक अभिव्यक्ति और जागृतिगामी **शिक्षा–संस्कार** ही है। यही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र है। इस विधि से अनुभव मूलक विधि से अभिव्यक्त होने का कार्यक्रम ही **शिक्षा–संस्कार** के रूप में प्रभावित व वांछित होना देखा गया है। इन तथ्यों को हृदयंगम करने के लिये "समाधानात्मक भौतिकवाद", "व्यवहारात्मक जनवाद" को अवश्य ही अध्ययन करें। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान सहज विधि से अस्तित्व सदा–सदा ही विकासोन्मुखी सह–अस्तित्व होने के कारण समाधान के अनंतर समाधान ही होना देखने को मिलता है। विकास का हर बिन्दु, हर कड़ी, हर अवस्था अपने आप में समाधान होना दिखाई पड़ती है। हर व्यक्ति को इसे हृदयंगम करना आवश्यक है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 256)**
- जीना कम से कम तीन आयामों में स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होता है। तभी व्यवस्था में जीने का रस और सुख अपने आप मिलने लगता है। ऐसे तीन आयाम को न्याय सुलभता (न्याय प्रदायिता एवं पाने में सुलभता), उत्पादन सुलभता और विनिमय सुलभता पूर्वक ही हर परिवार व्यवस्था में जीता हुआ अनुभव करता है। ज्यादा से ज्यादा मानव, मानवीयतापूर्ण व्यवस्था में पाँचों आयामों में अपने भागीदारी को प्रमाणित करता है। यह उक्त तीनों के साथ **शिक्षा–संस्कार** सुलभता और स्वास्थ्य–संयम सुलभता है। इन्हीं व्यवहारिक आधारों के कारण मानव को जागृत

और जागृतपूर्ण स्थितियों में देखा गया है। यह सबके लिये समीचीन है। इन्हीं दो स्थिति को क्रम से क्रियापूर्णता और आचरणपूर्णता का नाम दिया है। आचरण की विशालता में ही विशाल, विशालतर और विशालतम व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न होना सहज है। सम्पूर्ण प्रक्रिया का सफल स्वरूप समाधान और समृद्धि के रूप में मूल्यांकित होता है। अभय, सह–अस्तित्व मानवीयता पूर्ण आचरण का फलन है। इन तथ्यों को भली प्रकार से देखा गया है। इस प्रकार हर परिवार **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** पूर्वक स्वायत्त मानव और परिवार मानव के रूप में जीते हुए व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत करना सहज है। सहजता का तात्पर्य जागृति पूर्वक प्रमाण सहज गति ही सहज होना। जागृति नित्य समीचीन रहता ही है। यह परम्परा जागृत होने के उपरान्त ही सर्वसुलभ होता है। मानवापेक्षा, जीवनापेक्षा ही सार्वभौम अपेक्षा है। यही जागृति और कैवल्य का प्रमाण है।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 259–260)**

व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(संस्करण : 2009)

- यही दो अवलोकन का मुद्दा है कि

  ⇨ परंपरा विगत में मानव, मानव के साथ क्या किया ?

  ⇨ मानव मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ क्या किया?

  अभी तक अनेक समुदाय परंपराओं के रूप में विविध आधारों के साथ पीढ़ी से पीढ़ी को अनुप्राणित करता हुआ देखा जा रहा है। अनुप्राणित करने का तात्पर्य जिस–जिस परंपरा जिन–जिन आधारों अथवा मान्यताओं के साथ मानसिकता को, प्रवृत्तियों को, प्राथमिकताओं को अपनाते हुए आये हैं उसे अग्रिम पीढ़ी में स्थापित करने के लिए किया गया क्रिया–प्रक्रिया और संप्रेषणाओं से है। यह भी हम हर परंपराओं में देख पाते हैं कि वही मानसिकताएं विविधता के साथ प्रचलित है। विविधताओं में से अपना–पराया एक प्रधान मुद्दा है। इनके समर्थन में संस्कार, **शिक्षा**, संविधान और व्यवस्था परंपराएँ प्रधान हैं। दूसरे विधि से संस्कृति सभ्यता विधि–व्यवस्था के रूप में होना देखा जाता है। तीसरे विधि से रोटी, बेटी, राजनीति और धर्मनीति में एकता के आधार पर भी समुदायों का कार्य–व्यवहार दिखाई पड़ती है।

  शिक्षा विधि प्राचीन समय से ऊपर कहे तीन प्रकार के एकता–अनेकता के आधार पर संपन्न होता हुआ इतिहासों के विधि से समझा जा सकता है। हर संविधान जो–जो धर्म और राज्य का संयुक्त मानसिकता के साथ चलने वाले सभी समुदाय अथवा प्रत्येक समुदाय अपने–अपने धर्म, अथवा राज्य मानसिकता के आधार पर और उसके समर्थन में **शिक्षा–संस्कारों** को स्थापित करने में सतत जारी रहा। कालक्रम से अधिकांश देशों में धार्मिक राज्य के स्थान पर आर्थिक राज्य, संविधान, विज्ञान के सहायता से स्थापित होता आया क्योंकि विज्ञान की सहायता से सामरिक दक्षता को बढ़ाने का अरमान प्रत्येक राजसंस्था का अपरिहार्य बिन्दु रहा। इसी सत्यतावश विज्ञान और तकनीकी इन्हीं अपरिहार्यता की सहयोगी होने के आधार पर विज्ञान का बढ़ावा, बिना किसी शर्त के होता रहा। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:17–19)**

- व्यवहारवादी समाजशास्त्र की परिभाषा –

  परिभाषा – वर्तमान में विश्वास, मौलिक अधिकार पूर्ण विधि से मनुष्य, मनुष्य के साथ पहचाना गया। संबंध में मूल्य मूल्यांकन पूर्वक उभय तृप्ति, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन में भागीदारी, मूल्य, चरित्र नैतिकतापूर्ण आचरणपूर्वक, व्यवस्था सहज प्रमाण को प्रस्तुत करते हुये समग्र व्यवस्था में भागीदारी व भागीदारी के प्रति सम्मति का सहज स्वरूप में प्रमाणित होना ही व्यवहारवादी समाज है; और शास्त्र का तात्पर्य **शिक्षा–संस्कारपूर्वक** ग्रहण योग्य सभी उपक्रम और कार्यप्रणाली है। इस प्रकार व्यवहारवादी समाज व शास्त्र का धारक, वाहक मानव ही होना स्पष्ट है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर:26)**

- विश्वास का तात्पर्य वर्तमान में सर्वतोमुखी समाधान और उसकी निरंतरता से है, सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन (अस्तित्व में मानव स्वयं अपने अविभाज्यता को दृष्टा पद प्रतिष्ठा रूपी महिमा सहित वर्तमान में होने की स्वीकृति और उसमें दृढ़ता और अस्तित्व ही सह–अस्तित्व। सह–अस्तित्व में ही विकास क्रम विकास जागृति क्रम जागृति रासायनिक भौतिक रचना–विरचना सहज प्रमाणों की स्वीकृति सहित प्रमाणीकरण क्रिया सम्पन्नता) से है। समाज शब्द का अर्थ भी उक्त स्पष्ट परिभाषा और उसके आशयों को पुष्ट करता है यथा पूर्णता के अर्थ में किया गया यत्न सहित गति है। यत्न का तात्पर्य जिस रूप में समाधान और उसकी निरंतरता प्रमाणित होता है। व्यवहार में यत्न को प्रयत्न शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। प्रयत्न का तात्पर्य प्रज्ञा सहित यत्न से है। प्रज्ञा का तात्पर्य फल परिणामों को भले प्रकार से अथवा संपूर्ण प्रकार से जानते हुए मानते, पहचानते हुए निर्वाह करने की क्रियाकलापों से है। समाज की परिभाषा स्वयं जिन–जिन तथ्यों को परम्परा में प्रमाणित करने को इंगित करता है इसे सार्थक बनाने के कार्यक्रमों को सामाजिक कार्यक्रम कहेंगे, क्योंकि हर व्यक्ति समाज परिभाषा का प्रमाण होना एक सर्व स्वीकृति तथ्य है। यह भी इसमें मूल्यवान अथवा आवश्यकीय स्वीकृत है कि मानव ही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का धारक–वाहक होने योग्य इकाई है, साथ ही इसकी अनिवार्यता भी स्वीकृत है। नैसर्गिक रूप में जागृति नित्य समीचीन है। जागृति वर्तमान में ही प्रमाणित होती है, प्रमाणित करने वाली इकाई केवल मानव है। शुद्धत: इसका मूल रूप मानव अपने स्वत्व रूपी मानवीयता अथवा मानवत्व में, से, के लिए जागृत होना ही है। मानवत्व मानव को स्वीकृत वस्तु है।

  मानवत्व पूर्वक ही मनुष्य अपने गौरव और वैभव को स्थिर बनाना चाहता है ऐसी मानवत्व की अपेक्षा को विविध प्रकार से मनुष्य व्यक्त करता ही है। इसी क्रम में बहुमुखी अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन होने के आधार पर बहुमुखी कार्य सम्पन्न होना भी एक आवश्यकता रहा है। ऐसी सुदृढ़ आधार पर ही सुदूर विगत से ही कम से कम चार आयामों में अपने परम्परा को बनाये रखे है। जैसा **शिक्षा**, संस्कार, विधि और व्यवस्था। दूसरे विधि से संस्कृति, सभ्यता, विधि और व्यवस्था है। इसे सभी समुदायों में स्वीकारा हुआ और निर्वाह करता हुआ देखने को मिलता है चाहे सार्थक न हो। इससे सुस्पष्ट हो जाता है भले ही मानव कुल अनेक समुदायों में बंटे क्यों न हो यह चारों अथवा चहुँ–दिशा वादी परम्परायें सभी देशकाल में सभी समुदाय में देखने को मिला। इन चारों आयामों में मानवीयता को समावेश कर लेना ही मानवीयतापूर्ण परम्परा का तात्पर्य है। जैसा **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार**, विधि एवं व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता ही मानव परम्परा में अखण्डता का सूत्र है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 26–28)**

- ...**शिक्षा–संस्कार** में मानवीकृत **शिक्षा** को हम भले प्रकार से पहचानें है इसमें मानव का सम्पूर्ण आयाम, दिशा, परिप्रेक्ष्य और कोणों का अध्ययन है। देश और काल, क्रिया, फल, परिणाम सहज समाधानपूर्ण विधि को समझा गया है। यह सर्वमानव में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है ही। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:73)**
- **जागृति का मूल कार्यक्रम शिक्षा–संस्कार ही है।** मानव परंपरा में भ्रमित विधि क्यों न हो उसमें भी **शिक्षा–संस्कार** अर्थात् हर समुदाय में भी **शिक्षा–संस्कार**, संविधान और व्यवस्था का चर्चा, स्वरूप, निश्चयन स्वीकृति सहित ही सामुदायिक संविधान और व्यवस्था देखने को मिला। इसके मूल में **शिक्षा–संस्कार** का होना स्वाभाविक रहा। मानवीयतापूर्ण परम्परा में भी **शिक्षा–संस्कार** व्यवस्था और संविधान को पहचाना गया है। इन चार मुद्दे में से **शिक्षा–संस्कार** ही मानव सहज सम्पूर्णता का होना पाया गया है। मानव सहज सम्पूर्णता का अर्थात् मानव अपने बहुआयामी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन सहज अपेक्षा आवश्यकता स्वीकृतियों के रूप में नौ बिन्दुओं (पृष्ठ

72–75) में इंगित कराया –है। इसी नौ बिन्दुओं में इंगित वस्तु का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, सहित व्यवहार, कर्म, अभ्यास पूर्ण विधि से प्रमाणित होना ही शिक्षा–संस्कार, सम्पन्नता और वाहकता; जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शनज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में प्रमाणित होने के उपरान्त सहज होना पाया जाता है। इसे **शिक्षा** और **शिक्षण** संस्थापूर्वक ही सम्पूर्ण मानव में लोकव्यापीकरण करना परम आवश्यक है।

शिक्षण संस्थाएँ प्रचलित रूप में अनेकानेक भाषा, देश विधि से स्थापित है ही। इसके बहुसंख्या रूप में मानव अध्ययन किया हुआ है अर्थात् **शिक्षा–संस्कार** पाया हुआ है। प्रचलित **शिक्षा–संस्कार** से क्या फल, परिणाम, निष्पन्न हुआ है यह समीक्षित हो चुका है। जो मानव मानस में सर्वाधिक भाग नकारात्मक सूची के रूप में दिखाई पड़ता है। इसका भी नीर–क्षीर, न्याय अर्थात् स्पष्ट रेखाकरण इस प्रकार देखा गया है कि सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा में सार्थक तकनीकी मानव सहज स्वीकृति के रूप में, सामरिक तंत्र और तकनीकी ह्रास विधि नियम रूपी विज्ञान अस्वीकृत है। जैसे–विखण्डन विधि ह्रास की ओर पदों को इंगित करता है। जैसे परमाणु एक व्यवस्था के रूप में है उसके विखण्डन के अनन्तर वह एक व्यवस्था के रूप में दिखाई नहीं पड़ता है इसके विपरीत अनिश्चित गति से दिखना हो पाता है क्योंकि निश्चित गति परमाणु में ही दिखाई पड़ता है और परमाणु में एक से अधिक अंशों का होना पाया जाता है। निश्चित गति का तात्पर्य हर निश्चित संख्यात्मक परमाणु अंशों से गठित परमाणुओं का आचरण निश्चित रहने से है। इनमें कोई दुविधा नहीं रहती है। अतएव परमाणु के विखण्डन के उपरान्त परमाणु सहज व्यवस्था, अणु विखण्डन के उपरान्त अणु सहज व्यवस्था, अणु रचित रचनाओं के विखण्डन के उपरान्त उन–उन रचना सहज व्यवस्थाएँ दिखाई नहीं पड़ता है। इसका तात्पर्य यही हुआ, विखण्डन कार्य का उन्माद से ही व्यवस्था का विखण्डन होना सिद्ध हुआ। उन्माद इसलिये कहा गया कि जागृत मानव किसी व्यवस्था का विखण्डन करता नहीं। इतना ही नहीं हर जागृत मानव व्यवस्था का पोषक और संरक्षक, धारक–वाहक होना पाया जाता है। इस परीक्षित तथ्य के आधार पर हर मानव यह निश्चय कर सकता है कि विखण्डन विधि और कार्य मानव सहज मानवीयता का द्योतक नहीं है। इसी के साथ यह भी आवाज निश्चित रूप में मिलता है कि व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी ही मानव तथा मानवीयता का द्योतक है। इस विश्लेषणोंपरान्त पाये गये फल–परिणामों का मूल्यांकन से इस निष्कर्ष में आते हैं कि मानव समाज अपने अखण्डता और सार्वभौमता के अर्थ में स्वीकृत है और अपेक्षा बनी हुई है। अतएव इसका मूल स्रोत रूपी मानवीय शिक्षा–संस्कार पक्ष मानवीयतापूर्ण व्यवस्था और मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी सार्वभौम राष्ट्रीय चरित्र, नैतिकता और मूल्यों का अविभाज्य आचरण (संविधान) का स्वरूप और महिमाओं का आवश्यकता सूत्र पर आधारित विधि से अध्ययन करेंगे। क्योंकि अध्ययन से आचरण तक ही समाजशास्त्र का किंवा सम्पूर्ण शास्त्र का प्रयोजन और आवश्यकता स्वयं एवं सार्वभौम शुभ के रूप में तृप्ति और उसकी निरंतरता को पाना सहज समीचीन रहता ही है। इसलिये इसका अध्ययन और आचरण सुलभ है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:75–78)**

- पहले नौ बिन्दुओं में इंगित किये गये तथ्यों का अध्ययन ही **शिक्षा–संस्कार** का सर्वसाधारण और आवश्यक स्वरूप है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 78)**

  (9 बिन्दु –

  1. उत्पादन कार्य में स्वायत्त होने के उद्देश्य सहित प्रत्येक परिवार उत्पादन कार्य में भागीदारी का निर्वाह करना। समझदारी से समाधान, श्रम से समृद्धि।
  2. उत्पादन कार्य में नियोजित होने वाले श्रम मूल्य का पहचान उसका मूल्यांकनपूर्वक श्रम विनिमय प्रणाली को अपनाना। यह लाभ हानि मुक्त होना स्वीकार्य है।
  3. आवश्यकता से अधिक उत्पादन, उत्पादन से उपयोग, उपयोग से सदुपयोग, सदुपयोग से प्रयोजनशील विधियों को स्वीकारा गया है। उपयोग विधि से परिवार न्याय और व्यवस्था, सदुपयोग विधि से समाज न्याय और व्यवस्था, प्रयोजनीयता विधि से प्रामाणिकता और जागृति मानव कुल में लोकव्यापीकारण होने का सहज सुलभता को देखा गया।
  4. व्यवहार विधि में मूल्य मूलक मानसिकता कार्य–व्यवहारों को स्वीकारा गया है। यह कम से कम विश्वास के रूप में पहचाना गया है। विश्वास को वर्तमान में ही पहचानना, मूल्यांकन करना सहज है। वर्तमान में विश्वास अनिवार्यता के रूप में पहचाना गया है।
  5. विचार विधि में विकल्प सह–अस्तित्ववादी विचार को स्वीकारा गया है। यह अस्तित्व सहज विधि से सम्पूर्ण विधाओं में सह–अस्तित्व प्रभावशाली होने, सर्वमानव जीवन सहज रूप में ही साथ–साथ जीने के अरमानों के रूप में पहचानी गई है। इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके है। इसे सर्वमानव तक पहुँचाने के लिए 'समाधानात्मक भौतिकवाद', 'व्यवहारात्मक जनवाद' और 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' को प्रस्तुत किया जा चुका है। इसमें सम्पूर्ण इकाई अपने स्वभावगति में समाधान उसकी निरंतरता है। व्यवहारपूर्वक ही सर्वमानव आश्वस्त विश्वस्त होने की व्यवस्था है और चाहता है। इसे भले प्रकार से देखा गया। यही सर्वमानव में समाधान है। अस्तित्व में अनुभव होता है इसे प्रमाणित कर भी देखा है। हर मानव अनुभव (तृप्ति) मूलक विधि से जीना चाहता है। यही विचार में विकल्प है।
  6. ज्ञान दर्शन विज्ञान में विकल्प क्यों, कैसा, क्या प्रयोजन को इस प्रकार समझा गया है। जीवन ज्ञान अध्ययनगम्य है इसीलिये यह सबको सुलभ हो सकता है। दूसरा सम्पूर्ण अस्तित्व ही मानव को देखने में आता है। अर्थात् समझने में आता है। इसलिये अस्तित्व दर्शन हमें समझ में आया है और सर्वमानव समझने योग्य है और चाहता है। विकास विधि सह–अस्तित्ववादी सूत्रों के आधार पर सम्पूर्ण विज्ञान विश्लेषित होना सहज है। इसीलिये सर्वमानव–मानस इसे समझने का माद्दा रखता है। इतना ही नहीं, इसे सर्वमानव चाहता है।
  7. न्याय विधि मानव सहज आचरण रूप में हम पहचान चुके हैं। सर्वमानव जीवन सहज रूप में न्याय की अपेक्षा करता ही है।
  8. स्वास्थ्य संयम – यह मानव कुल में बारम्बार विचार प्रयोग होते ही आया है। यह जीवन जागृति को व्यक्त करने योग्य रूप में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय सम्पन्न मनुष्य शरीर तैयार रहने से ही है। पुनश्च, जीवन सहज जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करना ही स्वस्थ शरीर का मूल्यांकन है। तीसरे प्रकार से, जीवन जागृति स्वस्थ शरीर द्वारा प्रमाणित होता है। जीवन जागृति का साक्ष्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूर्वक परिवार सभा से विश्व परिवार सभाओं में भागीदारी को निर्वाह करना, सुख;

शांति; संतोष; आनन्द का अनुभव करना, समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना। इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके हैं।

9. **शिक्षा–संस्कार** में मानवीकृत **शिक्षा** को हम भले प्रकार से पहचानें है इसमें मानव का सम्पूर्ण आयाम, दिशा, परिप्रेक्ष्य और कोणों का अध्ययन है। देश और काल, क्रिया, फल, परिणाम सहज समाधानपूर्ण विधि को समझा गया है। यह सर्वमानव में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है ही। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर:70–73)**

- ...अस्तित्व में सदा–सदा ही समाधान और सामरस्यता सह–अस्तित्व सहज वर्तमान होने के कारण है। और विरोधाभास और विशेष तथा सामान्य जैसी विषमताओं का कोई गवाही नहीं है। ऐसा विरोधाभास मनुष्य में क्यों आया और कैसे आया इसके उत्तर में पहले विदित कराया गया है कि मनुष्य विभिन्न जलवायु में इस धरती में अवतरण होने और विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में परंपरा को (अर्थात् पीढ़ी से पीढ़ी) को सुदृढ़ बनाने के क्रम में विरोधाभास को ही धातु युग, राज्य और आस्था युग तथा विज्ञान युग में भी स्वीकारना हुआ या सीमित रहना हुआ या विवश रहना हुआ। यही सम्पूर्ण अनिष्ट जो बुद्धिमान मानव जान लिया है, जिसको अभी भी जानना शेष है ऐसे सभी अनिष्ट घटनाओं का कारण सिद्ध हुआ है। यही मानव में अभी तक की भय, प्रलोभन, आस्थाओं से संबंधित सम्पूर्ण मान्यताएँ है। इसी में श्रेष्ठता–नेष्ठता, ज्यादा–कम, विद्वान–मूर्ख, ज्ञानी–अज्ञानी जैसी वितण्डावाद बना ही है। यही विरोधाभास समस्याओं के रूप में मानव परंपरा में भुक्त–भोगित स्थितियाँ है। वितण्डावाद और विषमताएँ किसी मानव को स्वीकार्य नहीं है। भले ही पंचमानव कोटि में से पशुमानव और राक्षस मानव क्यों न हो। विषमता दुष्टता की पीड़ा मानव को स्वीकार नहीं हुआ क्योंकि दुष्टता से, विषमता से सदा विरोध होते ही रहा। अब उसका निराकरण ही समाधान होना सहज है। समाधान, समृद्धि विधि से सम्पूर्ण विषमताएँ समाधान में परिवर्तित होने का मार्ग प्रशस्त होता है जैसा प्रत्येक मनुष्य समझदारी से समाधान श्रम से समृद्धि पूर्वक स्वायत्तता से समृद्ध होने से ही समाधानित होता है। यही परिवार मानव का स्वरूप भी है। यह **चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार** विधि से सर्वसुलभ होने की व्यवस्था **मानवीय शिक्षा–संस्कार** परंपरा का वैभव है। **शिक्षा–संस्कार** मानव परंपरा में अविभाज्य अभिव्यक्ति संप्रेषणा है। **शिक्षा–संस्कार** परंपरा का अभिव्यक्ति संप्रेषणाएं मानव जागृति का प्रमाण है। जागृति के प्रमाण का तात्पर्य स्वायत्त मानव के रूप में पीढ़ी से पीढ़ी समृद्ध बनाने से है। इससे स्पष्ट हो गया है कि **शिक्षा–संस्कार** का उद्देश्य स्वायत्त मानव के रूप में समृद्ध करने में सक्षम रहना है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 78–79)**
- मूल्य, चरित्र, नैतिकताएं अविभाज्य रूप में स्वायत्त मानव में प्रमाणित होने का क्रम ही आचरण है। मानव अपने स्वायत्त आचरण सहित ही कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित रूप में सामाजिक होना प्रमाणित करता है। संबंधों के आधार पर जैसा मानव संबंधों को प्रयोजनों और व्यवस्था के सूत्रों के रूप में देखा गया है कि सम्मान संबंध जिसमें सम्मानित होने वाला और सम्मान करने वाले का परस्परता में होने वाले कार्यव्यवहार सम्मान संबंध का साक्ष्य है। सम्मान संबंध में स्पष्ट हो चुका है कि स्वयं से अधिक जागृत प्रमाणित व्यक्तियों के प्रति, स्वयं के प्रति विश्वास के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से मुखरित और आचरित होने वाला क्रियाकलाप जिसका प्रयोजन सम्मानित होने वाले व्यक्ति में सम्मान किया या स्वीकृति होना आवश्यक है। सम्मान परस्परता में मूल्यांकन है। ऐसा सम्मान करने और सम्मानित होने का मूल्यांकन उभयतृप्ति का स्रोत होना पाया जाता है। सम्मान करने, सम्मान स्वीकृत करने का क्रियाकलाप ही जागृति सहज व्यवहार कहलाता है। संबंध स्वयं से, स्वयं के लिये, स्वयं में जाना, माना, पहचाना हुआ, निर्वाह करने के लिये आधार है। स्वयं में तृप्ति पाने का उद्देश्य

अथवा तृप्त होने का उद्देश्य और तृप्त रहने का उद्देश्य बना ही रहता है। संबंधों को पहचानने के उपरान्त उसका प्रयोजन केवल भय मुक्ति ही है। भय मूलत: भ्रम के रूप में होना विदित है। भ्रम; अधिक, कम, अथवा विपरीत पहचान और मान्यता है। यही भय प्रलोभन का कारण और स्वरूप है। इसी क्रियाकलाप को भ्रम नाम हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय बिन्दु है कि अस्तित्व में केवल मनुष्य ही अपने ही प्रयासों से भ्रमित होता है क्योंकि मानव में ही कर्म करने में स्वतंत्रता, फल भोगने में परतंत्रता दिखाई पड़ती है। कोई भी कार्य करने के मूल में विचारों का होना पाया जाता है। विचार पूर्वक ही ज्यादा, कम या विपरीत कार्यों में ग्रसित हो जाता है। भयपूर्वक मानव भ्रमित कार्यों को करता ही है, प्रलोभनपूर्वक भी करता है। भयपूर्वक सभी भ्रमित कार्य अस्वीकृतिपूर्वक होता है, प्रलोभन से संबंधित सभी कार्य स्वीकृतिपूर्वक होता है। इन दोनों विधा में भ्रम ही कारण है। आस्था विधा में स्वर्गवादी, जितने भी कल्पना–परिकल्पना मानव ने कर रखा है वह सब प्रलोभन का ही विस्तार रूप में होना पाया जाता है। नर्क में भी भय का ही विस्तार वर्णन होना पाया जाता है। इसके अतिरिक्त और कोई चीज आस्था विधा से खोजा जा रहा है वह प्रमाणित नहीं हो पाया अर्थात् समाज परंपरा में **शिक्षा**, संस्कार, व्यवस्था, संविधान के रूप में प्रमाणित नहीं हुआ है। इसका विकल्प में ही जीवन ज्ञान परम ज्ञान के रूप में जागृति और उसकी प्रमाण सहित परम्परा बनना संभव हो गई है। यह अध्ययनगम्य है। ऐसा जागृत मनुष्य का आचरण ही मानव कुल का वैभव और संविधान होना पाया जाता है। इसी के पुष्टि में सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान अध्ययनगम्य हुआ है। फलत: मनुष्य में स्वायत्तता की सम्पूर्ण स्रोत नित्य समीचीन है। हर मनुष्य जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में होने के आधार पर जीवन ही जागृति पूर्वक दृष्टा पद में अपने ऐश्वर्य को प्रमाणित करने की सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज और उसके वैभव को जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने की आवश्यकता, अवसर समीचीन है। इस प्रकार हर व्यक्ति जागृति पूर्वक ही स्वायत्तता का प्रमाण है। स्वायत्त मानव रूप प्रदान करने की **शिक्षा–संस्कार** ही मानव परंपरा सहज जागृति का प्रमाण है।

परंपरा न हो ऐसे स्थिति में इसका कल्पना ज्ञान, दर्शन, विचार और योजना कैसे उपलब्ध हो यह प्रश्न मानव जाति में आता ही है। इस सभी मुद्दे पर अनुसंधानपूर्वक हम प्रमाणित हो चुके हैं। अब केवल **शिक्षा** विधा में प्रमाणित होने की गति सहित कार्य कर रहे हैं। इसी क्रम में यह व्यवहारवादी समाजशास्त्र प्रस्तुत है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 82–84)**

- समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्वपूर्ण जीने की कला में दृढ़ता को स्थापित करने और दृढ़ता से सम्पन्न होने की क्रियाकलापों में मूल्यांकन सहज तृप्ति को पाया जाता है। यही कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्यों में विधिवत् तृप्ति पाने का स्रोत है। यह समीचीन है। यह एक आवश्यकता भी है। इन्हीं तृप्तियों को पाने के क्रम में मूल्यों का निर्वाह करना सहज है। इस प्रकार व्यवहार में सामाजिक होने का सम्पूर्ण अर्हता स्वायत्त मानव में **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक समाहित होता है और प्रमाणित होता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 88)**
- स्वायत्त मानव ही अर्थात् स्वायत्त नर–नारी ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होते हैं। परिवार का परिभाषा में वर्तमान होना ही स्वायत्त मानव का प्रमाण है। **मानवीय शिक्षा–संस्कारपूर्वक** ही हर विद्यार्थी स्वायत्तता सम्पन्न होता है। **मानवीय शिक्षा** का परिभाषा भी यही है। जब यह परिवार परिभाषा में प्रमाणित होते हैं तब सहज ही एक–दूसरे के साथ सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं और श्रम मूल्य का भी मूल्यांकन करते हैं। सम्बन्ध निर्वाह, मूल्य निर्वाह का मूल्यांकन करते हैं, उभयतृप्ति

पाते हैं। यही परिवार मानव का प्रमाण है। यही परिवार मानव के रूप में अनेक परिवार सभा यथा परिवार समूह सभा, ग्राम परिवार सभा के रूप में संतुलन निर्वाचन विधि से कार्यरत होना पाया जाता है। परिवार मानव, परिवार समूह, ग्राम परिवार और विश्व परिवारों तक सभी परिवार सभा क्रम से, (क्रम से का तात्पर्य विशालता और समग्रता की ओर) परिवार समृद्धि सम्पन्नता का व सभा विधि व्यवस्था का धारक–वाहक रूप में समाज और व्यवस्था को अभिव्यक्त करते हैं। हर परिवार, परिवार समूह, ग्राम परिवार, ग्राम परिवार समूह विधि से विश्व परिवार तक संतुलन का स्वरूप **मानवीय शिक्षा–संस्कार** न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य संयम, **मानवीय शिक्षा** सुलभता पूर्वक संबंध में सहज स्वायत्त रहना पाया जाता है। हर सुलभता में उभयता एक अनिवार्य स्थिति है। उभयता का तात्पर्य मनुष्य की परस्परता; नैसर्गिक अर्थात् जल, वायु, धरती और सूर्य उष्मा का परस्परता सदा रहता ही है। मनुष्य के परस्परता में संबंधों के साथ ही नैसर्गिक उपलब्धियों अर्थात् उत्पादन होता है। क्योंकि नैसर्गिक संयोग से ही हर उत्पादन होना देखा जाता है। ऐसा उत्पादन, विनिमय के लिये वस्तु होना पाया जाता है। और व्यवहार के लिये हर स्वायत्त मानव; संबंध दृष्टा, मूल्य दृष्टा होना पाया जाता है। जानने, मानने, पहचानने की विधि से संबंधों का पहचान होना पाया जाता है। उसकी स्वीकृति के फलन में जीवन सहज अक्षय शक्ति, अक्षय बल रूपी ऐश्वर्य; मूल्यों के रूप में एक दूसरे के लिये स्वीकार्य योग्य रूप में आदान–प्रदान होता है। यही मानव संबंध और मूल्यों का तात्पर्य है। ऐसे संबंधों को सात रूप में पहचाना गया है। और मूल्यों को क्रम से जीवन मूल्य को चार स्वरूप में, मानव मूल्य छह स्वरूप में, स्थापित मूल्य नौ स्वरूप में, शिष्ट मूल्य नौ स्वरूप में और वस्तु मूल्य दो स्वरूप में समझ सकते हैं। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 91–92)**

- पहले इस तथ्य को स्पष्ट किया जा चुका है स्वायत्त मानव अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व वैभव के रूप में स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबन, व्यवहार में सामाजिक रूप में प्रतिष्ठा है। यह जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन मूलक विधि से लोकव्यापीकारण होने के तथ्य को स्पष्ट किया है। ऐसे प्रत्येक मानव के सार्थक सफल और परिवार मूलक व्यवस्था का धारक–वाहक होना पाया जाता है। इस विधि से सर्वमानव, स्वायत्त मानव, परिवार मानव, परिवार व्यवस्था मानव के रूप में **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक नित्य वर्तमान होने के आधार पर मानव जाति एक होने का अर्थ अपने आप में नित्य वर्तमान है। अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व विधि ही इसका मूल सूत्र है। सह–अस्तित्व में ही मानव परंपरा, समाधान, समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास), जीने की कला, विचार शैली और अनुभव बल में सामरस्यता होना पाया जाता है। इसकी संभावना नित्य समीचीन है। इसीलिए मानव जाति एक है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर:102–103)**
- मानव जाति एक होने के आधार पर ही मानव धर्म एक होने का अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान सबको समीचीन होने का सत्य उद्घाटित हो पाता है। समाधान मूलत: मानव जीवन सहज उद्देश्य और प्रमाण है। इस उद्देश्य की पूर्ति जागृतिपूर्वक उजागर होती है। जागृति का सार्थक स्वरूप अस्तित्व में अनुभव है। अस्तित्व नित्य वर्तमान होते हुए अनुभव का घोषणा, सत्यापन, प्रमाण, मानव ही मानव के लिये अर्पित करता है। प्रामाणिकता ही व्यवहार में सर्वतोमुखी समाधान के रूप में प्रमाणित हो जाता है। अस्तित्व में अनुभव ही जागृति परमता का द्योतक है। जागृति ही भ्रम मुक्ति है। आदिकालीन अथवा सुदूर विगत से सुना हुआ 'मुक्ति' शब्द का अर्थ सह–अस्तित्व में अनुभव रूप में सार्थक होता है। इसे भली प्रकार से देखा गया है। सह–अस्तित्व में अनुभव सर्वसुलभ होने का मार्ग **मानवीय शिक्षा–संस्कार** विधि से समीचीन है और प्रशस्त है। सह–अस्तित्व शाश्वत सत्यरूपी, नित्य सत्यरूपी, परम सत्यरूपी न घटते–बढ़ते हुए मानव सहित अविभाज्य वर्तमान है। इसमें खूबी यही है अस्तित्व ही चार अवस्था में

प्रकाशमान है। जिसमें से एक अवस्था स्वयं में मानव है। अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व ही इसका मूल सूत्र है। सह–अस्तित्व ही विकास, पूरकता, उदात्तीकरण, फलस्वरूप रासायनिक–भौतिक रचनाएँ, विरचनाएँ सम्पन्न होते हुए देखने को मिलता है। देखने वाला मनुष्य ही है। विकास, अर्थात् परमाणु में विकास, पूरकता, पूर्णता, संक्रमण, जीवन और जीवन जागृति प्रमाणित होता है। जीवन में जीवन जागृति का प्रमाण मानव ही प्रस्तुत करता है। मानव अपने में जागृतिपूर्णता में उसकी निरन्तरता सहज विधि से ही सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न परंपरा को बनाए रखना सहज है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 112–113)**

- सर्वमानव सहज रूप में ही समान है। इसीलिये मानव धर्म सर्वमानव में समान है। यह तथ्य समझ में आता है। सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य ही है स्वयं व्यवस्था में और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करना। इसी विधि से मानव अपने में चिरआशित स्वराज्य को पाकर सुख, शांति, संतोष और आनन्द को पाकर; समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यही मुख्य रूप में मानव का चाहत भी है। मूलत: धर्म एक शब्द है। हर शब्द किसी का नाम है। धर्म शब्द से इंगित वस्तु मानव जागृति और उसका प्रमाण रूपी प्रामाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान ही है। इसका स्वीकृत स्वरूप ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। इसका दृष्टा पद में भी सुख, शांति, संतोष आनन्द है। इसका दृश्य रूप ही व्यवस्था है। वह परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक गुँथे हुए स्वरूप में दिखाई पड़ती है। व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति ही अथवा फलन ही समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व है। इस प्रकार जीवन सहज लक्ष्य, मानव सहज अर्थात् अखण्ड समाज सहज लक्ष्य, संगीत, विन्यास है, यही समाधान के रूप में निरूपित होती है। सह–अस्तित्व और अनुभव में संगीत है। यही आनन्द के नाम से विख्यात होता है। न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य–संयम, शिक्षा–संस्कार में होने वाला अनुभव ही सर्वतोमुखी समाधान है। यह मानव सहज जागृति की अभिव्यक्ति और संप्रेषणा है। सम्पूर्ण मानव अपने परिवार सहज आवश्यकता से अधिक कार्य करता है इसके फलन में समृद्धि का अनुभव होता है। यह भी समाधान है। हर परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्धों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभयतृप्ति पाने की विधि जागृतिपूर्वक सम्पन्न होता है। यह निरन्तर समाधान है। लाभ–हानि मुक्त विनिमय प्रणाली जागृति सहज मानव की अपेक्षा है। इस विधि से विनिमय कार्य का क्रियान्वयन स्वयं समाधान है। स्वास्थ्य संयम, स्वाभाविक रूप में जीवन जागृति को शरीर के द्वारा मानव परंपरा में प्रमाणित करने योग्य शरीर है। यही स्वास्थ्य का निश्चित स्वरूप है। जागृतिपूर्ण परंपरा में सर्वमानव अपने स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाये रखने का उपाय और स्रोत बना ही रहता है। यह स्वयं में समाधान है। **प्रत्येक मानव मानवीय शिक्षा–संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव, परिवार मानव, विश्व परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है**। यह सर्वतोमुखी समाधान है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:114–115)**
- मानव धर्म परम्परा के रूप में सहज ही अर्पित होता है, प्रवाहित होता है। इसी का नाम संस्कार है। संस्कार का तात्पर्य भी पूर्णता के अर्थ में किया गया कृतियाँ और स्वीकृतियाँ है। ऐसी स्वीकृतियाँ सार्थक होते हैं। इसी का नाम होता है सम्प्रदाय। सम्यक प्रकार से प्रदायन क्रिया, सम्प्रदाय है**। मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** परंपरा ही पावन रूप में संस्कार है। ऐसी पवित्रता की धारक वाहकता केवल मानव में होना पाया जाता है। इस प्रकार मानव धर्म और मानव सम्प्रदाय सर्वशुभ के अर्थ में सार्थक होता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:116)**
- मानवीय सभ्यता, संस्कृति, विधि, व्यवस्था सर्वमानव में, से, के लिये समान है – संस्कृति का स्वरूप के सम्बन्ध में पहले भी सामान्य विवरण प्रस्तुत किये गये हैं। मानवीय संस्कृति का पोषण सभ्यता करती है, सभ्यता का पोषण विधि करती है, विधि का पोषण व्यवस्था करती है और व्यवस्था का पोषण संस्कृति करती है। इस प्रकार

आवर्तनशीलता क्रम सुस्पष्ट है। संस्कृति का मूलरूप संस्कार है। संस्कार का मूलरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अस्तित्व और मानव से संबंधित अध्ययन बोधगम्य होना ही **शिक्षा–संस्कार** का तात्पर्य है। ऐसी **शिक्षा–संस्कार** ही मानवीयतापूर्ण परम्परा का मार्गदर्शक होता है। मानवीयतापूर्ण परम्परा अपने–आप में ऊपर कहे चारों आयाम सम्पन्न रहता ही है। ऐसी **शिक्षा–संस्कार** से प्राप्त स्वीकृतियों, अवधारणाओं, अनुभवों, विचार शैली सहित सर्वतोमुखी समाधान मानसिकता से सम्पन्न होना ही मानवीय संस्कार सफलता का प्रमाण है। यही सभ्यता का आधार है।.... **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:118 –119)**

- जागृतिपूर्ण सभी मानव इस संविधान के धारक वाहक हैं। प्रत्येक मनुष्य जागृति में, से, के लिये मानव परंपरा में मनुष्य के रूप में प्रस्तुत हैं। इसीलिये जागृत हैं या जागृत होने योग्य हैं। प्रत्येक जागृत मनुष्य मानवीय **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक स्वतंत्रता और स्वराज्य का धारक–वाहक और प्रेरक है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य **शिक्षा–संस्कारपूर्वक** जागृत होता है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:125)**
- स्वतंत्रता :– प्रत्येक मानव अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था (मानव धर्म) में भागीदारी निर्वाह करने, कराने एवं करने के लिये मत देने में स्वतंत्र है। अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था की अक्षुण्णता **मानवीय शिक्षा–संस्कार**, स्वास्थ्य–संयम, न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य, विनिमय–कोष, सुलभता सहित है जिसका क्रियान्वयन दस सीढ़ी में होता है। 1.'परिवार' सभा, 2.'परिवार समूह' सभा, 3.'ग्राम परिवार' सभा, 4.'ग्राम समूह' परिवार सभा, 5.'ग्राम क्षेत्र' परिवार सभा, 6.'मंडल' परिवार सभा, 7.'मंडल समूह' परिवार सभा, 8.'मुख्य राज्य' परिवार सभा, 9.'प्रधान राज्य' परिवार सभा और 10.'विश्व राज्य'। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:126)**
- संतुलन

  जागृत **शिक्षा–संस्कार** विधि से प्रत्येक मानव जागृत होना पाया जाता है। **शिक्षा** ग्रहण करने की अर्हता सम्पूर्ण मानव में विद्यमान है। जीवन अनेक बार अथवा मानव बारंबार, मानव परंपरा में जागृत होने का प्रयत्न करता है। इसे हम सब देखे हुए हैं। मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार उपलब्ध होने के उपरान्त ही हर मानव में, से, के लिये संतुलन एक नित्य उत्सव का आधार बिन्दु है। संतुलन का मूल रूप सम्पूर्ण मानव में संतुलन, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करता हुआ दसों सीढ़ियों में परस्पर पूरकता पूर्वक मानव सहज जीने की कला को प्रमाणित करने के रूप में है। ऐसे संतुलन का स्वरूप –

  1. **शिक्षा–संस्कार**–व्यवस्था और संविधान में सामरस्यता
  2. मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में सामरस्यता
  3. मानवीय व्यवस्था सहज पाँचों आयामों में सामरस्यता
  4. सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन और उभयतृप्ति में सामरस्यता
  5. नैसर्गिक सम्बन्ध और मानवीयतापूर्ण विधि से जीने की कला में सामरस्यता
  6. दसों सीढ़ियों में परस्पर उपयोगिता, पूरकता और सामरस्यता
  7. व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता

  यही संतुलन का प्रमाण है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 128)**

- परिवार सभा सभ्यता – सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन विधियों से सम्पन्न अनुभव ही सभ्यता की प्रतिष्ठा है। परिवार ही अपने परिपक्वता विधि से सभा के स्वरूप में प्रमाणित होता है। इस प्रकार सभा ही सभ्यता की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन स्रोत है। सभा स्वरूप क्रम से दस सीढ़ियों में स्पष्ट है। मूलत: परिवार सभा ही अन्य स्तरीय सभाओं की रचना–कार्य और प्रवृत्तियों को प्रवर्तित करता है। परिवार में समाधान, समृद्धि और परस्परता में विश्वास, प्रतिष्ठा के रूप में अनुभव होना ही, उसकी विशालता की आवश्यकता स्फूर्त होती है। इसी क्रम में परिवार के अन्य कार्य सूत्र भी आशय के रूप में सूत्रित रहता ही है। धरती में अकेले व्यक्ति या परिवार नाम की स्वरूप की व्यवस्था नहीं है। अनेक व्यक्ति, अनेक परिवार के रूप में मानव प्रकाशित है। इसलिये परस्पर परिवार में विश्वास का सूत्र फैलना एक आवश्यकता रहता ही है। इसी क्रम में परिवार समूह, ग्राम मुहल्ला परिवार होना एक साधारण विधि है। इसमें परिवार का आशित विनिमय, न्याय, स्वास्थ्य–संयम, शिक्षा–संस्कार अपेक्षा के रूप में ही रहता है। क्योंकि परिवार आवश्यकीय सभी सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं को निर्मित नहीं करता। आवश्यकता से अधिक एक–दो वस्तुओं को अवश्य ही उत्पादित करता है एवं विनिमय पूर्वक अन्य वस्तुओं में बदलने की आवश्यकता बनी रहती है। यह एक आवश्यकीय प्रक्रिया है। इसे दूर–दूर तक सूत्रित करना एक आवश्यकता है। मानव जागृतिपूर्वक ही सामाजिक होना पाया जाता है। यह **शिक्षा–संस्कारपूर्वक** ही होता है। इसका परीक्षण, सर्वमानव के साथ होना सहज है। इस विधि से संबंधों को विशाल और विशालतम रूप देना आवश्यकता है। इसी विधि से ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्ध रचना मानव का चिर कामना नैसर्गिकता सहज विधि से स्पष्ट हुआ है। इस विधि से धरती के मानव न्याय, जो अखण्ड समाज के अर्थ को ध्वनित करता है, के साथ समाधान जो सार्वभौम व्यवस्था को ध्वनित करता है, के साथ जागृति जो इन दोनों को संतुलित रूप में प्रमाणित है, के साथ निरन्तर जीने की कला को, अनुभव बल को, विचार शैली को सर्वथा परिपूर्ण रूप में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना संभव है। जागृत परंपरा ही शिक्षा–संस्कार, न्याय–सुरक्षा, विनिमय–कोष, उत्पादन–कार्य और स्वास्थ्य–संयम के रूपों में हर सभा के परस्परता में, हर सभा में प्रमाणित होता है और उसका मूल्यांकन होना एवं उसकी तृप्ति सर्वसुलभ होना ही मानवीयतापूर्ण आचार संहिता का परम लक्ष्य है। अस्तु:–

  1. मानव का मौलिक आधार, उसके विशालता का स्वरूप, आवश्यकता का उद्गमन, सार्थकता का स्वीकार हर मानव में है ही।
  2. हर मानव प्रमाणित होना ही चाहता है।
  3. सार्थक होने का सहज स्रोत मानवीय शिक्षा–संस्कार ही है। और
  4. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में ही सम्पूर्ण प्रमाण प्रमाणित होता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:133–135)**
- परिवार की पहचान, उसकी विशालतमता ही समाज का स्वरूप है। व्यवस्था अपने में न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य– संयम और **शिक्षा–संस्कार** सुलभता ही है और समाज अपने– आप में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति विधि ही जागृति का साक्ष्य है। इसी उभय तृप्ति का नामकरण ही 'न्याय' है। यह सभी परिवार में हो सकता है, आवश्यकता है, यह सर्वविदित है। इसका स्रोत निरंतर जागृत परिवार है। दूसरा जागृत परिवार और उसके संतुलन के लिए **मानवीय शिक्षा–संस्कार** परंपरा ही है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:136)**

- सर्वतोमुखी समाधान और तृप्ति सहज निरंतरता सर्वमानव का अभीष्ट है। जागृत मानसिकता का संतुलन और सार्थक स्वरूप यही है। संतुलन ही मानव सहज स्वभाव गति है। ऐसे स्वभाव गति का प्रमाण स्वरूप स्वायत्त मानव और परिवार मानव ही है। स्वायत्त मानव, **मानवीय शिक्षा–संस्कार** पूर्वक सार्थक होता है। **मानवीय शिक्षा–संस्कार** परंपरा और **शिक्षा** ग्रहण करने की अपेक्षा हर मानव में निहित है।....**(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:137)**
- अध्ययन, मानवीयतापूर्ण **शिक्षा–संस्कार** ही मानव को सदा–सदा के लिये जागृति व जागृति परम्परा के लिये समीचीन स्रोत है। ऐसे शिक्षा–संस्कार को हर मनुष्य के लिये सुलभ होना मानव सहज अथवा मानवीयतापूर्ण मानव के पुरूषार्थ का मूल्यांकन है। इससे पता चलता है कि मानवीयतापूर्ण **शिक्षा–संस्कार** परम्परा मानव परम्परा का पुरूषार्थ है। पुरूषार्थ का तात्पर्य ही है, अपनी प्रखर प्रज्ञा और उसका निरंतर कार्य है। ऐसा प्रखर प्रज्ञा मानव में ही प्रमाणित होता है। प्रधान रूप में यही मानव सहज मौलिकता प्रखर प्रज्ञा ही जागृति और जागृति पूर्णता का प्रमाण है। इसकी अभिव्यक्ति ही जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान है। ऐसे जागृति रूपी अथवा जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन रूपी जागृति को प्रमाणित करना ही प्रखर प्रज्ञा का प्रमाण है। इस विधि से हर मनुष्य इसे अध्ययन विधि से जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही जागृति और उसकी परम्परा है। निर्वाह करने के क्रम में ही आचरण, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होता है। आचरण में मूल्य, चरित्र, नैतिकता मूल रूप में अविभाज्य रूप में वर्तमान रहता है। परिवार व समाज विधा में चरित्र प्रधान विधि से मूल्य और नैतिकता प्रमाणित होता है। मूल्य प्रधान विधि से परिवार व्यवस्था और नैतिकता प्रधान विधि से समग्र व्यवस्था प्रमाणित होती है। जागृत परंपरा में ही स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार सहज कार्यक्रम परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में स्पष्ट है ही।.... **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:144–145)**
- .... स्वायत्त मानवाधिकारोपरान्त ही विवाह घटना का उपयोगी और सार्थक होना पाया जाता है। स्वायत्त मानव का पहचान स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन सहज प्रमाण के आधार पर सम्पन्न होना व्यवहारिक है। ऐसी अर्हता को **शिक्षा–संस्कार** परंपरा में प्रावधानित रहना मानव सहज वैभव में से एक प्रधान आयाम है। इस प्रकार **चेतना विकास मूल्य शिक्षा** सम्पन्न शिक्षित व्यक्ति ही अध्ययनपूर्वक अपने में स्वायत्तता का अनुभव करने और सत्यापित करता है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा**, मानवीयतापूर्ण ज्ञान, दर्शन और आचरण सम्पूर्ण अध्ययनोपरांत किये जाने वाले हर सत्यापन को वाचिक प्रमाण के रूप में स्वीकारना नैसर्गिक व्यवहारिक आवश्यक मानव परंपरा में से प्रयोजनशील होना देखा गया है क्योंकि परस्पर सम्बोधन सत्यापन के साथ ही सम्बंध, कर्तव्य व दायित्वों की अपेक्षाएँ और प्रवृत्तियाँ परस्परता में अथवा हरेक पक्ष में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:150–151)**
- विवाह सम्बन्ध समय में आयु की परिकल्पना का होना पाया जाता है। आयु के साथ स्वास्थ्य, समझदारी, ईमानदारी, कारीगरी की अर्हता जिम्मेदारी, भागीदारी सहित दाम्पत्य सम्बन्ध में प्रवृत्ति यह प्रधान बिन्दुएं हैं। इसका परिशीलन विवाह संबंधके लिये उत्सवित नर–नारियाँ का सत्यापन, अभिभावकों की सम्मति, **शिक्षा–संस्कार** जिनसे ग्रहण किये और उसे अध्ययनपूर्वक जिन अभिभावकों और आचार्यों के सम्मुख प्रमाणित किया, उनकी सम्मति यह प्रधान रूप में जाँच पूर्वक एकत्रित कर लेना आवश्यक है। इस संयोजन कार्य को करने वाला व्यक्ति प्रधानत: विवाह सम्बन्ध में प्रवेश करने वाले हर नर–नारी का पहला अभिभावक होंगे, दूसरा शिक्षक या आचार्य रहेंगे, तीसरे स्थिति में भाई–बहन और मित्र रहेंगे। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:151–152)**

- ....इससे यह स्पष्ट हो गया है कि हर मनुष्य चाहे नर हो चाहे नारी हो, स्वस्थ रहने के मापदण्ड अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व क्रम में स्वायत्त मानव के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है। जिनमें ही मानवत्व रूपी स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार को स्वयं स्फूर्त विधि से प्रमाणित होना पाया गया है। ऐसा स्वायत्त मानव स्वस्थ मानव परिवार परंपरा में, व्यवहार परंपरा में, उत्पादन परंपरा में, विनिमय परंपरा में, स्वास्थ्य–संयम परंपरा में, **मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार** परंपरा में और न्याय–सुरक्षा परंपरा में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। यह समझदार परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि से समाज रचना परिवार से ग्राम परिवार, ग्राम परिवार से विश्व परिवार तक और ग्राम स्वराज्य सभा से विश्व परिवार सभा तक इन सभी आयामों में भागीदारी का सूत्र, व्याख्या अग्रिम अध्यायों में स्पष्ट हो जाएगी। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:159)**
- कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता का प्रयोग हर मानव संतान जन्म समय से ही करता है। मौलिक अधिकार सम्पन्न जागृत मानव परंपरा में अर्पित होता है। इसका साक्ष्य जन्म से ही हर मानव संतान में न्याय की अपेक्षा, सही कार्य–व्यवहार करने की इच्छा और सत्यवक्ता होना। कम से कम तीन वर्ष के शिशुओं के अध्ययन से एवं अधिक से अधिक पाँच वर्ष के शिशुओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। इसे हर मानव निरीक्षण, परीक्षण पूर्वक अध्ययन कर सकता है। यही मुख्य बिन्दु है। इस आशयों को अर्थात् शिशुकाल में से मुखरित इन आशयों का आपूर्तिकरण ही जागृत मानव परंपरा का वैभव है।

  जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान केन्द्रित **मानवीयतापूर्ण शिक्षा प्रणाली**, पद्धति, नीतिपूर्वक किये गये अध्ययन–अध्यापन कार्य विधि से शिशुकालीन तीनों अपेक्षाओं का भरपाई होता है। जीवन ज्ञान सम्पन्नता से हर मनुष्य में दृष्टा पद प्रतिष्ठा में, से, के लिये वर्तमान में विश्वास होता है। फलत: न्यायप्रदायी क्षमता प्रमाणित हो जाती है। अस्तित्व दर्शन की महिमावश सह–अस्तित्व, सह–अस्तित्व में व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी उसकी आवश्यकता और प्रयोजन बोध होता है जिससे सही कार्य–व्यवहार करने का अर्हता स्थापित होता है।

  अस्तित्व ही परमसत्य होने का बोध जीवन सहित अस्तित्व दर्शन के फलस्वरूप परम सत्य बोध होना स्वाभाविक है। इसलिये सत्य बोध सहित सत्य वक्ता का तृप्ति पाना सहज समीचीन है। यही **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** की सारभूत उपलब्धि, जागृति और समीचीनता सहज है। अतएव मानव परंपरा स्वयं जागृत होने की आवश्यकता अनिवार्यता स्पष्ट है।

  परम्परा जागृति का तात्पर्य **शिक्षा–संस्कार** पंरपरा का मानवीयकरण फलत: परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सर्वसुलभ होने का कार्यक्रम ही अखण्ड समाज का कार्यक्रम है। यही जागृत पंरपरा का स्वरूप है। यह हर नर–नारियों में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है। इसलिये इसका आचरण, समझ और विचार समीचीन है।

  मानव परंपरा में ही हर परिवार मानव अपने संतानों को परम ज्ञान, परम दर्शन, परम आचरण सम्पन्न बनाने में स्वाभाविक रूप में सार्थक होगा। क्योंकि जागृत मानव हर आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्षों में जागृति सहज कार्यकलापों, आचरणों, विचारों और प्रमाणों को वहन किया करता है। दूसरे भाषा में अभिव्यक्त संप्रेषित और प्रकाशित करता है। ऐसे मौलिक क्षमता का अर्थात् जागृति पूर्ण क्षमता के लिये हर अभिभावक जिम्मेदार, भागीदार रहना पाया ही जाता है।

जागृत पंरपरा में हर अभिभावक जागृत मानव पद में प्रमाणित रहने के आधार पर ही अपने संतानों में न्याय प्रदायी क्षमता, समाधानपूर्ण कार्य–व्यवहार (सही कार्य–व्यवहार) करने की योग्यता, और सत्यबोध सम्पन्न सत्यवक्ता होने की अर्हता को स्थापित करना सहज है।

जागृत मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी किताब के बोझ से छुटकारा अथवा कम होने की प्रणाली बनेगी क्योंकि जागृतिपूर्ण परंपरा में समझ के करो विधि पूर्णतया प्रभावशील रहता है। इसी के साथ समझ में "जीने दो जीयो" वाला सूत्र भी सहज ही चरितार्थ होता है। समझने का मूल स्रोत, पहला स्रोत जिस परिवार में जो शिशु अर्पित रहता है वही परिवार सर्वाधिक जिम्मेदार होता है। इस तथ्य पर हम सुस्पष्ट हो चुके हैं कि हर स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही जागृत मानव प्रतिष्ठा है। यह मौलिक अधिकार में गण्य है। ऐसे जागृत परिवार में अर्पित हर संतान के लिये जागृति सहज **शिक्षा–संस्कार** के लिये हर अभिभावक पर्याप्त होना पाया जाता है। शिशुकाल में आज्ञापालन–अनुसरण विधि हर शिशुओं में प्रभावशील रहता है। यही अपने को अर्पित करने का साक्ष्य है। अर्पित स्थिति में हर सम्बोधन, हर प्रदर्शन, हर प्रकाशन अनुकरण योग्य रहता ही है। इसी अवस्था में जागृति क्रम में संयोजित करना ही **संस्कार–शिक्षा** का तात्पर्य है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:176–179)**

- समितियों में सम्बोधनः–

  गुरू–शिष्य – शिक्षा–संस्कार विधा में **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:183)**

- मानव सहज सभी सम्बन्ध पूर्णता को प्रतिपादित करने के लिये अनुबंधित रहने के कारण ही है। हर सम्बन्धों का पहचान के साथ ही मूल्यों का उद्गमन जीवन सहज रूप में व्यक्त होता है। इसका मूल स्रोत जीवन अक्षय शक्ति, अक्षय बल सम्पन्न रहना ही है। यह भी हम समझ चुके हैं कि जीवन ही शरीर को जीवन्त बनाए रखता है और जीवन अपने आशयों को शरीर के द्वारा मानव परम्परा में, से, के लिये अर्पित करता है। पहला–समझदारी को प्रमाणों के रूप में अर्पित करता है और प्रबोधनों के रूप में अर्पित करता है। प्रबोधन किसी को बोध के लिए अर्पित होता है और प्रमाण स्वतृप्ति और तृप्तिपूर्ण परम्परा के आशय में घटित होती है। यह जीवन जागृति की स्वाभाविक क्रिया है। जागृत मानव ही व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना पाया जाता है। व्यवस्था स्वयं में न्याय, उत्पादन और विनिमय सुलभता ही है। इन्हीं की निरन्तरता के लिये स्वास्थ्य–संयम और **मानवीय शिक्षा–संस्कार** एक अनिवार्य स्थिति है। इस प्रकार व्यवस्था का पाँच आयाम होता है। इन्हीं आयामों में भागीदारी, व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। इस प्रकार हर जागृत मानव (परिवार मानव) सहज रूप में व्यवस्था को प्रमाणित करता है। यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का आधार और अभिव्यक्ति है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:190–191)**
- परिवार सम्बन्ध, मानव सम्बन्ध, समाज सम्बन्ध ये सब आवश्यकतानुसार उपयोग करने का नाम है। ये सबका निर्देशित अर्थ, चिन्हित अर्थ अखण्ड समाज ही है। अखण्ड समाज का पहचान, लक्ष्य, प्रयोजन और प्रणाली, पद्धति, नीतियों के समानता से है। मानव लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व होना ही है। प्रयोजन व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी है। मानवीयतापूर्ण पद्धति न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य–संयम और **शिक्षा–संस्कार** में पूरकता प्रणाली परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था प्रणाली और नीति तन, मन, धन रूपी अर्थ के सुरक्षा हैं, यही मानव का मौलिक अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन है।...**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:194)**

- जागृत परम्परा में मानव ही सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा व परिप्रेक्ष्य सर्व देशकाल में जागृत **शिक्षा** यथा अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन रूपी जीवन ज्ञान सहज परम ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज सह–अस्तित्व रूपी परम दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचण रूपी परम आचरण, ज्ञान–विज्ञान विवेक सम्मत समाधानपूर्ण **शिक्षा–संस्कार** सुलभ होता है। जागृति सहज मानवीयतापूर्ण आचरण और मानव सहज परिभाषा के अनुरूप शास्त्रों का प्रणयन स्वाभाविक रूप में ही है। आवर्तनशील अर्थशास्त्र अपने सह–अस्तित्व सहज सूत्रों के प्रतिपादन सहित व्याख्यायित हुआ है। यह परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन के लिये अपनाया हुआ उत्पादन कार्य में नियोजित श्रम, उत्पादन सहज उपयोगिता के आधार पर उसका मूल्यांकन फलस्वरूप श्रम विनिमय प्रणाली स्थापित होती है। यह समझ के करो विधि से सर्वसुलभ हो जाता है। इसी क्रम में यह व्यवहारवादी समाजशास्त्र भोगोन्मादी समाज शास्त्र के स्थान पर प्रस्तावित किया है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:195–196)**
- माता–पिता :– सम्बन्धों का क्रम पहले सूची में प्रस्तुत किया जा चुका है। उसमें से पहला सम्बन्ध माता–पिता और पुत्र–पुत्री संबंध है। हर शिशु, हर वृद्ध जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में ही होना देखा गया है। शरीर विधा से मानव परंपरा की निरंतरता के लिये एक शरीर रचना वह भी वंशानुगत विधि से सम्पन्न होना पाया जाता है। हर संतान के लिए माता–पिता का सम्बन्ध इसी आधार पर होना पाया जाता है। इसके अनंतर शरीर संरक्षण, पोषण के आधार पर माता–पिता के सम्बन्धों को पहचाना गया है। यह पोषण और संरक्षण रूपी अपेक्षा शिशुकालीन संबोधन में ही निहित रहना पाया जाता है। जैसे ही शिशुकाल से कौमार्य अवस्था शरीर के आयु के अनुसार गणना हो पाता है ऐसी स्थिति में पुत्र–पुत्री के सम्बोधन में भी अपेक्षाएँ आरंभ होते हैं। ये अपेक्षाएं मानवीयतापूर्ण सभ्यता, संस्कृति, भाषा के आधार पर होना पाया जाता है। माता–पिता शिशुकाल में शिशु से कोई अपेक्षा नहीं करते। यह सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है। जैसे ही शिशु काल से यौवन काल आता है, (शरीर के आधार पर ही इस समय को पहचाना जाता है), तब तक माता–पिता की अपेक्षाएँ और बढ़ जाती हैं विशेषकर जीवन जागृति सहज संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के अनुरूप देखना चाहते हैं। यह घटित होना सफलता का द्योतक है। इसी के साथ मानवीय **शिक्षा–संस्कार** जुड़ा ही रहता है। फलस्वरूप हर अभिभावकों से अपेक्षित अपेक्षाएँ सभी संतानों में सफल होने की स्थिति निर्मित हो जाती है। इसका कार्यसूत्र **मानवीय शिक्षा–संस्कार** सुलभ होना और उसका मूल्यांकन, परामर्श, प्रोत्साहन परिवार में हो पाना, मानवीयतापूर्ण परंपरा में सहज हो जाता है। इसका स्वरूप अर्थात् हर विद्यार्थी का स्वरूप **शिक्षा–संस्कार** काल में ही स्वायत्त मानव के रूप में परिणित और परिवार में प्रमाणित हो जाता है। इसलिये परिवार में स्वायत्तता का अनुभव सहज हो जाता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 199–201)**
- **शिक्षा** ही संस्कार रूप में जब प्रतिष्ठित होता है उसी मुहूर्त से जीवन जागृत होना स्वाभाविक होता है। जागृति पूर्ण मानव परिवार का वातावरण पाकर प्रमाणित होने की आवश्यकता–संभावना बलवती होती है। यही समाज गति का मूलसूत्र है।**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 201)**
- भाई–बहन :– भाई–भाई, भाई–बहन, बहन–बहनों के बीच उनके सम्बन्ध और परस्पर परीक्षण कार्यकलाप जागृतिगामी दिशा, व्यवहार और कार्यप्रणाली के साथ गतिशील होता है। यही परस्पर पूरकता विधि को प्रमाणित करता है। इसका स्रोत **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** परंपरा ही है। बाल्यावस्था से ही घर परिवार, शिक्षण संस्थाओं में **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** सुलभ होना सहज रहता ही है। इसके फलस्वरूप प्राप्त शिक्षा–संस्कार और कल्पनाशीलता–कर्म स्वतंत्रता के योगफल में मुखरण होना स्वाभाविक क्रिया है। मुखरण होने का तात्पर्य हर विद्यार्थी अपने–अपने ढंग से प्रकाशित–संप्रेषित होना ही है।

प्रत्येक जीवन, मानव परंपरा में जागृति और जागृतिपूर्ण होने और प्रमाणित होने के उद्देश्य से ही इस शरीर को जीवन्त बनाए रखने, शरीर संवेदना का दृष्टा होने के अर्हता सहित शरीर यात्रा को आरंभ करता है। परंपरा जागृत रहने के आधार पर ही जीवन जागृति पंरपरा बनना सहज संभव है। जागृत परंपरा का स्वरूप पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। पुनश्च यहाँ स्मरण के लिये **अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन** फलत: अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में अनुभव सम्पन्नता के प्रामाणिकता सहित जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में, से, के लिये प्रयोजन और प्रक्रिया विधि से बोधगम्य कराने वाली अध्ययन, अध्यापन, शिक्षण, प्रशिक्षण (पारंगत हुआ को सिखाना, किया हुआ को कराना) विधि से अस्तित्व सहज व्यवस्था रूपी वैभव की अवधारणाओं को स्थापित करना ही **शिक्षा–संस्कार** का प्रधान प्रभाव और परंपरा है। यही सर्वप्रथम मानवकृत वातावरण का महिमा है। यह जागृति का द्योतक है। इस क्रम में हर व्यक्ति सह–अस्तित्व में, से, के लिये आश्वस्त, विश्वस्त होना एक आवश्यकता रहता ही है। इसके आधार पर समग्र अस्तित्व का अवधारणा हर मानव जीवन में स्थापित होता है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं को समझने के क्रम में मैं अपने में क्या हूँ ? कैसा हूँ ? क्या चाहता हूँ ? इस प्रकार के प्रश्न चिन्ह विद्यार्थियों में लुप्त–सुप्त–प्रकट कार्य होना पाया जाता है। इसका उत्तर स्वयं में सह–अस्तित्व सहज अवधारणा के रूप में स्थापित होना पाया जाता है जैसा–

1. मैं मनुष्य हूँ – मैं मनाकार को साकार करने वाला व मन: स्वस्थता का आशावादी व प्रमाणित करने वाला हूँ।
2. मैं ज्ञानावस्था की इकाई हूँ।
3. मैं शरीर व जीवन का संयुक्त साकार रूप हूँ। मानव परंपरा प्रदत्त मेरा शरीर तथा सह– अस्तित्व में परमाणु में विकास फलत: जीवन सहज स्वरूप हूँ।
4. मैं जीवन सहज रूप में जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने का क्रिया कलाप हूँ। शरीर रूप में पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों व उसके क्रियाकलाप का दृष्टा हूँ।
5. मैं मानवत्व सहित व्यवस्था हूँ।
6. मैं बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि सम्पन्न हूँ अथवा सम्पन्न होना चाहता हूँ।
7. मैं जीवन जागृतिपूर्णता और उसकी निरंतरता चाहता हूँ, साथ ही भ्रम, भय व समस्याओं से मुक्त होना चाहता हूँ।

मैं सार्वभौम व्यवस्था व अखण्ड समाज में भागीदार होने का अधिकारी होना चाहता हूँ, स्वानुशासित होना चाहता हूँ एवं प्रत्येक मानव को ऐसा होता हुआ देखना चाहता हूँ।.... **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 204–207)**

- **गुरू–शिष्य सम्बन्ध** – इस सम्बन्ध में सम्बोधन का आशय सुस्पष्ट है। एक समझा हुआ, सीखा हुआ, जीया हुआ का पद है दूसरा समझने, सीखने, करके जीने का इच्छा, प्रवृत्ति जिज्ञासा का प्रस्तुति, ऐसे जिज्ञासु को शिष्य अथवा विद्यार्थी कहा जाता है, नाम रखा जाता है, सम्बोधन भी किया जाता है। दूसरे को गुरू आचार्य नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार गुरू का तात्पर्य प्रामाणिकता पूर्ण व्यक्ति का सम्बोधन। प्रामाणिकता का स्वरूप, समझदारी को समझाने व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में जीते हुए रहते हैं, दिखते हैं। फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण, मानव का परिभाषा हर करनी में, कथनी में व्याख्यायित रहता है। यही गुरू के स्वरूप को पहचानने की विधि है। समझदारी का तात्पर्य सुस्पष्ट हो चुका है जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत रहना। उसका प्रमाण अध्ययन प्रणाली से बोधगम्य करा देना ही समझाने

का तात्पर्य है। मानव सहज जागृति परंपरा में स्वाभाविक ही हर अभिभावक जागृत रहना पाया जाता है। घर, परिवार, बंधु–बान्धवों से भी सम्बोधन पहचान सहित कितने भी भाषा बोलने के लिए सीखाए रहते हैं उन सबमें मानवीयतापूर्ण **शिक्षा–संस्कार** सूत्रों से अनुप्राणित सार्थक विधि रहेगा ही। जब विद्यार्थी विद्यालय में पहुँचने के पहले से ही मानवीयतापूर्ण संस्कारों का बीजारोपण होना स्वाभाविक है। यही जागृत परंपरा का मूल प्रमाण है।

शिक्षा–संस्कार में अथ से इति तक मानव का अध्ययन प्रधान विधि से अध्यापन कार्य सम्पन्न होना सहज है। अध्ययन मनुष्य का, मानव में, से, के लिये ही होना दृढ़ता से स्वीकार रहेगा। प्रत्येक मनुष्य के अध्ययन में शरीर और जीवन का सुस्पष्ट बोध सुलभ होना पाया गया है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन निबद्ध विधि से अध्ययन सुलभ होने के कारण अस्तित्व मूलक मानव का पहचान, मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति समेत पारंगत होने की विधि रहेगी। इसी विधि से हर आचार्य विद्यार्थियों को शिक्षण–**शिक्षा** पूर्वक अध्ययन कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ रहते हैं। जिसमें उनका कर्तव्य और दायित्व प्रभावशील रहना स्वाभाविक है। क्योंकि हर आचार्य **शिक्षा**, शिक्षण, अध्ययन का प्रमाण स्वरूप में स्वयं प्रस्तुत रहते हैं इसलिये यह सार्थक होने की संभावना अथवा निश्चित संभावना समीचीन रहता है।

हर आचार्य स्वायत्तता विधि से परिवार में प्रमाणित रहते ही हैं। यही सर्वमानव का वांछित, आवश्यक और नित्य गति रूप जो अपने–आप में सुख–सुन्दर–समाधान है जिसका फलन समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। जिन प्रमाणों के आधार पर जीवन तृप्ति ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द के नाम से ख्यात है। यही भ्रम–मुक्ति गतिविधि प्रमाण के रूप में हर विद्यार्थी के रूप में समीचीन रहता है। इस प्रकार भ्रम–मुक्त परंपरा का स्वरूप, कार्य, महिमा, प्रयोजन प्रमाण के रूप में रहना ही **शिक्षा–संस्कार** परंपरा का वैभव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में गतिशील रहता है।

प्रत्येक स्वायत्त आचार्य व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी और व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना देखा जाता है। फलस्वरूप हर विद्यार्थी ऐसे सुखद स्वरूप में जीने के लिये प्रवृत्त होना स्वाभाविक है। आदर्श मानव सार्वभौमिकता के अर्थ में स्वायत्त मानव के रूप में ही होना देखा गया। स्वायत्त मानव का **शिक्षा–संस्कार** विधि से प्रमाणित होना और स्वायत्त मानव का प्रमाण परिवार में होना, परिवार मानव का प्रमाण व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो चुका है कि सार्वभौम व्यवस्था का संतुलन अखण्ड समाज रचना से और अखण्ड समाज का संतुलन सार्वभौम व्यवस्था से है। इस विधि से शिक्षण संस्था (अध्ययन केन्द्रों) का स्वरूप अभिभावकों से नियंत्रित रहना और अध्ययन केन्द्र (शिक्षण संस्थाओं) का प्रयोजन कार्यकलाप जागृतिपूर्ण आचार्यों से नियंत्रित रहना देखा गया है। इसका तात्पर्य यही है हर अध्ययन केन्द्र में आचार्यों को व्यवसाय में स्वावलंबी रहने के लिये मानवीय आवश्यकता संबंधी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिये योग्य व्यवस्था बनी रहेगी। उसे सदा–सदा बनाये रखना ही अभिभावकों से नियंत्रित अध्ययन केन्द्रों का स्वरूप है। अध्ययन केन्द्र में स्वाभाविक ही आवश्यकतानुसार भवन, अध्ययन और अध्यापन के लिये आवश्यकीय साधन और आचार्यों को व्यवसाय में स्वालंबन को प्रमाणित करने योग्य कृषि संबंधी, अलंकार संबंधी, गृह निर्माण संबंधी, पशुपालन संबंधी, ईंधन नियंत्रण संबंधी, ईंधन सम्पादन संबंधी, ईंधन नियोजन संबंधी, दूरश्रवण संबंधी, दूरगमन संबंधी और दूरदर्शन संबंधी यंत्र–उपकरणों को निर्मित करने योग्य साधनों को बनाये रखना ही व्यवसाय में स्वालंबन का प्रमाणस्थली के रूप में उपयोगी रहेगा।

अध्यापन कार्य के लिये धन–वस्तु को विद्यार्थियों को शिक्षित, प्रशिक्षित, अध्ययनपूर्ण कराने के लिए एकत्रित की जाएगी। इसे अभिभावक समुदाय तय करेंगे, एकत्रित करेंगे। भवन, प्रयोग सामग्री, साधनों को संजोए रखेंगे। इसका नियंत्रण, परिवर्धन, परिवर्तन, नवीनीकरण आदि कार्यों में स्वतंत्र रहेंगे। आचार्य कुल विद्यार्थियों को परिवार–मानव और व्यवस्था–मानव में प्रमाणित होने योग्य स्वायत्त मानव का स्वरूप प्रदान करेंगे जो स्वयं अपने मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में समर्थ हो जायेगा एवं दूसरों को कराएगा, करने के लिये सम्मति देगा।

अध्ययन संस्थाओं की अभीप्सा, स्वरूप, लक्ष्य, सामान्य क्रिया प्रणाली स्पष्ट हो चुकी है। मानव कुल में समर्पित संतानों को **शिक्षा**–संस्कार की अनिवार्यता होना पहले से स्पष्ट है। इसे सार्थक और सुलभ बनाने के क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को दस सोपानों में स्पष्ट किया जा चुका है। व्यवस्था की निरंतरता में प्रधान आयाम मानवीयतापूर्ण **शिक्षा**–संस्कार, पद्धति, प्रणाली, नीति ही है। शिक्षित हर व्यक्ति स्वायत्त होना सहज है। स्वायत्तता ही शिक्षित और संस्कारित व्यक्ति का प्रमाण है। ऐसी स्वायत्तता सर्वमानव स्वीकृत तथ्य है। इसलिये सार्वभौम नाम प्रदान किये हैं। सार्वभौम का तात्पर्य सर्वमानव स्वीकृत है, स्वीकृति योग्य है। मानवीयतापूर्ण **शिक्षा**–संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव का स्वीकृति परिवार और व्यवस्था में भागीदारी करने के लक्ष्य से स्वीकृत होता ही है। ऐसे सार्वभौम रूप में स्वीकृत मनुष्य ही मौलिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने को समाधानित और वातावरण को समाधानित करने में निष्ठान्वित रहना स्वाभाविक है। उसके लिये दायित्व और कर्तव्यशील रहना स्वाभाविक है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर हर परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व वर्तमान में प्रमाणित होता है। व्यवस्था, परिवार और समाज सदा ही वर्तमान में, से, के लिये अपने त्व सहित वैभवित होना है।

मानवत्व सहित, मानवत्व के लक्ष्य में, स्वायत्त मानव शिक्षापूर्वक स्वरूपित होता है। जिसका प्रमाण परिवार, ग्राम परिवार, विश्व परिवार में भागीदारी के रूप में और परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा और विश्व परिवार सभा में भागीदारी को निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। यही परिवार मूलक स्वराज्य गति का स्वरूप है।

जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज अध्ययन, न्याय, धर्म, सत्य प्रमाणित करने योग्य क्षमता, पात्रता को स्थापित करता है। अस्तित्व दर्शन स्वयं विज्ञान का सम्पूर्ण आधार है। अस्तित्व में ही समग्र व्यवस्था सूत्र और कार्य देखने को मिलता है। यही अस्तित्व दर्शन का जीवन जागृति क्रम में होने वाला उपकार है। विज्ञान का काल, क्रिया, निर्णयों की अविभाज्यता और सार्थकता की दिशावाही होना पाया जाता है। घटनाओं के अवधि के साथ काल को एक इकाई के रूप में स्वीकारने की बात मानव की एक आवश्यकता है। जैसे सूर्योदय से पुर्नसूर्योदय तक एक घटना है। यह घटना निरंतर है। निरंतर घटित होने वाला घटना नाम देने के फलस्वरूप उस घटना से घटना तक निश्चित दूरी धरती तय किया रहता है। इसे हम मानव ने एक दिन नाम दिया। अब इस एक दिन को भाग–विभाग विधि से 60 घड़ी, 24 घंटा आदि नाम से विखंडन किया। मूलत: एक दिन को धरती की गति से पहचानी गई थी, खंड–विखंडन विधि से छोटे–से–छोटे खंड में हम पहुँच जाते हैं और पहुँच गये हैं। फलस्वरूप वर्तमान की अवधि शून्य सी होती गई। धरती की क्रिया यथावत् अनुस्यूत विधि से आवर्तित हो ही रही है। इससे पता लगता है मनुष्य के कल्पनाशीलता क्रम से किया गया विखंडन यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता से भिन्न स्थिति में अथवा भिन्न स्थिति को स्वीकारने के लिये बाध्य करता गया। यह भ्रम, भ्रमित आदमी को और भ्रमित होने के लिये सहायक हो गया। इसका सार तथ्य विखण्डन विधि से किसी तथ्य को पहचानना संभव नहीं है। अथक कल्पनाशीलता मनुष्य के पास, दूसरे नाम से विज्ञानियों के पास हैं ही और कल्पनाशीलता वश ही

विखण्डन प्रवृत्ति के रूप में सत्य का खोज के लिए, जो कुछ भी यांत्रिक, सांकरिक विधि (संकर विधि) प्रयोग किया गया। उन प्रयोगों को काल्पनिक मंजिल मान लिया गया। उस मंजिल को अंतिम सत्य न मानने का प्रतिज्ञा भी करते आया। इन दोनों उपलब्धियों को विखण्डन विधि से पा गये ऐसा विज्ञान का सोचना है। गणित का मूल गति तत्व मनुष्य का कल्पना है। प्रयोजन यंत्र प्रमाण है और उसके लिये विघटन आवश्यक है। यही मान्यताएँ है। जबकि देखने को यह मिलता है कि किसी यंत्र का संरचना अथवा संकरित पौधा, संकरित जीव–जानवर का शरीर संकरित बीज इन क्रियाकलापों को करते हुए विधिवत् संयोजन होना पाया जाता है अथवा किया जाना पाया जाता है।

अध्ययन क्रम में विश्लेषण एक आवश्यकीय भाग है। हर विश्लेषण प्रयोजनों का मंजिल बन जाना ही विश्लेषण का सार्थकता है। सार्थकताओं का प्रमाण स्वयं मनुष्य होने की आवश्यकता सदा–सदा ही बना रहता है। इसका स्रोत अस्तित्व में ही है। मानव का प्रयोजन स्रोत भी सह–अस्तित्व ही है। अस्तित्व में प्रयोजन का स्वरूप व्यवस्था के रूप में वर्तमान है। और विश्लेषण का स्वरूप सह–अस्तित्व के रूप में वर्तमान है। सह–अस्तित्व व्यवस्था के लिये सूत्र है व्यवस्था वर्तमान सहज सूत्र है। वर्तमान में ही मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को व्यवस्था के फलस्वरूप पाता है। मानव इस शुभ प्रयोजन के लिये अपेक्षित, प्रतीक्षित सा रहता ही है। मानव कुल में सर्वमानव का दृष्ट प्रयोजन यही है। यह सह–अस्तित्व विधि से सार्थक होता है। अस्तु विश्लेषण का आधार और सूत्र सह–अस्तित्व विधि ही है। जैसे सह–अस्तित्व विधि से एक परमाणु एक से अधिक परमाणु अंशों से गति और निश्चित चरित्र सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करता है। यह सह–अस्तित्व प्रवृत्ति परमाणु अंशों में ही होना प्रमाणित होता है। क्योंकि परमाणु अंशों की प्रवृत्ति परमाणु गठन का एकमात्र सूत्र होना पाया जाता है। इस प्रकार हर परमाणु अंश व्यवस्था में वर्तमानित रहना उसमें व्यवस्था स्वीकृत होने का द्योतक है। मूलत: सूक्ष्मतम इकाई का स्वरूप परमाणु अंशों के रूप में होना पाया गया। परमाणु अंश स्वयं स्फूर्त विधि से ही परमाणु के रूप में गठित रहना होना अस्तित्व में स्पष्ट है। अतएव व्यवस्था का मूल सूत्र मनुष्य के कल्पना प्रयास के पहले से ही विद्यमान है क्योंकि ऐसी अनंतानंत परमाणुओं के गठन में मनुष्य का कोई योगदान नहीं है। यहाँ इसे उल्लेख करने का तात्पर्य इतना ही है कि जागृत मानव पंरपरा में मानव सही करने, कराने एवं करने के लिये सम्मति देने योग्य होता है। जागृति का प्रमाण गुरू होना पाया जाता है। जागृत होने की जिज्ञासा शिष्य में होना पाया जाता है।

इसके लिये सार्थक विधि, विज्ञान एवं विवेक सम्मत प्रणाली होना है। भाषा के रूप में विज्ञान और विवेक का प्रचलन है ही। किन्तु प्रचलित विज्ञान विधि से चिन्हित सोपान प्रयोजन के लिये स्पष्ट नहीं हुआ। और विवेक विधि से चिन्हित, रहस्य मुक्त प्रयोजन पूर्वावर्ती दोनों विचारधारा से स्पष्ट नहीं हुई। सर्वसंकटकारी घटना का निराकरण हेतु सह–अस्तित्व रूपी अस्तित्व, व्यवस्था रूपी प्रयोजन चिन्हित रूप में सुलभ होता है। यही **शिक्षा–संस्कार** का सारभूत अवधारणा और बोध है।

हर अध्यापन कार्य सम्पन्न करने वाला गुरू अपने में पूर्णतया जागृत रहना, जागृत रहने के प्रमाणों को निरंतर व्यक्त करने योग्य रहना आवश्यक है। यही अध्यापन कार्य सम्पन्न करने योग्य व्यक्ति को पहचानने–मूल्यांकन करने का आधार है। अस्तित्व अपने में चारों अवस्थाओं में वैभवित रहना इसी पृथ्वी पर दृष्टव्य है। यह चारों अवस्था परस्परता में सह–अस्तित्व सूत्र में, से, के लिये सूत्रित है। इसी सूत्र सहज महिमा को परमाणु गठन से रासायनिक–भौतिक रचना और विरचनाओं को विश्लेषण करना ही काल–क्रिया–निर्णय और उसके प्रयोजनों का

स्रोत है। यह काल–क्रिया–निर्णय सहित प्रयोजन संबद्ध होने की आवश्यकता ज्ञानावस्था कि इकाई रूपी मानव का ही प्यास है। यही जिज्ञासा का स्वरूप है। इसी विश्लेषण अवधि में या क्रम में परमाणु में विकास, जीवन, जीवनी क्रम जीवावस्था में, मानव परंपरा में जीवन जागृति क्रम, जागृति, जागृति पूर्णता उसकी निरंतरता की भी पूरकता एवं संक्रमण विधियों का विश्लेषण स्पष्ट हो जाता है। ऐसा जागृत जीवन ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में कर्ता–भोक्ता होना प्रमाणित हो जाता है। फलस्वरूप मानव में व्यवस्था सहज रूप में जीने, समग्र व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता–अर्हता का संयोगपूर्वक उत्साहित होने का, प्रवृत्त होने का, प्रमाणित होने का कार्य सम्पादित होता है। यही जागृति घटना और उसकी निरंतरता ही विवेक और विज्ञान सम्मत प्रणाली, पद्धति, नीति का वैभव है। इसकी आवश्यकता सर्वमानव में है। इसकी आपूर्ति मानवीयतापूर्ण **शिक्षा–संस्कार** विधि से ही सम्पन्न होता है।

जागृति पूर्णता एवं उसकी निरंतरता ही गुरूता का तात्पर्य है। यह जागृतिपूर्णता का धारक वाहकता और उसकी महिमा है। इसी के साथ हर मानव में जीवन सहज रूप में जागृति स्वीकृत रहता ही है। जागृति सहज ही अभिव्यक्ति क्रम में आरूढ़ रहता है। आरूढ़ता का तात्पर्य स्वजागृति के प्रति निष्ठान्वित रहने से है। और स्व–जागृति के प्रति निष्ठा स्वयं के प्रति विश्वास का द्योतक है। स्वयं के प्रति विश्वास मूलत: स्वायत्त मानव में प्रमाणित रहता ही है। स्वायत्त मानव का स्वरूप और मूल्यांकन मानवीयतापूर्ण **शिक्षा–संस्कार** का द्योतक होना पाया जाता है। दूसरे भाषा में प्रमाण होना पाया जाता है। यही सफल, सार्थक, वांछित और अभ्युदयशील **शिक्षा** है। **शिक्षा** का परिभाषा भी इसी के समर्थन में ध्वनित होता है। **शिक्षा** का परिभाषा अपने में शिष्टतापूर्ण दृष्टि का संकेत करता है।

शिष्टता और सुशीलता ये अपेक्षाएँ सर्वमानव में विद्यमान है। शिष्टता का परिभाषा मानव अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में विश्वास और उसकी अभिव्यक्ति है। सुशीलता का तात्पर्य मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य रूप में सभी स्थिति – गतियों में व्यक्त होना ही है। ऐसी शिष्टता हर मानव में, हर मनुष्य से, हर मनुष्य के लिये अपेक्षित रहना पाया जाता है। ऐसी शिष्टता ही सभ्यता का सूत्र है और संस्कृति सहज गति है। इस प्रकार सभ्यता हर स्थिति में मूल्यांकित होता है और संस्कृति हर गति में चिन्हित और मूल्यांकित होता है। इसी महिमावश अथवा फलवश हर मानव, मानव का परिभाषा सहज विधि से सोचने, सोचवाने, बोलने, बोलवाने और करने–कराने योग्य स्वरूप में प्रमाणित हो जाता है। यह शिष्टता, सुशीलता और परिभाषा एक दूसरे के पूरक होना पाया जाता है। यही समाज गति है। समाज गति का ही दूसरा नाम सार्वभौम व्यवस्था है। इस प्रकार परिवार क्रम में शिष्टता, सुशीलता और परिवार व्यवस्था क्रम में मानव का परिभाषा प्रमाणित होता ही रहता है। इससे पूर्णतया स्पष्ट होता है कि व्यवस्था क्रम और परिवार क्रम अविभाज्य वर्तमान है।

शिक्षा–संस्कार का परस्पर पूरकता प्रबोधन पूर्वक शिष्टता, सुशीलता और मानवीय परिभाषा सहज मुखरण विधि को बोधगम्य करा देना **शिक्षा** और उसकी विधि की प्रामाणिकता है। जिसका फलन अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था और उसकी निरंतर गति है। यही सर्वमानव सर्वशुभ सहज विधि से जीने देने का और जीने का सहज गति है। समाधान और सुख के रूप में पहचानना बनता है।

सुख ही मानव धर्म होना पाया जाता है और ख्यात भी है। ख्यात का तात्पर्य सर्वस्वीकृत है। यह समाधानपूर्वक ही सर्वसुलभ होना होता है। समाधान सहज नित्य गति सर्वदेशकाल में सम्पूर्ण दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्यों में और आयामों में जागृति सहज मानव में, मानव से, मानव के लिये दृष्टव्य है। अर्थात् हर जागृत मनुष्य समाधान को देखने योग्य होता ही है। देखने का तात्पर्य समझने से ही है। समाधान का गति रूप सदा–सदा मानव परंपरा में ही नियम और

न्याय सहज तृप्ति बिन्दु के रूप में पहचाना जाता है। नियम अथवा सम्पूर्ण नियम नैसर्गिकता और वातावरण के साथ प्रभावशील रहना पाया जाता है। न्याय मानव सहज संबंध/मूल्यों के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। सम्पूर्ण मूल्यों का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन जीवन जागृति का ही महिमा है। दूसरे भाषा से जीवन तृप्ति का ही महिमा है। जीवन तृप्ति; जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता में ही देखने को मिलता है। यह सर्वमानव का अपेक्षा है। हर परिवार में जागृत अभिभावक जागृति पूर्ण **शिक्षा** संपन्न युवा पीढ़ी में सामरस्यता अपने–आप परिवार मानव सहज विधि से प्रमाणित होता है। ऐसे सफल परिवार का पहचान, मूल्यांकन सहित गतित रहना ही मानव परंपरा की आवश्यकता, गरिमा, महिमा सहित प्रतिष्ठा है। जागृति पूर्ण मानव ही गुरू पद में वैभवित होना स्वाभाविक है। जागृति पूर्ण परंपरा में ही हर मनुष्य संतान में जागृत पद प्रतिष्ठा को स्थापित करना सहज है। इस विधि से जागृति परंपरा के अर्थ में शिक्षा–संस्कार सार्थक होना पाया जाता है जिसकी अपेक्षा भी सर्वमानव में होना भी सहज है। शिक्षा–संस्कार, उसकी सफलता का मूल्यांकन स्वायत्त मानव, परिवार मानव के रूप में **शिक्षा** अवधि में ही मूल्यांकित हो जाता है। मूल्यांकन का आधार भी यही दो मापदण्ड है। **(अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर : 212–224)**

- **शिक्षा–संस्कार** सम्पन्न होने के उपरान्त हर व्यक्ति को स्वायत्त और परिवार मानव के रूप में पहचानना स्वाभाविक होता है। परिवार मानव के रूप में ही हर सम्बन्धों का निर्वाह होना, प्रमाणित होना और प्रयोजित होना मूल्यांकित होता है। इसी आधार पर मौलिक अधिकारों को कार्य, व्यवहार, आचरण रूप में प्रमाणित करना ही परिवार मानव सहज सार्थकता है। परिवार मानव संबंधों में, से एक विवाह सम्बन्ध एक पत्नी, एक पति संबंध है। परिवार मानव का कार्य रूप अपने आप में व्यवस्था में जीना ही है। दूसरी भाषा में मानवीयतापूर्ण परिवार में ही व्यवस्था का प्रमाण सदा–सदा के लिये वर्तमानित रहता है। यही जागृत मानव परंपरा का भी साक्ष्य है। परम्परा में प्रधान आयाम परिवार और व्यवस्था का नित्य प्रेरणा स्रोत **शिक्षा–संस्कार** ही होना पाया जाता है। अतएव स्रोत और प्रमाण के संयुक्त रूप में ही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र प्रतिपादित होता है। निष्कर्ष यही है परिवार में ही समाज सूत्र और व्यवस्था सूत्र कार्य, व्यवहार, आचरण रूप में प्रमाणित होना ही मानव परंपरा का वैभव है। यही मानवीयता पूर्ण परिवार का तात्पर्य है। इसी में समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व का प्रमाण प्रसवित होता है। इस क्रम में हर परिवार में समाधान और समृद्धि का दायित्व, कर्तव्य, आवश्यकता और प्रयोजन परिवार के सभी सदस्यों में स्वीकृत होना और प्रभावशील रहना ही अथवा प्रमाणित रहना ही परिवार की महिमा और गरिमा है। मानवीयता पूर्ण परिवार का अपने परिभाषा में भी यही तथ्य इंगित होता है जैसा परिवार में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर सदस्य एक दूसरे के संबंधों को पहचानते हैं; मूल्यों का निर्वाह करते हैं और मूल्यांकन करते हैं। फलस्वरूप उभयतृप्ति एक दूसरे के साथ विश्वास के रूप में जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। यही परिवार सहज गतिविधि का प्रधान आयाम है। इसी के साथ दूसरा आयाम परिवार में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर सदस्य परिवार गत उत्पादन–कार्य में भागीदारी का निर्वाह करते हैं। फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना पाया जाता है। जिससे समृद्धि का स्वरूप सदा–सदा परिवार में बना ही रहता है। इसीलिये परिवार और ग्राम परिवार, परिवार समूह और परिवार के रूप में जीने की कला अपने आप में प्रसवित होती है। समृद्धि के साथ समाधान, सम्बन्धों, मूल्य, मूल्यांकन के आधार पर बनी ही रहती है। समाधान और समृद्धि सूत्र परिवार में विश्वास के रूप में प्रमाणित होता ही है। इसी

आधार पर विशालता की ओर विश्वास के फैलाव की आवश्यकता निर्मित होता है। यही सह–अस्तित्व के लिये सूत्र है। इस प्रकार से परिवार और व्यवस्था का दूसरे भाषा में परिवार मूलक विधि से व्यवस्था का संप्रेषणा, प्रकाशन सर्वसुलभ हो जाता है। ऐसी सर्वसुलभता **मानवीय शिक्षा–संस्कार** स्वरूप से ही हो पाता है। यही शुभ, सुंदर, समाधानपूर्ण परिवार विधि है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 226–228)**

- मानव सहज जागृति प्रभाव विशालता की ओर गतिशील होना स्वाभाविक है। जैसा **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** एक परिवार में परिवार का विरासत न होकर सम्पूर्ण विश्व मानव का स्वत्व होना पाया जाता है। इसीलिये **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** सार्वभौम होना सहज है। इसी प्रकार न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य, विनिमय–कोष, स्वास्थ्य–संयम क्रियाकलाप भी सार्वभौम होता ही है। इन पाँचों आयाम का सार्वभौम रूप में वर्तमान होना ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का द्योतक है। दाम्पत्य संबंध ऐसी व्यवस्था में भागीदारी का संकल्पोत्सव होना पाया जाता है, ऐसे संकल्प का प्रमाण समाधान और समृद्धि का स्वरूप ही है। यही परिवार मानव का लक्ष्य और आवश्यकता है।**(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 229–230)**
- .....व्यवस्था के आयामों में विनिमय एक आयाम है। व्यवस्था रूप में ही संपूर्ण आयाम सहित परंपरा स्पष्ट होती है यथा **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** परंपरा अन्य सभी चार आयामों के लिये स्त्रोत और संतुलन सूत्र होना पाया जाता है। प्रत्येक आयाम में मानव अपने संतुलन पूर्वक कार्य–व्यवहार करने के क्रम में हर सूत्र व्याख्यायित हो जाता है। यथा **मानवीय शिक्षा–संस्कार** में ये देखने को मिलता है कि यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता रूप में समझा हुआ को संस्कारों के रूप में; किया हुआ को प्रमाणों के रूप में दूसरी भाषा में जिया हुआ को अथवा जीने की विधि को प्रमाण के रूप में देखा जाता है। समझने का जो कार्यक्रम है जिसमें समझाने वाली क्रिया समाहित रहती हैं यही संस्कार का कारण है यह अध्ययन पूर्वक सम्पन्न होना पाया जाता है।

  शिक्षा–संस्कार ही परस्परता में संतुलन विधि से प्रमाणों का सूत्र और जीने की विधि में उसका व्याख्या स्वाभाविक रूप में संपन्न होता है। यही **शिक्षा–शिक्षण** और संस्कार में संतुलन का तात्पर्य है अर्थात् हर व्यक्ति में समझा हुआ सभी समझदारी जीने की कला में प्रमाणित होता है। समझदारी का संपूर्ण स्वरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का होना पाया जाता है।....**(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 234–235)**

- तन, मन, धन हर मानव में प्रमाणित वैभव सहज तथ्य है। हर जागृत मानव, जागृत परिवार मानव सहज रूप में अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा करने में समर्थ रहता ही है यह समर्थता ही मौलिक अधिकार के रूप में ज्ञात होता है। संपूर्ण मौलिक अधिकार जागृति के सहित प्रमाण के रूप में देखने को मिलता है। ऐसी जागृति **शिक्षा–संस्कार** विधि से ही सम्पन्न होना स्पष्ट है।... **(अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर : 236)**
- दृष्टा पद का प्रमाण ही है जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना; यह हर मानव में स्वीकृत है, अपेक्षित है। यह जागृति पूर्वक सफल होता है। अतएव मनुष्य दृष्टा पद जागृति प्रतिष्ठावश ही निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण कार्य संपन्न करता है। फलस्वरूप मानवत्व सहित जीने का प्रमाण वर्तमानित होता है। इसी क्रम में तन, मन, धन का सदुपयोग–सुरक्षा स्वाभाविक कार्य होने के कारण सदुपयोग विधि से सुरक्षा प्रमाणित होता है; और सुरक्षा–विधि से सदुपयोग प्रमाणित होता है। यही न्याय–सुरक्षा का, संतुलन का तात्पर्य है। सदुपयोग और सुरक्षा करने की संपूर्ण

संभावना, मानव परंपरा में प्राकृतिक ऐश्वर्य के रूप में देखने को मिलता है। प्राकृतिक ऐश्वर्य नैसर्गिकता के रूप में समीचीन है। मानव परंपरा संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के रूप में समीचीन है। संस्कृति क्रम में **शिक्षा–संस्कार** ही प्रधान मुद्दा है और सभ्यता में इसी **शिक्षा–संस्कार** का प्रमाणपूर्वक पोषण विधि प्रमाणित होता है; यह एक आचरण का ही स्वरूप है। इसी के साथ नैसर्गिकता समीचीनता अपने–आप में ऋतु–संतुलन के रूप में वर्तमानित रहना ही उसकी सार्थकता है और मानव के लिये अपरिहार्यता है। इसे सुरक्षित रखना मानव का मौलिक अधिकार है। इस प्रकार मानवीयतापूर्ण पद्धति, सभ्यता रूपी मानवीय आचरण ही मौलिक अधिकारों के रूप में विभिन्न आयामों में विभिन्न सार्थक अर्थों में प्रायोजित होना पाया जाता है। इस प्रकार अर्थ का सदुपयोग ही सुरक्षा को प्रमाणित करता है। यही संतुलन का तात्पर्य है। ऐसी न्याय–सुरक्षा क्रम में उत्पादन–कार्य एक आयाम है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:237–238)**

- परिवार में स्वायत्त मानव का ही भागीदारी होना जागृत परम्परा सहज गतिविधि है। इसका संपूर्ण गति व्यवस्था सहज पाँचों आयामों में होना पाया जाता है। परिवार मानव ही व्यवस्था और समाज का बीज रूप होना देखा गया। स्वायत्त मानव जागृति पूर्ण परंपरा सहज **शिक्षा–संस्कार** का फलन के रूप में होना देखा गया। स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाण है। परिवार मानव ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का बीजरूप है यही मुख्य बिन्दु है।... **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 241)**
- "मानव बहुआयामी अभिव्यक्ति है।" मानव सहज परंपरा में अनुसंधान, अस्तित्व मूलक मानवीयतापूर्ण अध्ययन, **शिक्षा** व संस्कार, आचरण व व्यवहार, व्यवस्था, संस्कृति–सभ्यता और संविधान ही सहज प्रमाण है। यही मौलिक विधान है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:250)**
- शारीरिक स्वस्थता और जीवन स्वस्थता का स्वरूप मानव में ही अपेक्षित है। अर्थात् मानव परंपरा में अपेक्षित है। यह पीढ़ी से पीढ़ी में अपेक्षा का आधार है। इसी नियति सहज सह–अस्तित्व सहज आधारवश ही मानव अपने संचेतना को प्रमाणित करने के लिये तत्पर है। इसकी सार्थकता का स्वरूप प्रदान करने का कार्य **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार परंपरा** ही आहूत करेगा। आहूतता का तात्पर्य मानवीयता सहज अपेक्षा के अनुरूप अवधारणाओं को पीढ़ी से पीढ़ी में स्थापित करने का क्रिया कलाप। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 256–257)**
- जागृति सहज कार्यक्रम दायित्व और कर्तव्य के आधार पर ही सुयोजित हो पाता है। ऐसे सुयोजन परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में सर्वसुलभ होता है। जागृति पूर्वक जीने की कला ही सुयोजना का साक्ष्य है। परिवार मूलक स्वराज्य–व्यवस्था में व्यवस्थापूर्वक ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न होना पाया जाता है। इसी सत्यवश, यही सत्यता मानव परंपरा में सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होता है; जिसका अक्षुण्णता सहज होना पाया जाता है। मानव का अभीष्ट सदा–सदा से ही और सदा–सदा के लिये शुभ ही शुभ होना देखा गया है। ऐसा सार्वभौम शुभ अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था रूपी कार्यक्रम ही है। ऐसा कार्यक्रम स्वाभाविक रूप में ही जागृति सहज **शिक्षा–संस्कार** विधि से स्पष्ट हो जाती है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** अपने–आप में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन, मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद) के रूप में स्पष्ट हो जाता है। यही सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सम्पन्नता सहित होने वाले अध्ययन, अवधारणा, अनुभव है। सह–अस्तित्व में अनुभव के आधार पर ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण मानव परंपरा में ही प्रमाणित होना समीचीन है। यही जागृति का द्योतक है। मानवीयतापूर्ण परंपरा का प्रमाण **मानवीय शिक्षा–संस्कार** सुलभता, न्याय–सुरक्षा सुलभता, विनिमय–कोष

सुलभता, उत्पादन–कार्य सुलभता और स्वास्थ्य–संयम सुलभता ही है। इन्हीं पाँच आयामों के योगफल में संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था अपने–आप प्रमाणित होता है और अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप और उसकी निरंतरता बना ही रहता है। ऐसे भागीदारी में दायित्व, कर्तव्य का प्रमाण हर मानव में, से, के लिए सहज सुलभ होता है। **(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 263–264)**

- मानव परंपरा अपने में बहुआयामी अभिव्यक्ति होना सुदूर विगत से अभी तक और अभी से सुदूर आगत तक होना दिखाई पड़ता है। मानव परंपरा में **शिक्षा–संस्कारादि** पाँचो आयाम सहित ही स्वस्थ परंपरा होना स्पष्ट हो चुकी है। इन्हीं पाँचों आयामों में हर व्यक्ति कार्यरत होना ही बहुआयामी अभिव्यक्ति का तात्पर्य है। इसी क्रम में विभिन्न दृष्टिकोणों, निश्चित दिशाओं और हर देशकाल में प्रमाणित होने योग्य इकाई मानव है अर्थात् सभी आयामों में प्रमाणित होने योग्य इकाई मानव है। ऐसे प्रमाणित होने के क्रम में मौलिक रूप में अधिकार स्वत्व स्वतंत्रता पूर्वक अर्थात् स्वयं स्फूर्त विधि से प्रयोग करना स्वाभाविक रहता ही है। साथ ही जागृति व जागृतिपूर्ण परंपरा में ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होता है। **(अध्याय : 8, पृष्ठ नंबर : 265)**
- सम्बन्ध का तात्पर्य स्वयं में पूर्णता सहित हर मानव में पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना स्वाभाविक है। यह मानव में ही प्रमाणित होने वाला मौलिक अभिव्यक्ति है। यही ज्ञानावस्था का परिचायक है। इसी के साथ मानव को, इसकी अपेक्षा, आवश्यकता नियति सहज विधि से देखने को मिलता है। अर्थात् मनुष्य संबंध के अनुरूप प्रयोजनों को प्रमाणित करने में निष्ठा स्वयं स्फूर्त होता है। अपेक्षाओं के अनुसार सार्थक होना, चरितार्थ होना ही सम्बन्धों का सम्पूर्ण प्रयोजन है। प्रयोजनों का सूत्र अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, परिवार मानव और स्वायत्त मानव रूप में ही मानव परंपरा में देखने को मिलता है। यही प्रयोजनों का मूल रूप है। इसे ज्ञानावस्था का स्वरूप भी कहा जा सकता है। जागृत मानव परंपरा में यह सार्थकता का स्वरूप **शिक्षा–संस्कारपूर्वक** परंपरा में स्थापित होता ही रहेगा। **जागृत शिक्षा–संस्कार** के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है। जागृतिपूर्ण परंपरा अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व विधि से अनुप्राणित रहने के आधार पर ही जागृत मानव परंपरा का अक्षुण्णता समीचीन रहना पाया जाता है। अतएव सम्पूर्ण सम्बन्ध और उसका सम्बोधन निश्चित प्रयोजन के अर्थ में अपेक्षित रहना ही सम्बोधन का तात्पर्य है। इसमें हर व्यक्ति जागृत रहना यह प्राथमिक दायित्व है। इन्हीं दायित्वों, मौलिक अधिकारों का प्रयोजन सहज ही सफल हो पाता है। फलस्वरूप मानव परंपरा में जीने की कला विधि के रूप में प्रमाणित होता है। विधि का प्रमाण स्वयं सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति, मानव परिभाषा के अनुरूप हर मनुष्य अपने मौलिक अधिकार रूपी स्वतंत्रता का प्रयोग करना, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा करना और स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार में निष्ठान्वित रहना विधि है। यही सम्पूर्ण उत्सवों का आधार होना पाया जाता है। **(अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर : 270–271)**

- अखण्ड समाज विधि में होने वाले उत्सवों को संस्कारोत्सवों के रूप में पहचाना जाता है। इन सभी संस्कारों में जीवन जागृति ही परम लक्ष्य होना पाया जाता है। संस्कारों का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन क्रम में ही उत्सवानुभूति होना, उसकी सार्थकता का होना देखा गया है। इस क्रम में जन्म संस्कारोत्सव, जन्मदिनोत्सव, नामकरणोत्सव, **शिक्षा–संस्कारोत्सव** (धर्म–कर्म, दीक्षा–व्यवहार, उत्पादन संस्कार), विवाहोत्सव मुख्य हैं।

नैसर्गिक उत्सव ऋतुकाल के अनुसार मनाने की व्यवस्था है। क्योंकि सम्पूर्ण वनस्पति संसार भी ऋतुकाल के अनुसार उत्सवित होने के स्वरूप में देखा जाता है। यह सर्वविदित तथ्य है। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 273–271)**

- जन्म संस्कार उत्सव/जन्मोत्सव – मानव परंपरा में हर माता–पिता संतान प्राप्ति के साथ अपने में गौरव और सम्मान का अनुभव करना और होना पाया जाता है। इसी सम्मान और गौरव के समर्थन में उत्सव का स्वरूप बनता है। उत्सव में उत्साह और प्रसन्नता मूल स्रोत है। किसी उद्देश्य, किसी प्रयोजन, किसी वस्तु प्राप्ति के अर्थ में ही उत्साह–प्रसन्नता का प्रमाण मानव कुल में सफलता के अर्थ को प्रतिपादित करता है। जैसे–एक पति–पत्नी की कोख से संतान प्राप्ति अपने–आप में शरीर–सम्बन्ध का फलन के रूप में होना देखा गया है। हर मनुष्य शरीर और जीव शरीरों की रचना गर्भाशय में ही होना देखा गया है। अत्याधुनिक संसार में भी इसके लिये कई कृत्रिम उपायों को खोजा गया है। सफलता अभी भी विचाराधीन है। कृत्रिम विधि यदि सफल भी होता है तो इसकी सफलता में भी गर्भाशय सहज सटीक वातावरण को कृत्रिम रूप में निर्मित करने के उपरान्त ही सफल होने की व्यवस्था है।

  ऐसे कृत्रिम गर्भाशय संरचना वातावरण संबंधी कृत्यों को समान करने के लिये जितना श्रम, जितना वस्तु, जितना समय लगता है, लग सकता है वह सर्वाधिक निरर्थकता अपव्यय के खाते में जायेगा। अस्तित्व में यही सिद्धान्त है जो जिसको अपव्यय करेगा उससे वह वंचित हो जायेगा। कृत्रिम गर्भाशय निर्माण विधि स्वयं अपव्ययता के आधार पर ही मानव मन में कल्पित हो पाता है। इस अपव्ययता क्रम में स्वाभाविक सार्थक नियति सहज विधि से रचित शरीर रचना के अंगभूत गर्भाशय की आवश्यकता, विशेषकर मानव शरीर में गर्भाशय की आवश्यकता एवं तत्संबंधी उत्सव से मनुष्य वंचित होना भावी हो जाता है। इससे यह पता लगता है कि इस मुद्दे पर कृत्रिम उपायों की निरर्थकता का हर सामान्य मनुष्य स्वीकार कर सकता है। अतएव प्रकृति सहज स्त्री–पुरूष शरीर रचना उसका सम्पूर्ण अंग–अवयवों का उपयोग–सदुपयोग–प्रयोजनीयता क्रम में शरीर स्वस्थता और जीवन स्वस्थता रूपी संयमता के संयोगपूर्वक ही विधि–विहित कार्यकलापों में प्रवृत्त होना पाया जाता है। यह जीवन जागृति पूर्वक ही सफल होना देखा गया है। ऐसा जीवन जागृति **मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार परंपरा** पूर्वक सर्व सुलभ होने के तथ्य स्पष्ट हो चुका है।...**(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 274–275)**

- **शिक्षा–संस्कार व्यवस्था** :–बनाम मानव जाति, धर्म, कर्म, व्यवहार, दीक्षा, संस्कार – हर मानव में, से, के लिये और मानव परंपरा में, से, के लिये एक अनिवार्य अध्ययन, अवधारणा, अनुभव प्रमाण है। इसी क्रम में मानव परंपरा अपने संपूर्ण वैभव को स्वायत्त मानव, परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना सहज है। फलस्वरूप अखण्ड समाज में भागीदारी पूर्वक समाज मानव और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारीपूर्वक व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना शिक्षा–संस्कार का सार्थक प्रयोजन है।

  शिक्षा–संस्कार का आधार रूप अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन, मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववादी विधि) से सम्पन्न होना देखा गया है। यही परम जागृति का द्योतक है। यही जागृत मानव परंपरा की आवश्यकता है। मध्यस्थ दर्शन का तात्पर्य मध्यस्थ जीवन, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ सत्ता सहज विधि से अध्ययन कार्य को सह–अस्तित्व सूत्र में पूर्णतया सजा लिया गया। यही **शिक्षा** का महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मध्यस्थ जीवन का स्वरूप नियम, न्याय, धर्म, सत्य पूर्ण विधियों से जीने की कला ही है। यही परिवार मूलक स्वराज्य के रूप में

स्वतंत्रता और स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होना देखा गया है। यही मध्यस्थ जीवन का वैभव है। ऐसा स्वराज्य और स्वतंत्रता हर मनुष्य में, से, के लिये एक चाहत होता ही है। जैसे :– हर मानव संतान को जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य–व्यवहार का इच्छुक, सत्य वक्ता होने के रूप में देखा गया है। इन्हीं आशयों की पूर्ति के लिये नियम, न्याय, सर्वतोमुखी समाधान, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज तथ्यों को अवधारणा में स्थापित कर लेना ही मानवीयतापूर्ण **शिक्षा** का स्वरूप और कार्य है। इस कार्य विधि के अनुसार मानव परंपरा अपने जागृति को प्रमाणित करता है। यही जागृत मानव परंपरा का तात्पर्य है।

मध्यस्थ सत्ता अपने आप में व्यापक रूप में विद्यमान है। इसे हर दो वस्तुओं के बीच में रिक्त स्थली के रूप में देख सकते हैं। इसी रिक्त स्थली का नाम मध्यस्थ सत्ता है। क्योंकि इसी में सम्पूर्ण प्रकृति भीगा, डूबा, घिरा हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसी सत्ता हर एक में पारगामी होना और हर परस्परता में पारदर्शी होना देखने को मिलता है। यही मध्यस्थ सत्ता है। इसी सत्ता में संपृक्त मानव, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में विद्यमान है। सम्पूर्ण प्रकृति संपृक्त है ही। मानव अपने में मध्यस्थ सत्ता में संपृक्तता को अनुभव करने का अवसर समान रूप में होना पाया जाता है।

मध्यस्थ जीवन अस्तित्व में दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहज विधि में अपने में विश्वास करना, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन पूर्वक हर मानव में प्रमाणित करना समीचीन है। इसी आधार पर मानव अपने मौलिक अधिकार संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता में संतुलन को पाकर नित्य समाधान सम्पन्न होने का अवसर नित्य समीचीन है। यही जागृत परंपरा है। फलस्वरूप मध्यस्थ जीवन प्रमाणित होता है।

सर्वतोमुखी समाधान स्वयं न तो अधिक होता है न कम होता है। अधिक कम होने के आरोप ही सम–विषम कहलाता है। अस्तित्व स्वयं कम और ज्यादा से मुक्त है इसीलिये अस्तित्व स्वयं मध्यस्थ रूप में होना पाया जाता है। यही सह–अस्तित्व का स्वरूप है। सह–अस्तित्व स्वयं समाधान सूत्र, व्याख्या और प्रयोजन है। मानव अस्तित्व में अविभाज्य है। मानव जागृति पूर्वक ही समाधान सम्पन्न होने की व्यवस्था है और हर मनुष्य स्वयं भी समाधान को वरता है। इसीलिये अस्तित्व सहज अपेक्षाएँ सब विधि होना पाया जाता है। सम–विषमात्मक आवेश सदा ही समस्या का स्वरूप होना पाया जाता है। मानव सदा–सदा ही जागृति और समाधान को वरता है। समाधान संदर्भ मध्यस्थ है। नियम और न्याय के संतुलन में समाधान नित्य प्रसवशील है। यही जागृति का आधार है। यही उत्सव का सूत्र है। उत्सव की परिभाषा पहले से की जा चुकी है। शिक्षा–संस्कार का शुरूआत जब कभी भी आरंभ होता है जिस तिथि में होता है शिक्षा–संस्कार के आरंभोत्सव के रूप में अनुभव के रूप में सम्मान करना एक आवश्यकता है क्योंकि हर मानव संतान अभिभावकों और सुहृदयों के अपेक्षा के अनुरूप जागृत होना एक आवश्यकता है। जागृत परंपरा में हर मानव संतान का अभिभावक, सुहृदय बन्धुओं का जागृत रहना स्वाभाविक है। इसी आधार पर जागृत मानव संतान में जागृति की अपेक्षा होना एक स्वाभाविक, नैसर्गिक तथ्य है। अस्तु, जागृति सहज अपेक्षाएँ अग्रिम पीढ़ी में संस्कार का आधार होना भी स्वाभाविक है। इसी के आधार पर जिस दिन से **शिक्षा** का आरंभ होता है उस दिन सभी बंधु–बांधव मिलकर विधिवत जागृति की अपेक्षा संबंधी चर्चा, परिचर्चा, गोष्ठी, गायन आदि विधियों से सम्पन्न करना जागृति क्रम संस्कार के लिये अपेक्षित है।

जिस समय में शिक्षा–संस्कार सम्पन्न हो जाते हैं उस समय में जागृति का प्रमाण सभा, उत्सव सभा के बीच हर पारंगत नर–नारी अपने को स्वायत्त मानव के रूप में सत्यापित करने, परिवार मानव के रूप में कर्तव्य और दायित्वशील होने और अखण्ड समाज–सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में अपने निष्ठा को सत्यापित करने के रूप में उत्सव समारोह को सम्पन्न किया रहना मानव परंपरा में एक आवश्यकता है।

जाति सम्बन्धी मुद्दे पर मानव जाति की अखण्डता को पूर्णतया स्वीकारा हुआ मानसिकता जिसके आधार पर सम्पूर्ण सूत्रों का प्रतिपादन करना हर स्नातक के लिये एक आवश्यकता और परंपरा के लिये एक अनिवार्यता बना ही रहेगा। इस उत्सव में ज्यादा से ज्यादा पहले से पारंगत और प्रौढ़ लोग मूल्यांकित करने के रूप में उत्सव का पहल बनाए रखने की एक आवश्यकता इसलिये है कि हर स्नातक अपने उत्साह का पुष्टि विशाल और विशालतम रूप में प्रमाणित होने की प्रवृत्ति उद्गमित होना देखा गया है।

धर्म और दीक्षा संस्कार को जागृति पूर्णता, स्वानुशासन, प्रामाणिकता के रूप में प्रतिपादित करना हर स्नातक व्यक्ति का अपने ही उद्देश्य और मूल्यांकन के विधि से एक आवश्यकता बना ही रहता है। जिसके आधार पर प्रौढ़ और बुजुर्ग लोग समय–समय पर आवश्यकतानुसार मूल्यांकन कर सके और तृप्ति पा सके। उत्सव कार्य में एक आवश्यकता यह बना ही रहता है।

कर्म और व्यवहार संस्कार का सत्यापन हर मनुष्य अपने स्वायत्तता में निष्ठा के रूप में सत्यापित करना स्वाभाविक कार्य है। अतएव इसे व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन के रूप में ही पहचाना जाता है। जिसका सत्यापन हर स्वायत्त मानव (नर–नारी) करता है। यह उत्सव का स्वरूप में एक अंग बनके रहना आवश्यक है। ऐसी शिक्षा–संस्कार सम्पन्नता का उत्सव हर ग्राम में हर वर्ष सम्पन्न होना स्वाभाविक है आवश्यकता भी है क्योंकि अग्रिम पीढ़ी के लिये यह उत्सव प्रेरणा स्रोत बनकर ही रहता है। संस्कार मर्यादा बोध कराने वाला पारंगत आचार्य ही रहेंगे।

स्नातक अवधि में पहुँचा हुआ सभी गाँव के स्नातकों का संयुक्त उत्सव सभा सम्पन्न होना भी आवश्यकता है। यह शिक्षण संस्था में ही समारोह रूप में सम्पन्न होना सहज है। इस उत्सव का प्रयोजन परस्पर स्नातकों का सत्यापन, श्रवण, साथ में अध्ययन अवधि में बिताये गये दिनों की स्मृति के साथ मूल्यांकित करने का शुभ अवसर समीचीन रहता है। इस अवसर के आधार पर हर एक स्नातक को अन्य स्नातक सत्यापन के आधार पर प्रामाणिकता को मूल्यांकित करने का अवसर बना रहता है। इस अवसर का सटीक प्रस्तुति और सदुपयोग उत्सव के स्वरूप में वैभवित होना स्वाभाविक है। इन्हीं के साथ इनके सभी आचार्यों का मूल्यांकन और आशीष, आशीष का तात्पर्य स्नातक में जो स्वायत्तता स्थापित हुई है वह नित्य फलवती होने स्वायत्त मानव, समाज मानव, व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होने के आशयों को व्यक्त करने के रूप में उत्सव अपने आप में शुभ, सुन्दर, समाधानपूर्ण होना देखा जाता है। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 279–284)**

- **शिक्षा–संस्कार का मूल्यांकन** :– शिक्षा–संस्कार क्रम में स्वायत्त मानव लक्ष्य के अर्थ में, जो जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान मूलक विवेक और विज्ञान विधि सहित मानवीयता पूर्ण आचरण के अर्थ में **शिक्षा** कार्य सम्पन्न हुआ रहता है उससे विद्यार्थी अपना मूल्यांकन करेंगे। हर कक्षा में विद्यार्थी अपना मूल्यांकन स्वयं करने की परंपरा होगी। इस मूल्यांकन विधि में हर विद्यार्थी स्व निरीक्षण पूर्वक ही मूल्यांकन करना हो पाता है। इसमें किताबों की संख्या गणना गौण हो जाता है। वस्तु के रूप में कहाँ तक जानना, मानना, पहचानना परिपूर्ण हो चुका है, इसके पहले परिपूर्णता की ओर जितने भी सीढ़ियाँ कक्षावार विधि से बनी रहती है उसके अनुसार किस सीढ़ी तक जानना, मानना, पहचानना संभव हो चुका रहता है, निर्वाह करने में जिन–जिन विधाओं में, सम्बन्धों में पारंगत हुए रहते हैं इसका सत्यापन करना ही मूल्यांकन प्रणाली रहेगी।

  संस्कारों के संबंध में जाति, धर्म, कर्म, दीक्षा, विधा भी स्व–निरीक्षण पूर्वक ही विद्यार्थी अपने में, से मूल्यांकित करने की व्यवस्था बना रहेगा। जब सभी विद्यार्थी अपना–अपना मूल्यांकन लेखिक–अलेखिक विधियों से प्रस्तुत करते हैं। यह परस्पर अवगाहन करने का एक संगीतमय स्थिति बन ही जाती है। इससे परस्पर प्रेरकता और पूरकता दोनों संभव हो जाता है फलस्वरूप धारकता–वाहकता में सुगमता निर्मित होना पाया जाता है। **शिक्षा** का सम्पूर्ण सार्थकता स्वायत्त मानव के रूप में प्रमाणित होना ही है। परिवार मानव के रूप में संकल्पित होना और प्रमाणित होना ही है। हर शिक्षा, शिक्षण शाला–मंदिर संस्थाएँ अपने–आप में एक परिवार होना स्वाभाविक है। परिवार के अंगभूत रूप में ही **शिक्षा** कार्य सम्पादित होना ही स्वाभाविक है। इसीलिये हर शिक्षण संस्था में परिवार मानव रूप में प्रमाणित होना सभी विद्यार्थियों के लिये सहज है। इस प्रकार स्वायत्त मानव और परिवार मानव का प्रमाण और उसका मूल्यांकन स्वाभाविक रूप में जीवंत होना पाया जाता है।

  मनुष्य का सम्पूर्ण वर्चस्व स्वायत्त मानव और परिवार मानव के रूप में मूल्यांकित हो जाता है। जो मानवीयतापूर्ण आचरण का ही प्रमाण है। दूसरा समझे हुए को समझाने की विधि में अर्थात् जीवन–ज्ञान, अस्तित्व दर्शन को विवेक, विज्ञान, व्यवहार सूत्रों सहित समझाने की विधि से, समझा हुआ प्रमाणित होता है। इस प्रकार हर विद्यार्थी अपने में समझा हुआ को समझाकर प्रमाणित होने की व्यवस्था मानवीय शिक्षा–संस्कारों में सर्वसुलभ होता है। एक विद्यार्थी दूसरे को समझाने के उपरान्त समझाया हुआ को स्वयं ही मूल्यांकित करेगा। फलस्वरूप सभी विद्यार्थियों में पारंगत विधि होना स्पष्ट हो पाता है। तीसरे में किया हुआ को कराने की विधि से भी हर विद्यार्थी प्रमाणित होना उसका मूल्यांकन स्वयं करना मानवीय **शिक्षा** संस्थान में सहज रूप में रहता ही है। इसका मूलभूत स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में कार्य–व्यवहार करता हुआ शिक्षक, आचार्य, विद्वान ही **शिक्षा** सहज वस्तु प्रक्रिया, प्रणाली, पद्धति, नीति का धारक–वाहक होना पाया जाता है। इसकी अक्षुण्णता बना ही रहता है। इस प्रकार **शिक्षा** का धारक–वाहक रूपी आचार्यों से शिक्षित होने के उपरान्त हर विद्यार्थी अपना मूल्यांकन करने की स्थिति में उभयतृप्ति का होना देखा जाता है। यथा–विद्यार्थी और आचार्यों के परस्परता में यह स्पष्ट हो जाता है। इस मूल्यांकन प्रणाली में दायित्व और कर्तव्य बोध सुदूर आगत तक स्वीकृत होना स्वाभाविक होता है। यही संस्कार का मौलिक स्वरूप है। इसी सार्वभौम आधार पर हर शिक्षित व्यक्ति मौलिक अधिकारों को स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करने में सफल हो जाता है।(**अध्याय:10, पृष्ठ नंबर:295–298**)

- यह तथ्य पहले स्पष्ट हो चुका है कि स्वायत्त मानव **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक विधिवत् दीक्षित होना, सर्वसुलभ होना यह जागृत मानव परंपरा का देन के रूप में विदित हो चुकी है। यही प्रधान रूप में **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक सार्वभौमता को प्रमाणित करता है। यही स्वायत्तता को प्रमाणित करता है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर:308)**

आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- अस्तित्व में मानव अविभाज्य वर्तमान परंपरा है। अस्तित्व में मानव ही सर्वाधिक रूप में विकसित होना दिखाई पड़ता है। यह :–

1. मानवेत्तर प्रकृति से अपने को सार्वभौम शुभ के आधार पर ही भिन्न होना स्पष्ट हो जाता है।
2. दूसरे विधि से मानव परंपरा चारों आयाम सम्पन्न है।
3. मानव ही भूतकाल और घटनाओं का स्मरण, वर्तमान में विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान योजना कार्य–व्यवहारों और व्यवस्था को निश्चयन करने योग्य है। विज्ञान–विवेक का तात्पर्य संपूर्ण विश्लेषण ज्ञान सम्मत होने से है और विवेक का तात्पर्य प्रयोजन सम्मत होने से है। ज्ञान का तात्पर्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान एवं मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान से है। विवेक का तात्पर्य संपूर्ण विवेचनाएं प्रयोजनों के अर्थ में स्वीकार योग्य रूप स्पष्ट होने से है। विवेचना का तात्पर्य विवेचना सहित विख्यात विधि (सबके लिए स्वीकार योग्य) से वस्तुओं, घटनाओं को जानने–मानने–पहचानने की क्रियाकलापों से है। इस प्रकार विज्ञान, ज्ञान और विवेक सहज सार्थकता और चरितार्थता स्पष्ट है। यह अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन और सह–अस्तित्ववादी विश्व दृष्टिकोणों के आधार पर स्पष्ट हो जाता है।

   स्पष्टता के लिए मानवकुल आदिकाल से तरसता ही रहा है। प्रयास भी स्पष्टता के क्रम में अभिप्रेत रहा है। मूल मान्यताएं समुदाय और वर्ग केन्द्रित होने के आधार पर तथा दूसरी ओर रहस्य और वस्तुओं के आधार पर जितने भी सोचा गया, प्रयत्न किया गया, प्रयोग किया गया, वर्ग और समुदाय सीमा में ही हितों को सोचना बना। इसलिए सर्वशुभ चाहते हुए वह घटित होना संभव नहीं हुआ। इन तथ्यों का अवलोकन करने पर विकल्प की आवश्यकता और अनिवार्यता स्वाभाविक रूप में स्वीकृत होता है अन्यथा भ्रमित रहना ही होगा।

   ऊपर वर्णित घटनाओं का वर्णन, आंकलन और विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुकी है कि वस्तु केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण और रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण से मानव का अध्ययन मानव के लिए तृप्तिदायक अथवा समाधानपूर्ण विधि से संपन्न नहीं हो पाया इसलिए मानव के लिए योजित **शिक्षा संस्कार और शिक्षा संस्कार** को समृद्ध बनाने के लिए प्रबंध–निबंध, पाठ–पाठ्यक्रम, साहित्य, कला सभी मिलकर भी अधूरा ही रह गया। इस मायने में कि सार्वभौम शुभ सर्व सुलभ होने में नहीं आया। साथ ही यह तथ्य अपने आप में अवश्य ही उपादेयी रहा है कि उक्त दोनों प्रकार के विश्व दृष्टिकोण, उससे सम्बन्धित सभी प्रयास **अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन** के पहले मानव परंपरा में परिलक्षित होना अवश्यंभावी रहा। अस्तु इस बात पर हम सर्वमानव सहमत हो सकते हैं कि बीता हुआ सभी परिवर्तनों का समीक्षा फलनों के साथ ही विकल्प की ओर ध्यानाकर्षण होना संभव, आवश्यक और अनिवार्य है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 25–27)**

- परिवार का तात्पर्य सीमित संख्यात्मक स्वायत्त नर–नारियों का न्याय पूर्वक सहवास रूप है। यह अपने आप में स्वयं स्फूर्त विधि से परस्पर संबंधों को पहचानना मूल्यों को निर्वाह करना, मूल्यांकन करना और उभय तृप्ति पाना होता है। इसी के साथ–साथ समझदार परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होना, परिवार की आवश्कता से अधिक उत्पादन करना अथवा होना होता है। यही परिवार का कार्यकलाप का प्रारंभिक स्वरूप है। संबंध, मूल्य,

मूल्यांकन विधि से समाज रचना और अखंड समाज होना पाया जाता है अथवा संभावनाएं है ही। समाज रचना विधि ही व्यवस्था का आधार है। व्यवस्था का स्वरूप पांचों आयामों में यथा

1. न्याय सुरक्षा,
2. उत्पादन कार्य
3. विनिमय कोष
4. स्वास्थ्य संयम, और
5. **शिक्षा** संस्कार

कार्यकलापों के रूप में प्रमाणित हो पाता है और उसकी निरंतरता संभावित है। सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। ऐसी व्यवस्था सार्वभौम होने की संभावना समीचीन है जिसकी अक्षुण्णता मानव परंपरा में भावी है। ऐसी व्यवस्था को कम से कमएक गाँव से आरंभ करना और सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य अर्हता सें समूचे ग्राम वासियों को सम्पन्न करना एक आवश्यकता है। ऐसे अर्हता से सम्पन्न परिवार मानव और परिवार कम से कम 100 परिवार के सह-अस्तित्व में परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था समझदारी पूर्वक प्रमाणित हो पाता है। ऐसी परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था में ही आवर्तनशील अर्थशास्त्र चरितार्थ होना सहज संभव है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 30-31)**

- पहले धीरता, वीरता, उदारता का स्वरूप स्पष्ट किया जा चुका है। मानव मूल्य के रूप में दया, कृपा, करूणा, जीवन जागृति पूर्णता का प्रमाण रूप में अथवा साक्ष्य रूप में व्यवहृत होना पाया जाता है। दया को मानव के आचरण में जीने देकर स्वयं जीने के रूप में देखा गया है। जीने देने के क्रम में पात्रता के अनुरूप **शिक्षा-संस्कार** को सुलभ कर देना, प्रमाणित होता है। दूसरे विधि से पात्रता के अनुरूप वस्तुओं को सहज सुलभ करा देने के रूप में स्पष्ट होता है। कृपा का व्यवहार रूप प्राप्त वस्तु के अनुरूप योग्यता को स्थापित करने के रूप में है। उदाहरण के रूप में मानव है, मानव एक वस्तु है, मानव में मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में जीने की योग्यता को स्थापित कर देना ही कृपा सहज तात्पर्य है। करूणा का तात्पर्य पात्रता के अनुरूप वस्तु; वस्तु के अनुरूप योग्यता को स्थापित करने के रूप में देखा जाता है। यह मूलत: मानव में उदारता और दया, देवमानव में दया प्रधान रूप में और कृपा करुणा; दिव्यमानव में दया, कृपा, करूणा प्रधान रूप में, व्यवहृत होने की अर्हता प्रमाणित हो पाती है। ऐसे परिवार मानव, देव मानव, दिव्य मानव के रूप में समृद्ध होने योग्य परंपरा को पा लेना ही जागृति परंपरा का लक्षण और रूप है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि जागृति परंपरा पूर्वक ही सर्वमानव, मानवत्व रूपी सम्पदा से सम्पन्न होता है। ऐसे सम्पन्नता क्रम में आवर्तनशील अर्थशास्त्र, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान सहज **शिक्षा-संस्कार** विधा में चरितार्थ करना एक आवश्यकता है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 49-50)**
- पूरे गाँव में आवर्तनशीलता को इस प्रकार पहचानना आवश्यक और सहज है कि प्रत्येक परिवार समूचे ग्राम परिवारों के साथ एक दूसरे को किसी संबंध से पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं मूल्यांकन करते हैं। सदा तृप्ति मिलती ही रहती है। दूसरा श्रम मूल्यों के आधार पर वस्तु मूल्यों का मूल्य निर्धारित करते हैं और परस्पर विनिमय करते हैं। हर परिवार में आवश्कता से अधिक उत्पादन कार्य स्पष्ट रहता ही है। इस प्रकार वस्तुओं का उत्पादन, विनिमय और न्याय-सुरक्षा कार्यकलाप एक दूसरे से पूरक विधि से आवर्तनशील होते हैं। क्योंकि श्रम नियोजन, श्रम मूल्य में सामरस्यता, संबंध और मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य में सामरस्यता और

उसका नित्य गति के रूप में व्यवहार और विनिमय एक–दूसरे के लिए पूरक होते हैं और नित्य गतिशील रहते हैं इस प्रकार इसकी आवर्तनशीलता समझ में आती है।

इसी क्रम में परिवार सहज सहवास, ग्राम मोहल्ला सहज सहयोग, राष्ट्र और विश्व परिवार सहज सह अस्तित्व के रूप में आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था को जानना–मानना–पहचाननना–निर्वाह करना नियति सहज समीचीन है। परिवारमूलक विधि से एक ग्राम और ग्राम मूलक विधि से एक परिवार व्यवस्था पांचों आयामों के रूप में वैभवित होना सहज है। यही पाँचों आयामों की परस्पर पूरकताएं आवर्तनशीलता को प्रमाणित करना मानव का सहज अपेक्षा और जागृति क्रम घटना की समीचीनता अध्ययनगम्य हो जाता है। एक ग्राम व्यवस्था में न्याय सुरक्षा कार्य में भागीदारी, विनिमय कोष कार्यो में भागीदारी निरंतर समीचीन रहता है। परिवार व्यवस्था में जीना प्रमाणित रहता है। इन तीनों आयामों के लिए स्रोत रूप में स्वास्थ्य संयम कार्यों में भागीदारी और **शिक्षा संस्कार** कार्यों में भागीदारी की आवश्यकता, सम्भावना और प्रयोजन समीचीन रहता ही है। हर समझदार परिवार मानव कहे गये पाँच आयामों में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य होता ही है। इसका स्रोत **शिक्षा–संस्कार** विधि से सम्पन्न होने की व्यवस्था है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 57–58)**

- समूचे व्यवस्था का अर्थात् एक परिवार से विश्व परिवार, मानव व्यवस्था को पहचानने–निर्वाह करने के क्रम में दस सीढ़ियों में पहचानना सहज है। यथा

1. परिवार सभा व्यवस्था
2. परिवार समूह सभा व्यवस्था
3. ग्राम परिवार सभा व्यवस्था
4. ग्राम समूह परिवार सभा व्यवस्था
5. ग्राम क्षेत्र परिवार सभा व्यवस्था
6. मंडल परिवार सभा व्यवस्था
7. मंडल समूह परिवार सभा व्यवस्था
8. मुख्य राज्य परिवार सभा व्यवस्था
9. प्रधान राज्य परिवार सभा व्यवस्था और
10. विश्व राज्य परिवार सभा व्यवस्था।

इन दसों सीढ़ियों का अन्तर संबंध हर एक व्यक्ति 10 व्यक्ति को अथवा हर 10 व्यक्ति एक–दूसरे को मानव सहज संबंधों के रूप में पहचानने, उसमें निहित मूल्यों को निर्वाह करने के रूप में समझा गया है। इस क्रम में एक परिवार सभा से कम से कम 10 व्यक्ति होना मानते हुए इसे चित्रित किया गया है। 10 व्यक्ति में से एक व्यक्ति को किसी निश्चित काल तक परिवार समूह सभा व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने के लिए निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 परिवारों में से निर्वाचित एक–एक व्यक्ति मिलकर एक परिवार समूह सभा के रूप में कार्य करना होगा। ऐसे 10 परिवार समूह सभाएं अपने में से एक–एक व्यक्ति निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 व्यक्ति मिलकर एक ग्राम मोहल्ला स्वराज्य परिवार सभा व्यवस्था गठित करेंगे। यही निर्वाचित 10 व्यक्ति मिलकर, ग्राम के कम से कम 1000 व्यक्ति में से ही 5 समितियों को मनोनीत करेंगे। ये 5 समितियाँ क्रम से 1.न्याय–सुरक्षा, 2.उत्पादन–कार्य, 3.विनिमय–कोष, 4.**शिक्षा–संस्कार** और 5.स्वास्थ्य–संयम समितियाँ रहेंगी। इसमें मूलत: महत्वपूर्ण मुद्दा यही

है परिवार के सभी सदस्यों को स्वयं पर विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्त्वि में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक योग्य क्षमता–योग्यता–पात्रता को स्थापित करने के उपरांत ही परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था सभा का गठन करना सहज है। ऐसे 10–10 व्यक्तियों का 10 ग्राम स्वराज्य परिवार सभाओं में से 1–1 व्यक्ति को निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 व्यक्ति मिलकर एकग्राम समूह परिवार सभा का गठन करेंगे। और इसमें भी पांच आयाम रूपी समितियों को मनोनीत व्यक्तियों से गठित करेंगे। इसी प्रकार क्रम से प्रधान राज्य परिवार सभा का गठन, पाँचों आयाम रूपी समितियों का मनोनयन सम्पन्न होगा। इस धरती पर जितने भी प्रधान राज्य परिवार सभाएं होंगी वे सब अपने–अपने निर्वाचित सदस्यों को पहचानने, इस प्रकार विश्व परिवार सभा व्यवस्था भी मनोनयन पूर्वक 5 व्यवस्था समितियों को गठित करेगा। ये सभी समितियाँ ग्राम से विश्व तक अंतर सम्बन्धित रहना होगा। सभी स्तरीय सभाएं इन पाँचों समितियों का मूल्यांकन करते हुए श्रेष्ठता की ओर कार्य और प्रयोजन पर बल देते रहना बनता है। इस विधि से भविष्य का हर क्षण उत्सव मय होना समझ में आता है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 58–60)**

- .. बड़े–बड़े उद्योगों का भी स्थान अवश्य ही बना रहेगा। अधिकांश प्रौद्योगिकियाँ लघु उद्योग सीमा तक ही केन्द्रित होना रहेगा। इन सबका यथावत् संचालन कार्य भी ग्राम स्वराज्य सीमा में सर्वाधिक सम्पन्न होना जैसे–जैसे आगे की सीढ़ियाँ होंगी वैसे–वैसे इनका तादात धटने की व्यवस्था है दिखाई पड़ती है। आवर्तनशीलता क्रम में प्रत्येक सीढ़ी में जिम्मेदारियों का सूत्र या दायित्वों का सूत्र बना ही रहेगा। **शिक्षण संस्थाओं** में सर्वाधिक जिम्मेदारी समायी रहना स्वाभाविक है। **शिक्षा संस्कार** ही स्वायत्त मानव का स्वरूप देने में अथवा स्वरूप को स्थापित करने का सार्थक मानसिकता प्रमाण कार्यप्रणाली है। वस्तु प्रणालियाँ समाहित रहेगी। वस्तु प्रणाली का तात्पर्य जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही है। इसका प्रबोधन कार्य प्रणालियाँ पूरकता और आवर्तनशील विधियों से सम्पन्न होता रहेगा। यह नैसर्गिक संतुलन और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में सार्थक होगा। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 62–63)**
- स्वराज्य का परिभाषा ही है स्वयं का वैभव को प्रमाणित करने का सम्पूर्ण दिशा–कोण–आयाम–काल–परिप्रेक्ष। वैभव का स्वरूप न्याय–सुलभता, उत्पादन सुलभता–विनिमय सुलभता ही है। ऐसे वैभव का नित्य स्रोत मानव कुल में **शिक्षा–संस्कार**, स्वास्थ्य–संयम कार्यप्रणाली है। अस्तु,"स्वराज्य के अंगभूत विधि से ही आवर्तनशील अर्थशास्त्र का अध्ययन मानवीयतापूर्ण होना सहज है।" इतना ही नहीं अर्थात् केवल आवर्तनशील अर्थ–शास्त्र ही स्वराज्य का संपूर्ण सूत्र न होकर समाज शास्त्र, संविधान शास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र, उत्पादन–कार्य शास्त्र ये सब स्वराज्य का अंगभूत होना पाया जाता है। इसी के साथ–साथ सटीक अध्ययन करने के लिए और दर्शन इन शास्त्रों की पुष्टि के लिए तर्कसंगत विचारों को पाना भी एक अनिवार्यता बना रहता है इसे प्रस्तावित किये है। न्याय और समाधानपूर्ण सह–अस्तित्ववादी मानव इकाई का अध्ययन और साम्य ऊर्जा में संपृक्त प्रकृति रूपी अस्तित्व में से साम्य ऊर्जामयता को अध्यात्म, ईश्वर, परमात्मा, शून्य आदि के नामों से जानने की विधि में अनुभव अर्थात् मानव में होने वाली अनुभव और उसके प्रमाणों का अध्ययन आवश्यक है। यही तर्कसंगत विचारों का आधार भी होना पाया जाता है। जिससे उपर कहे शास्त्रों का पुष्टि होना देखा गया है। इस विचार के मूल में ही अनुभव रूपी दर्शन का महिमा देखा गया है जिसको इंगित करने के लिए, हृदयंगम करने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहज रूप में ही मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ जीवन का प्रतिपादन के रूप में व्यवहार, कर्म, अभ्यास और अनुभव दर्शन के रूप में समीचीन हुई अर्थात् उपलब्ध हो गई है। इस प्रकार परम सत्य को जानने–मानने के लिए दर्शन,

उसे तर्कसंगत अर्थात् –विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से संप्रेषित करने के लिए विचार, सत्यमयता को तर्कसंगत विचार प्रणाली पूर्वक व्यवहार विधा में अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में प्रमाणित करने के क्रम में शास्त्रों का होना मानव परंपरा सहज आकांक्षा, आवश्यकता और उपलब्धियाँ हैं। इस प्रकार परम सत्य रूप में सह–अस्तित्व है। अस्तित्व में मानव भी एक अविभाज्य इकाई है। इसी विधि से यह भी हम पाते हैं अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में होना सत्य है। इन्हीं दो (परम सत्य और सत्य) तथ्यों के आधार पर प्रत्येक एक का लक्ष्य आचरण और प्रमाण ही केवल व्यवस्था सहज आधार होना पाया जाता है। इस नजरिया से मानव मानवत्व सहित जीने की कला क्रम में, दूसरे भाषा से मानवत्व सहित प्रमाणित होने के क्रम में, सत्य को समझना परमावश्यक रहा है यही जागृति सहज प्रमाण हैं। अस्तित्व न तो रहस्य है न ही दुरुह–जटिल है। अस्तित्व को सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में हर व्यक्ति समझने योग्य है और अस्तित्व ही सह–अस्तित्व होने के कारण पदार्थ, प्राण–जीव अवस्था के साथ–साथ ज्ञानावस्था में स्वयं को पहचान पाना सहज है। सह–अस्तित्व में ही व्यवस्था सर्वत्र–सर्वदा वैभवित है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:131–133)**

- मानव अपने परंपरा में व्यवस्था के रूप में जीने के लिए जागृत होना एक अनिवार्यता–आवश्यकता बनी रही। परंपरा के रूप में जागृति का तात्पर्य सत्य परंपरा में प्रवाहित रहने से ही है। मानव परंपरा में सत्य प्रवाहित रहने का प्रमाण **शिक्षा** में परम–सत्य रूपी अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में व्याख्यायित होना और बोध अनिवार्य रहा। इसी के फलस्वरूप मानवीय संस्कार को परंपरा के रूप में वहन करना स्वाभाविक है। **मानवीय शिक्षा–संस्कार की परिणती ही परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था और मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान सहज ही प्रवाहित होता है। इसीलिए शिक्षा–संस्कार में सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान को परम दर्शन के रूप में, जीवन ज्ञान को परम ज्ञान के रूप में, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान को परम आचरण के रूप में वहन करना मानवीयतापूर्ण परंपरा की गरिमा और महिमा है।** महिमा का तात्पर्य समझदारी सहित जागृतिपूर्वक व्यवस्था के रूप में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करना ही है। गरिमा का तात्पर्य प्रामाणिकता और उसकी निरंतरता को बनाए रखने से है। यह भी इंगित किया जा चुका है न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता और उत्पादन सुलभतापूर्वक ही मावीयतापूर्ण व्यवस्था को पहचाना जा सकता है। फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी का सौभाग्य उदय होना पाया जाता है। यह भी स्पष्ट हो चुका है हर मानव जागृत होना चाहता है, प्रामाणिक होना चाहता है, व्यवस्था में ही जीना चाहता है। इस विधि से प्रत्येक व्यक्ति की साम्य–कामनाएँ मानव परंपरा का अथवा मानव पंरपरा सहज लक्ष्य का आधार है। अतएव मानव परंपरा में से के लिए परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था ही एकमात्र शरण है। ऐसी व्यवस्था में आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था एक अनिवार्य आयाम है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:133–135)**
- उपयोगिता और कला मूल्य का मूल्यांकन होना सहज है। इसी मूल्यांकन क्रिया को श्रम मूल्य का नाम दिया। उत्पादन क्रम में अनेक वस्तुएं होना पाया जाता है। यह महत्वाकांक्षा और सामान्य आकांक्षा के रूप में वर्गीकृत है। इनमें से सामान्य आकांक्षा सम्बन्धी किसी वस्तु का उसमें भी किसी एक आहार वस्तु का मूल्यांकन सर्वप्रथम करना आवश्यक है। इस क्रिया को इस प्रकार किया जा सकता है कि जैसे गेहूँ को एक गाँव में कई परिस्थितियों में बोया जाता है। उत्पादन भी विभिन्न तादादों में होता है। उसका सामान्यीकरण उत्पादन तादातों के मध्य बिन्दु में सामान्य मूल्य रूप होना सहज है। जब एक वस्तु का उपयोगिता व कला मूल्य का मूल्यांकन हो जाता है, उसी प्रकार गाँव में उत्पादित हर वस्तु का मूल्यांकन हर स्वायत्त मानव से सम्पन्न होना स्वाभाविक है। ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव और विश्व परिवार मानव तक अपने वर्चस्व को अथवा अपने वैभव को प्रमाणित करना

संभव होने के कारण परिवार समूह, ग्राम परिवार तक एक गाँव में ही मूल्यांकन क्रिया का ध्रुवीकरण हो पाता है। फलस्वरूप ग्राम में उत्पादित वस्तुओं का विनिमय गाँव में होने में कोई अड़चन नहीं रह जाती है। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का प्रमाण कम से कम एक गाँव से ही होना संभव है। इसीलिए परिवार मूलक विधि से ही यह सफल होना एक निश्चित विधि है। परिवार सफलता के लिए अर्थात् परिवार स्वायत्तता के लिए स्वायत्त मानव का स्वरूप, उसकी सार्वभौमता अनिवार्य है। स्वायत्त मानव का स्वरूप प्रदान करने का प्रेरक तत्व ही **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार** परंपरा है। **मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार** परम्परा का मूल वस्तु अथवा सम्पूर्ण वस्तु जीवन–ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। आज की स्थिति में भय और आस्था दोनों प्रलोभन के चक्कर में आकर अस्वीकृत होते जा रहे हैं। प्रलोभन की आपूर्ति का स्रोत और संभावना दोनों न होने के कारण, दूसरा उसकी तृप्ति बिन्दु न होने के कारण पागलपन छा जाना आवश्यंभावी रही है। अतएव इससे मुक्ति पाने के लिए कुछ लोग इच्छा रखते हैं। अधिकांश लोग निराशा, कुण्ठा ग्रसित हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में हर मोड़–मुद्दे में विकल्प की आवश्यकता है ही। यहाँ की प्रासंगिकता आवर्तनशील अर्थशास्त्र और कार्यक्रम से यह सारी परेशानियाँ दूर होकर स्वस्थ अर्थात् समाधानित, समृद्ध, अभय, सह–अस्तित्वशील परिवार को साकार कर लेना संभव हो गया है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:137–138)**

- परिवार मूलक ग्राम स्वराज्य सभा अपने ही ग्राम के व्यक्तियों में से 5 समितियों को गठित करेगा। यह प्रधानत:– (1) न्याय–सुरक्षा करेगा अथवा न्याय सुरक्षा को संतुलित बनाए रखेगा, (2) उत्पादन–कार्यकलाप को संतुलित बनाए रखेगा, (3) विनिमय कोष कार्यों को संतुलित बनाए रखेगा, (4) **शिक्षा–संस्कार** कार्य को संतुलित बनाए रखेगा और (5) स्वास्थ्य–संयम कार्यों को संतुलित बनाए रखेगा। इन्हीं कार्यकलापों के आधार पर क्रमश: (1) न्याय–सुरक्षा समिति (2) उत्पादन–कार्य समिति (3) विनिमय–कोष समिति (4) **शिक्षा–संस्कार** समिति और (5) स्वास्थ्य–संयम समिति नामकरण होगा। कार्य और नाम से यह सुस्पष्ट है कि इस स्वरूप के साथ मानव प्रयोजन, आवश्यकता और अनिवार्यता को अनुभव कर सकता है। इसी क्रम में विश्व परिवार सभा तक 5–5 समितियों का गठन होना सहज है। और हर समिति हर स्तरीय समिति एक दूसरे के साथ संचार और अनुप्राणन संबंध को बनाए रखेंगे। इसमें से विनिमय कोष समिति के द्वारा विनिमय कार्यों को गाँव में और एक–दूसरे गाँव के साथ सार्थक होगी। हर गाँव में ग्राम सभा ही वस्तु मूल्यों का मूल्यांकन, उसका ध्रुवीकरण क्रियाकलापों की विधि पर निर्णय लेगा। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:139–140)**
- मानव में यह देखा गया है इस धरती की अधिकाधिक हर वस्तु को उपभोग करने के क्रम में धरती का शोषण पूर्वक व्यवसाय किया। दोहन, संग्रहण क्रम में लाभ के आधार पर मानव ही मानव को बेचकर संग्रह, संघर्ष, भोगाभिलाषाओं को पूरा करने के लिए सुदूर विगत से प्रयत्न किया। ये अभिलाषाएँ कहीं अपने तृप्ति बिन्दु तक पहुँच नहीं पायी। तृप्ति सर्वसुलभ होने की स्थिति बन नहीं पायी। इससे सुस्पष्ट है मानव–मानव को, अस्तित्व को, जीवन को, जागृति को न समझते हुए भी विद्वता का अर्थात् ज्ञानी–विज्ञानी होने को स्वीकार करता रहा। उक्त चारों मुद्दों से इंगित तथ्य अभी तक न तो **शिक्षा** में आया है, न तो **शिक्षा** में प्रचलित है, न ही व्यवहार में मूल्यांकित है, इतना ही नहीं राज्य संविधानों में और धर्म संविधानों में उल्लेखित नहीं हो पाया है। व्याख्यायित–सूत्रीत नहीं हो पाया है। इन गवाही के साथ उपर किया गया समीक्षा स्पष्ट हो जाता है। जीवन, जीवन जागृति, सह–अस्तित्व और मानव के अध्ययन के उपरान्त ही जीवन और जागृति सर्वमानव में, से, के लिए समानता का तथ्य

लोकव्यापारीकरण होना दिखाई पड़ती है। यहाँ समझने का तात्पर्य समझाने योग्य परंपरा से ही है। **शिक्षा–संस्कार** परंपरा ही इसके लिए प्रधान रूप में उत्तरदायी है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:144–145)**

- अभी तक विविध प्रकार की परंपराएँ स्थापित रहते हुए भी सार्वभौम शुभ किसी परंपरा में स्थापित नहीं हुई। इसलिए किसी परम्परा को मानवीयतापूर्ण परम्परा में ध्यान देने की आवश्यकता समीचीन हुई। हर परम्परा प्रकारान्तर से भ्रमित रहने के उपरांत ही असमानताएँ भ्रमात्मक कर्मों का प्रेरणा और प्रभाव **शिक्षा**, संस्कार, संविधान, व्यवस्था और प्रचार तंत्र के मंशा पर आधारित रहती है। अंततोगत्वा संग्रह और भोग ही मानव परंपरा को हाथ लगी। इन दोनों मुद्दों पर ज्यादा और कम की बात प्रभावित होता ही है। इन दोनों विधाओं में तृप्ति बिन्दु कहीं मिलता नहीं है। यही तथ्य परंपरागत उक्त पाँचों प्रकार के प्रयास भ्रमात्मक होने का प्रमाण है। उल्लेखनीय घटना यही है सर्वमानव शुभ चाहते हुए भी भ्रम से ग्रसित हो जाता है। इसी भ्रमवश ज्यादा और कम वाला भूत भय और प्रलोभन के आधार पर ही बन बैठा है। इसका निराकरण, तृप्ति स्थली को परम्परा में पहचानना ही है, निर्वाह करना ही है। जानना–मानना ही है।

  इसके तृप्ति स्थली को हर मानव इस प्रकार देख सकता है और जी सकता है कि स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक होने के उपरांत व्यक्ति स्वायत्त होता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही वांछित, आवश्यकीय, सार्वभौम मानव का स्वरूप और गति स्पष्ट हो जाती है। परिवार मानव में राग–द्वेष का पूर्णतया उन्मूलन हो जाता है। समझदारी का स्त्रोत **मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार** ही है। जागृति के अनन्तर भ्रम का प्रभाव निष्प्रभावी होना स्वाभाविक है। भ्रमवश ही राग द्वेष से मानव पीड़ित रहता है। इस बात का सम्मति प्राचीन काल से भी स्वीकृत है। भ्रम निवारण की अथवा जागृति के लिए मार्ग प्रशस्त न होने के फलस्वरूप निषेधनी को बताकर ज्ञान होने की आशा बंधाए रखे थे। ऐसी आशा के अनुरूप घटनाएँ घटित नहीं हो पाई, क्योंकि जागृति की आवश्यकता रही। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:180–181)**

- परिवार और व्यवस्था अविभाज्य है। परिवार हो, व्यवस्था नहीं हो और व्यवस्था हो परिवार नहीं हो, ये दोनों स्थितियाँ भ्रम का द्योतक है। पूर्ववर्ती आदर्शवादी और भौतिकवादी विचारों के आधार पर सभी शक्ति–केन्द्रित शासन अवधारणाएँ परिवार के साथ सूत्रित होना संभव नहीं हो पाई। हर परिवार में कुछ संख्यात्मक व्यक्तियों को और उनके परस्परता में सेवा, आज्ञा पालन, वचनबद्धता को पालन करता हुआ, निर्वाह किया हुआ भी उल्लेखित है, दृष्टव्य है। इनमें श्रेष्ठता की ऊचाइयाँ भी उल्लेखों में दिखाई पड़ती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से किसी आदर्श का गति अनेक नहीं हो पायी। यही बिन्दु में हम और एक तथ्य पर नजर डाल सकते हैं। बहुतायत रूप में अच्छे आदमी हुए हैं और अच्छी परम्परा नहीं हो पायी। क्योंकि जबसे मानव समुदायों में राज्य और धर्म की दावा समायी है तब से अभी तक शक्ति केंद्रित शासन ही रहा है। इसकी गवाहियाँ धर्म–संविधान और राज्य संविधान ही है। ऐसे धर्म और राज्य संविधान की मंशा के बारे में हम पहले से स्पष्ट हो चुके हैं। इन दोनों प्रकार संविधानों के प्रभावित रहते भय और प्रलोभन का ही प्रचार होना समीचीन प्रवर्तन रहा है। कला, साहित्य, शास्त्र, विचार, दर्शन सभी भय और प्रलोभन से भरे पड़े हैं अथवा इसी के परस्त होकर बैठ गए हैं। इन स्मरणों के साथ साथ उल्लेखनीय तथ्य इतना ही है कि इस धरती पर स्थित मानव परंपरा में भय और प्रलोभन के रहते, इस धरती का संतुलन–ज्ञान सम्पन्न होना, मानव द्वेष विहीन अथवा राग द्वेष विहीन परिवार का होना, अखण्ड समाज होना,

सार्वभौम व्यवस्था होना सर्वथा संभव नहीं है। इसके स्थान पर इसी के पीछे विद्वता का परिकल्पना ज्ञान–रसायन, कर्मों का दुहाई, पाप–पुण्य का नारा ही हाथ लगा रहेगा अथवा सभी मानव मन में घर किया रहेगा। फलस्वरूप शुभ के स्थान पर अशुभ घटनाएँ दुहराते ही रहेगा। इस ढंग से परम्परा भ्रमित रहने के आधार पर मानव अपने में से जागृत होने का रास्ता समाप्त प्राय होता है। यह सब स्थितियाँ रहते हुए भी कोई न काई मानव चिंतन को आगे बढ़ाने, विकल्प को प्रस्तुत करने का यत्न–प्रयत्न करता है। इसका प्रमाण यही है आदर्शवाद का विकल्प भौतिकवाद के रूप में आयी। आदर्शवाद और भौतिकवाद का मूल तत्व व्यवस्था के रूप में शक्ति केंद्रित शासन ही रहा है। अतएव इन दोनों के विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक मानव केंद्रित चिंतन ही सह–अस्तित्ववादी, सर्वतोमुखी समाधानपूर्ण व्यवस्था को अध्ययनगम्य होने के लिए प्रस्तुत है और मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान को समाधान केंद्रित व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतएव कर्मों के आधार पर मानव का विविधताएँ पाप–पुण्य–स्वर्ग–नर्क शक्ति केंद्रित शासन में भागीदारी, रहस्यमूलक, लक्षणात्मक धर्म संविधान वह भी शक्ति केंद्रित विधि से कल्पित ढांचा–खांचा में भागीदारी, व्यापार जैसा शोषण में भागीदारी, भ्रमात्मक साहित्य–कला में भागीदारी, भ्रमात्मक आस्थाओं में भागीदारी, लाभोन्मादी उत्पादन कार्यों में भागीदारियों के आधार पर पाप–पुण्य का व्याख्या करते रहे हैं। इसी के साथ–साथ रहस्य में छुपी हुई सत्य, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, देवी–देवता जैसी कल्पनाओं में प्रमाणित होने के लिए प्रकल्पित भांति–भांति साधना–अभ्यास, योग, यज्ञ, जप, तप, पूजा, पाठ, प्रार्थना, गायन क्रियाकलापों को भक्ति और विरक्ति के परिकल्पित रेखा सहित किए जाने वाले जितने भी कार्यकलाप हैं, ये सबको पुण्यशील कर्म मान लिया गया है। जानने की क्रिया अभी तक शेष है। इसी के साथ यह भी निर्देशन अथवा इंगित तथ्य यही है ऐसी पुण्यशीलों के सेवा–सुश्रुषा, अपर्ण–समपर्ण से भी पुण्य मिलेगा और पुण्यशीलों से पुण्य बंटती है, ऐसे उल्लेख और आश्वासनों को पूर्ववर्ती शास्त्र, धर्मशास्त्र परिकथाओं में उल्लेख किया है। **यहाँ ध्यानाकर्षण का तथ्य यह है कि सह–अस्तित्व ही परम सत्य है। अस्तित्व स्वयं में सत्ता में संपृक्त प्रकृति है। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में नित्य वैभव है। सह–अस्तित्व में ही नित्य समाधान है। यह सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन इन बिन्दुओं पर देखा गया है सह–अस्तित्व में जीवन ज्ञान, और सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान। इसी के फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण सर्वसुलभ होना होना, दूसरे भाषा में चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कारपूर्वक लोकव्यापीकरण होना सहज है।** जीवन–ज्ञान के पश्चात् प्रत्येक मानव जीवन का अमरता को, नित्यता को पहचान पाता है। फलस्वरूप जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव परंपरा को होना प्रमाणित हो जाता है। इसी क्रम में शरीर रचना भौतिक–रासायनिक द्रव्यों से सम्पन्न होना देखा जाता है। इसी आधार पर शरीर की भंगुरता अथवा विरचना स्वीकृत हो जाता है। और जीवन ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता होने का तथ्य हर मानव में सुदृढ़ होता है। फलस्वरूप सर्वतोमुखी समाधान स्रोत और कारण जागृत जीवन ही होना स्पष्ट होता है अथवा सर्वतोमुखी समाधान का धारक वाहक जीवन ही होना स्पष्ट हो जाता है। यह सर्वसुलभ होना ही जागृत परंपरा का द्योतक है। इस प्रकार जीवन की नित्यता समझ में आने के फलस्वरूप शरीर को छोड़कर जीवन ही अपने स्वरूप में देवी–देवता, भूत–प्रेत आदि नामों से जाने जायेंगे। यह देवी–देवता सम्बन्धी रहस्य उन्मूलन होने का सहज विधि फलस्वरूप तत्सम्बन्धी भ्रम से मुक्त होने का सुख स्वाभाविक रूप में समीचीन है। मानव सहज रूप में रहस्य से मुक्त होने की अभिलाषाएँ होना पाया जाता है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:183–187)**

- **मानवीय शिक्षा–संस्कार** से स्वायत्त मानव, स्वायत्त मानवों से स्वायत्त परिवार, स्वायत्त परिवार व्यवस्था से स्वायत्त ग्राम परिवार व्यवस्था, ग्राम समूह परिवार व्यवस्था क्रम में विश्व परिवार व्यवस्था को पाना सहज है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा** की संपूर्णता अपने आप में जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अपने आप का तात्पर्य मानव अपना ही निरीक्षण–परीक्षणपूर्वक ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, आचरण सम्पन्न होने से है। दूसरी विधि से अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में परमाणु में विकास, गठनपूर्णता, जीवनी क्रम, जीवन का कार्यकलाप, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति, क्रियापूर्णता उसकी निरंतरता और प्रामाणिकता (जागृति पूर्णता) उसकी निरंतरता दृष्टापद से है। इस प्रकार **मानवीय शिक्षा** का तथ्य अथ से इति तक समझ में आता है। इसी समझदारी के आधार पर हर मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप स्वायत्त परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक हम अच्छी तरह से सार्वभौमता, अक्षुण्णता को अनुभव कर सकते हैं। इस विधि से सेवा, व्यवस्था के अंगभूत कर्तव्य के रूप में, व्यवस्था दायित्व के रूप में, उत्पादन आवश्यकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता के रूप में, परिवार व्यवहार सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन अर्पण, समर्पण और उभयतृप्ति के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। यह अधिकांश मानव में अपेक्षा भी है। इसी विधि से धरती की संपदा संतुलन विधि से सदुपयोग होना स्वाभाविक है, अर्थ का सदुपयोग होना ही आवर्तनशीलता है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:190– 191)**
- ....जागृत मानव परंपरा में मानव का जागृत होना सहज है। हर व्यक्ति जागृत होना चाहता ही है, वरता भी है; परंपरा जागृत न होने का फल ही है भ्रमित रहना। भ्रमित परंपरा में अर्पित हर मानव संतान भ्रमित होने के लिए बाध्य हो जाता है। **परंपरा का कायाकल्प अर्थात् परिवर्तन और सर्वतोमुखी परिवर्तन एक अनिवार्यता है ही। इसकी सफलता जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान पर आधारित है जो अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन हैजिसके आधार पर ही मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद) स्पष्ट रूप में अध्ययनगम्य है।**

  मध्यस्थ दर्शन मूलत: मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ गति और मध्यस्थ जीवन का प्रतिपादन है जो वाङ्मय के रूप में स्पष्ट हो चुका है जिसके अध्ययन से मानवीयतापूर्ण आचरण स्वयं स्फूर्त रूप में प्रमाणित होता है।

  जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान ही अनुभव बल का स्वरूप और स्रोत है। यही अनुभव बल, विचार शैली के रूप में संप्रेषित होते हुए देखा जाता है। ऐसे स्थिति में विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से विचार शैली का स्वरूप होना पाया गया। ऐसी विचार शैली स्वयं में मध्यस्थ दर्शन सूत्रों से एवम् सह–अस्तित्ववादी सूत्रों से सूत्रित होना स्वाभाविक रहा। यही सह–अस्तित्ववाद, **समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद** के रूप में प्रस्तुत है। यही विचार शैली पुन: शास्त्रों के रूप में संप्रेषित हुई है। इसमें से **आवर्तनशील अर्थचिन्तन शास्त्र और व्यवस्था का मूल स्वरूप** इस प्रबंध के द्वारा मानव कुल के लिए अर्पित है। इसी के साथ–साथ व्यवहारवादी समाजशास्त्र जो स्वयं में मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान सूत्र और व्याख्या है तथा मानव **संचेतनावादी मनोविज्ञान** मानव कुल के विचारार्थ प्रस्तुत है। भ्रमित मानव भी शुभ चाहता है। शुभ का स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। यह सर्वमानव स्वीकृत है। इनके सार्वभौमता को अध्ययन विधि से सुस्पष्ट करना ही मध्यस्थ दर्शन (अनुभव बल), विचारशैली और शास्त्र (जीने की कला) का उद्देश्य है। अतएव आवर्तनशील अर्थचिन्तन का आधार सह–अस्तित्व तथा सहअस्तित्व में मानव में अनुभव सहज

जीना ही है। अस्तित्व ही स्वयं सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में सह–अस्तित्व होना देखा गया है। यही अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन का ध्रुव बिन्दु है। अस्तित्व नित्य वर्तमानता के रूप में स्थिर होना नित्य प्रमाण है। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व नित्य प्रमाण होने के आधार पर परमाणु में विकास, गठनपूर्णता–जीवनपद फलत: परिणाम का अमरत्व ज्ञात होता है। जीवन ही जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम में गुजरता हुआ जागृत पद में क्रियापूर्णता, जिसका प्रमाण में मानव, स्वायत्त मानव, परिवार मानव, व्यवस्था मानव के रूप में स्वयं में व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण उसमें पारंगत विधिपूर्ण **शिक्षा–संस्कार**, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान का अध्ययन सहज है। इसी के साथ–साथ सह–अस्तित्व में संपूर्ण जड़–प्रकृति अर्थात् रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना का अध्ययन स्वाभाविक रूप में समाहित है। जिसमें सम्पूर्ण भौतिक वस्तुओं को तात्विक, मिश्रण और यौगिक रूप में अध्ययन करना सहज हो चुका है और रासायनिक द्रव्यों में, से, प्राणकोषा, और प्राणावस्था का रचनासूत्र (प्राणसूत्र) जीव शरीर और मानव शरीर रचना सूत्र क्रम में विकसित होकर इस धरती पर चारों अवस्थाओं में परंपरा के रूप में स्थापित रहना पाया गया। सह–अस्तित्व नित्य प्रभावी होने के आधार पर जड़–चैतन्य प्रकृति में सह–अस्तित्व सहज रूप में वर्तमान है। संपूर्ण सम्बन्धों का सूत्र भी सह–अस्तित्व ही है। जीवन और शरीर का संबंध भी निश्चित अर्थ और प्रमाण सहित ही वर्तमान हैं। जीव शरीरों के साथ जीवन का संबंध वंशानुषंगीय विधियों से कार्य करने के रूप में प्रमाणित है मानव शरीर और जीवन का संबंध संस्कारानुषंगीय विधि से सार्थक और प्रमाणित होना पाया जाता है। संस्कार का तात्पर्य ही है स्वीकृतिपूर्वक (अवधारणापूर्वक) प्रवर्तनशील होने से अथवा प्रवर्तित होने से है। यही मानवीय संस्कृति–सभ्यता–विधि–व्यवस्था के रूप में सहज अभिव्यक्ति–संप्रेषणा–प्रकाशन है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 208–210)**

- जागृत मानव परंपरा में अध्ययन पूर्वक **शिक्षा संस्कार**–होना देखा गया। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधिवत् अध्ययनपूर्वक बोधगम्य होना हो पाता है। इसको अभिव्यक्ति, संप्रेषणा क्रम में प्रामाणिकता और प्रमाण होना पाया जाता है। इसी विधि से यह सुस्पष्ट है कि उक्त परम ज्ञान–परम दर्शन के आधार पर सह–अस्तित्ववादी विचार शैली, शास्त्र बोध होना और साक्षात्कार होना स्वाभाविक है। बोध और साक्षात्कार के क्रम में नित्य आचरण पूर्वक पुष्टि, अनुभवमूलक प्रणाली से नित्य स्रोत बनाए रखना, इसे प्रत्येक मानव अनुभव कर सकता है। मानव अपने में सुखी होने के क्रम में सर्वतोमुखी समाधान की आवश्यकता और अनिवार्यता स्पष्ट हो जाती है। यही सह–अस्तित्वपूर्वक सुखी होने का रास्ता है। इस क्रम में मानव में स्वायत्तता परिवार और विश्व परिवार में प्रमाणित हो पाता है। इसी विधि से समाज रचना और परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था अविभाज्य रूप में प्रमाणित होता है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 212–213)**

- इस चित्र में स्पष्ट किया गया पाँचों आयाम रेखाकार और वर्तुलाकार विधि से अन्तर सम्बन्धित और कार्यरत रहते हैं। रेखाकार विधि से अन्तर्संबंध, वर्तुलाकार विधि से पांचों समितियों को अविभाज्य सम्बन्ध आवर्तनशीलता के रूप में देखने को मिलता है। इसके मूल में मानव ही **मानवीय शिक्षा–संस्कार** पूर्वक स्वायत्त मानव, परिवार मानव (समाज मानव) और व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना ही परिवार मूलक के स्वराज्य व्यवस्था का अबाध गति है।.... **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 233–234)**

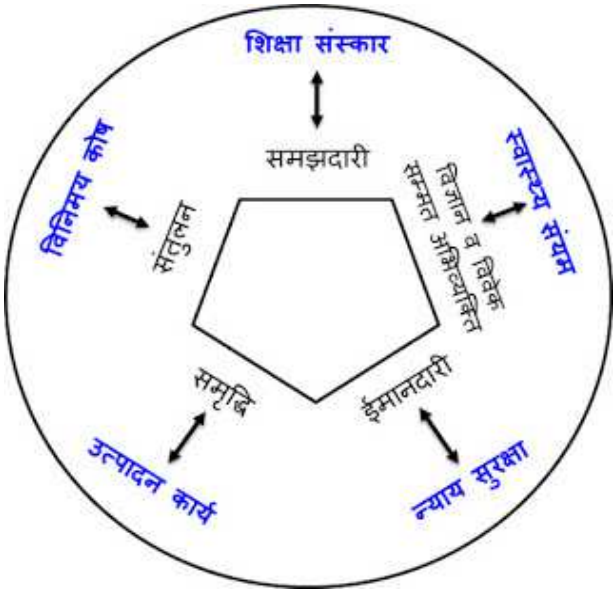

- हर परिवार अपने प्रतिष्ठा के अनुरूप आवश्यकताओं का निर्धारण करने में **मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार** के बाद ही समर्थ होना पाया जाता है। ऐसे परिवार मानवों से सम्बद्ध परिवार अपने आवश्यकता की तादात, गुणवत्ता सहित आवश्यकताओं को अनुभव करेंगे और उत्पादन–कार्य को अपनायेंगे।.....**(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 237–238)**
- .....**शिक्षा–संस्कार** पूर्वक आवश्यकीय सभी तकनीकी **शिक्षा** को जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहित सह–अस्तित्व मानसिकता से सम्पन्न कराने की व्यवस्था रहेगी। फलस्वरूप न्याय सुलभता और स्वास्थ्य–संयम समितियों का अंतरसम्बन्ध अपने–अपने विशालता सहित सम्पूर्ण कार्य करने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:241)**
- **शिक्षा–संस्कार व्यवस्था**

ग्राम में शिक्षा–संस्कार व्यवस्था का संचालन "शिक्षा–संस्कार समिति" करेगी। शिक्षा–संस्कार समिति में कम से कम एक व्यक्ति होगा या अधिक से अधिक तीन व्यक्ति होंगे।

"शिक्षा–संस्कार समिति" के सदस्यों की अर्हता :–

शिक्षा–संस्कार समिति के सदस्यों की अर्हताएं निम्न प्रकार होंगी :–

1. प्रत्येक सदस्य जीवन–विद्या एवं वस्तु–विद्या में पारंगत रहेगा।
2. वह व्यवहार में सामाजिक व व्यवसाय में स्वावलम्बी होगा।
3. उसमें स्वयं में विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने का प्रमाण रहेगा।
4. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलित होने का प्रमाण रहेगा।

शिक्षा–संस्कार व्यवस्था के मूल उद्देश्य :–

प्रत्येक मानव को –

1. व्यवहार में सामाजिक।
2. व्यवसाय में स्वावलम्बी।

3. स्वयं के प्रति विश्वासी।
4. श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने में पारंगत करना जिससे व्यक्तित्व व प्रतिभा का संतुलन हो सके।

शिक्षा–संस्कार व्यवस्था का स्वरूप :–

1. प्रत्येक मानव को व्यवहार व्यवसाय (उत्पादन) **शिक्षा** में पारंगत बनाना।
2. प्रत्येक मानव को व्यवसाय (तकनीकी शिक्षा) **शिक्षा** में पारंगत कर एक से अधिक व्यवसायों में स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर निपुण व कुशल बनाना।
3. प्रत्येक मानव को साक्षर बनाने।
4. "ग्राम सभा" पाठशाला की व्यवस्था, स्थानीय आवश्यकतानुसार करेगी।
5. आयु वर्ग के आधार पर **शिक्षा** प्रदान करने की व्यवस्था होगी।

शिक्षा की व्यवस्था निम्नलिखित कोटि के ग्रामवासियों के लिए की जावेगी।

1. बाल **शिक्षा**
2. बालक जो स्कूल छोड़ दिए हैं व दस वर्ष से अधिक आयु के हैं, ऐसे बच्चों को 30 वर्ष के अन्य अशिक्षित व्यक्तियों के साथ व्यवहार **शिक्षा** व व्यवसाय **शिक्षा** में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी।
3. 30 वर्ष की आयु से अधिक स्त्री पुरूषों को साक्षर बनाकर, व्यवहार **शिक्षा** में पारंगत बनाने की व्यवस्था होगी।
4. स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर आवश्यकता होने पर स्त्री पुरूषों के लिए अलग **शिक्षा** व्यवस्था होगी जो कि "स्वास्थ्य–संयम समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी।
5. व्यवसाय **शिक्षा** के लिए "शिक्षा–संस्कार समिति" "उत्पादन सलाहकार समिति" व "विनिमय–कोष समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी व सम्मिलित रूप से यह तय करेगी कि ग्राम की वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, किस–किस व्यक्ति को, किस–किस व्यवसाय की **शिक्षा** दी जाए। "विनिमय–कोष समिति" ऐसे उपायों की जानकारी देगी,जिनकी गाँव से बाहर अच्छी मांग है।
6. कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग व सेवा में जो पहले से पारंगत है, उनके द्वारा ही अन्य ग्रामवासियों को पारंगत करने की व्यवस्था की जायेगी।
7. यदि उपर्युक्त **शिक्षा** में कभी उन्नत तकनीकी विज्ञान व प्रौद्योगिकी को समावेश करने की आवश्यकता होगी तो उसको समाविष्ट करने की व्यवस्था रहेगी।
8. व्यवहार **शिक्षा** के लिए "शिक्षा–संस्कार समिति" "स्वास्थ्य–संयम समिति" के साथ मिलकर कार्य करेंगी।
9. मानवीयता पूर्ण व्यवहार (आचरण) व जीने की कला सिखाना व अर्थ की सुरक्षा तथा सदुपयोगिता के प्रति जागृति उत्पन्न करना ही, व्यवहार **शिक्षा** का मुख्य कार्य है।

रुचि मूलक आवश्यकताओं पर आधारित उत्पादन के स्थान पर मूल्य व लक्ष्य–मूलक अर्थात् उपयोगिता व प्रयोजनशीलता मूलक उत्पादन करने की **शिक्षा** प्रदान करना। जिससे प्रत्येक मानव में अधिक उत्पादन, कम उपभोग, असंग्रह, अभयता, सरलता, दया, स्नेह, स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, बौद्धिक समाधान, प्राकृतिक

सम्पत्ति का उसके उत्पादन के अनुपात में व्यय व उसके उत्पादन में सहायक सिद्ध हों। ऐसी मानसिकता का विकास करना, व्यवहार **शिक्षा** में समाविष्ट होगा।

कालान्तर में "ग्राम शिक्षा–संस्कार समिति" क्रम से ग्राम समूह, क्षेत्र सभा, मंडल सभा, मंडल समूह सभा, मुख्य राज्य समूह सभा, प्रधान राज्य सभा व विश्व राज्य की "शिक्षा–संस्कार समिति" से जुड़ी रहेगी। अत: विश्व में कहीं भी स्थित कोई जानकारी "ग्राम–शिक्षा–संस्कार समिति" को उपरोक्त सात स्त्रोतों से तुरंत उपलब्ध हो सकेगी। पूरी जानकारी का आदान–प्रदान कम्प्यूटर व्यवस्था द्वारा आपस में जुड़ा रहेगा। इसी प्रकार अन्य चारों समितियाँ भी ऊपर तक आपस में जुड़ी रहेगी। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 268–272)**

- स्वास्थ्य–संयम व्यवस्था– ग्राम के सभी व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं संयम की जिम्मेदारी, ग्राम स्वास्थ्य–संयम समिति की होगी। यह समिति **शिक्षा–संस्कार** समिति के साथ मिलकर कार्य करेगी। स्वास्थ्य–संयम संबंधी पाठ्यक्रम और कार्यक्रम को तैयार कर **शिक्षा** में सम्मिलित कराएगी। ग्राम चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था, योगासन, व्यायाम, अखाड़ा खेल कूद व्यवस्था, स्कूल के अलावा खेल मैदान (स्टेडियम), सांस्कृतिक भवन, क्लब आदि व्यवस्था का दायित्व, ग्राम स्वास्थ्य समिति का होगा। समिति स्थानीय रुप से उपलब्ध जड़ी–बूटियों द्वारा औषधि बनाने के लिए आवश्यकीय व्यवस्था करेगी। .....**(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 283–284)**
- व्यवहार में न्याय (मानवीय व्यवहार) –> विनिमय में न्याय–

..... "न्याय सुरक्षा समिति" सुरक्षा कार्य को ग्राम वासियों के तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग के आधार पर क्रियान्वयन करेगा। जैसे :–

1. ग्राम में सुरक्षा.
2. उत्पादन एवं विनिमय सुरक्षा.
3. परिवार सुरक्षा.
4. **मानवीय शिक्षा–संस्कार सुरक्षा.**
5. स्वास्थ्य संयम सुरक्षा.
6. नैसर्गिक सुरक्षा.
7. संगीत, साहित्य, कला की सुरक्षा. **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 291)**

- **शिक्षा संस्कार सुरक्षा :–**
  1. न्याय सुरक्षा समिति यह सुनिश्चित करेगी कि प्रत्येक ग्रामवासी को मानवीय **शिक्षा** (व्यवहार **शिक्षा** व व्यवसाय **शिक्षा**) ठीक से मिल रही है या नहीं। जो स्कूल छोड़ दिए हैं, स्कूल में नहीं आते हैं, उनके लिए उनके परिवार वालों से मिल जुलकर, **शिक्षा** संस्कार को सुलभ कराएगी।
  2. मानवीय **शिक्षा** में कहीं से भी व्यतिरेक उत्पन्न होता है तो उसको दूर करने की व्यवस्था करेगी।
  3. शिक्षकों का मूल्यांकन करेगी ठीक से **शिक्षा** प्रदान कर रहे हैं या नहीं ? समय–समय पर आकर मार्ग दर्शन देगी। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 294–295)**

- मूल्यांकन, प्रोत्साहन, निष्ठावान प्रक्रिया–

शिक्षा–संस्कार समिति के कार्यों का मूल्यांकन :–

"ग्राम सभा" ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति व परिवार में "शिक्षा–संस्कार समिति" के कार्यों का मूल्यांकन निम्न आधारों पर करेगी:–

1. संबंधों और मूल्यों की पहचान और निर्वाह, मानवीयता पूर्ण व्यवहार का मूल्यांकन।
2. स्वयं के प्रति विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान क्रिया का मूल्यांकन।
3. मानवीय आचरण (स्व धन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य) का मूल्यांकन।
4. ग्राम जीवन व परिवार व्यवस्था में विश्वास व निष्ठापूर्ण आचरण का मूल्यांकन।
5. ग्राम व्यवस्था व ग्राम जीवन में भागीदारी का मूल्यांकन।
6. प्रत्येक व्यक्ति व परिवार से किया गया तन, मन व धन रूपी अर्थ की सदुपयोगिता का एवं सुरक्षा का मूल्यांकन।
7. मानव स्वयं व्यवस्था के रूप में संप्रेषित, अभिव्यक्त, प्रकाशित होने व समग्र व्यवस्था में भागीदार होने व उसकी संभावना का मूल्यांकन।
8. किसी व्यक्ति में बुरी आदत हो तो उसके, उससे (बुरी आदत से) मुक्त होने के आधार पर मूल्यांकन। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 297–298)**

मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- 15. स्वायत्त – 16 समृद्धि (आवश्यकता से अधिक उत्पादन)

परिभाषा :– स्वायत्त = समृद्धि का अनुभव ही स्वायत्त है।

मूल्यांकन, आवश्यकता से अधिक होने के बिन्दु में ही तृप्ति का अनुभव होना पाया गया है। इसे हर व्यक्ति अपने में जाँच सकता है। ऐसा जाँचने के क्रम में इस तथ्य का भी मूल्यांकन होता है कि हम आवश्यकता से अधिक उत्पादन किये है या नहीं। आवश्यकता से अधिक उत्पादन परिवार की सीमा में ही मूल्यांकित होता है। परिवार में सभी सम्बन्धों का सम्बोधन जागृत मानव प्रकृति को जाँचने के लिए एक आवश्यकता है।

इस विधि से सोचा जाय तो पता लगता है कि १० व्यक्तियों के बीच में सीमित, संयत संतानों के साथ सर्वाधिक सम्बन्धों का सम्बोधन परिवार में सुलभ हो जाता है, फलस्वरूप हर के साथ कर्तव्य और दायित्व स्फुर्त होना पाया जाता है। स्वयं स्फुर्ति सदा–सदा जागृति के आधार पर सम्पन्न होना पाया गया। जागृति समझदारी के अर्थ में सार्थक है। इस प्रकार समझदार मानव ही सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति करने में सक्षम है। इसकी आवश्यकता हर मानव में रहती ही है। इसे सार्थक रूप देना मानव परम्परा का अभीष्ट है। जागृति सर्वमानव को स्वीकृत है, इस विधि से समझदारी, लोक व्यापीकरण होने का स्रोत मानव परम्परा ही है उसमे भी **शिक्षा–संस्कार** विधा ही प्रबल प्रभावी स्रोत है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 63)**

- स्वराज्य व्यवस्था के प्रधान आयाम पांच हैं :–

  (1) न्याय सुलभता (2) उत्पादन सुलभता (3) विनिमय सुलभता

  (4) स्वास्थ्य संयम सुलभता (5) **शिक्षा संस्कार सुलभता।**

  प्रथम तीनों के स्रोत के रूप में **मानवीयतापूर्ण शिक्षा संस्कार** सुलभता और स्वास्थ्य संयम सुलभताएं, समाविष्ट रहती ही हैं। यही मानव परम्परा की विवेक व विज्ञान पूर्ण गति व संगति है। प्रत्येक मनुष्य व्यवस्था को ही वरता है। व्यवस्था में, से, के लिए समृद्धि सहज है। अस्तु स्वयं व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के वैभव क्रम में ही उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनीयता प्रमाणित होती है। साथ ही आवश्यकता से अधिक उत्पादन से, शोषण विहीन विनियम से तथा न्याय सुलभता से वर्तमान में विश्वास होता है। **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर:65)**
- प्रतिभा सहित व्यक्तित्व में स्वाभाविक रूप में सर्वतोमुखी समाधान समाज न्याय, परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन में भागीदारी, स्वास्थ्य संयम में जागृति, **मानवीय शिक्षा संस्कार** सम्पन्न व्यक्ति ही व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी होता है। वह अपने आहार–विहार, व्यवहार में स्वास्थ्य संयम का प्रमाण, प्रस्तुत करता है। यही सम्पूर्ण सौंदर्य का आधार बनता है। ऐसे व्यक्तित्व रूपी, सौंदर्य अनुभूति के आधार पर ही, मानवीयता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति पूर्ण अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र और व्याख्या, स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होती है। अस्तित्व सहज रूप में, नियति क्रम विधि से, अपने मानवत्व सहित, मानव व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के लिए प्रेरित है और प्रेरक है। यह प्रत्येक मनुष्य की जीवन–सहज प्यास है। इसे परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक आकलित किया जा सकता है। यह सब जीवन और शरीर के संयुक्त अध्ययन का

फलन है। इस प्रकार प्रिय लगने वाली प्रवृत्तियां, मानव सहित व्यवस्था के अर्थ में हैं। मान्यताओं और प्रवृत्तियों के आधार पर, सदा सदा के लिए सबसे प्रिय व्यक्तित्व, सुन्दर, सुख और समाधान के रूप में, सबको सुलभ हो सकता है। मानव मानसिकता का तथा विधि सहज मानसिकता का (अथवा नियति सहज मान्यता का) फलन, हर व्यक्ति के लिए समीचीन है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 68–69)**

- मानव के "स्वत्व", स्वतंत्रता एवं अधिकार के लिए मानव ही प्रमाणों का आधार है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं को प्रमाणित करना भी चाहता है। मानव को प्राप्त **शिक्षा–संस्कारों** में प्रत्येक मनुष्य को प्रमाणित करने की अथवा प्रमाणित होने की, स्व–प्रमाणों पर विश्वास होने की अथवा कराने का स्पष्ट बिंदु, स्पष्ट विश्लेषण, स्पष्ट प्रकिया पूर्वक, स्पष्ट प्रयोजनों के साथ मनुष्य के अधिकारों को जोड़ा नहीं गया (अथवा जोड़ना संभव नहीं हुआ था)। जबकि प्रत्येक मनुष्य में जीवन समान है। जीवन शक्तियां समान है, जीवन बल समान है, जीवन लक्ष्य समान हैं, समाज–लक्ष्य समान हैं, व्यवस्था लक्ष्य समान है, (जीवन सहज समानता के आधार पर) जीवन सहज शक्ति, बल, लक्ष्य संभावनाओं की समानता के आधार पर ही, संबद्ध रहना पाया जाता है। जीवन लक्ष्य जागृति है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर:74)**
- **गुरू – प्रामाणिक**

  परिभाषा : **गुरू** :– **शिक्षा संस्कार** नियति क्रमानुवषंगीय विधि से, जिज्ञासाओं और प्रश्नों को समाधान रूप में, अवधारणा में प्रस्थापित करने वाला मनुष्य गुरू है। जागृति क्रम में मानव को अप्राप्त का प्राप्त, अज्ञात का ज्ञात करने के लिए, होने के लिए विधि, नियम, प्रक्रिया सहज समझदारी में पारंगत बनाना ही प्रमाणिकता का प्रमाण है। प्रमाणिकता पूर्ण गुरूजन ही अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व रूप में अवधारणा को प्रतिस्थापित करा सकता है। अवधारणायें अस्तित्व, विकासक्रम, विकास, जीवन, जीवनी क्रम, जीवन जागृतिक्रम, जीवन जागृति सहज रूप में, परस्परता में, अर्थात समझा हुआ और समझने के लिये तथा मनुष्यों से है। गुरूजन इन मुद्दों में पारंगत रहेंगे, यह समझदारी है, समझदारी के आधार पर ही **मानवीय शिक्षा–संस्कार** संपन्न होता रहेगा, संस्कार का तात्पर्य ही अवधारणा है। विद्यार्थियों में स्थापित होने से उसकी निरंतरता का प्रमाण व्यवहार व्यवस्था में प्रमाणित होने से है। फलस्वरूप ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहज कार्य–कलाप हर **मानवीय शिक्षा–संस्कार** सम्पन्न मानव से चरितार्थ होना पाया जाता है।

प्रामाणिक :– प्रमाणों का धारक वाहक – यथा अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण समुच्चय को प्रयोग, व्यवहार, अनुभव पूर्ण विधि से, प्रमाणित करना और प्रमाणों के रूप में जीना।

प्रामाणिकता मानव में जागृति सहज अभिव्यक्ति है। जीवन– जागृति पूर्वक मनुष्य प्रामाणिक होता है। प्रामाणिकता प्रत्येक मनुष्य की परम आवश्यकता है। इसलिए गुरू, प्रामाणिकता के रूप में सुस्पष्ट है। **शिक्षा** संस्कार के केन्द्र में जो व्यक्ति विराजमान होते हैं, उनका प्रामाणिक होना, व्यवहारिक रूप में वांछनीय है। इस प्रकार गुरू, आचार्य, प्रवक्ताओं की प्रामाणिकता ही, मानव परम्परा का त्राण और प्राण है।

प्रामाणिकता का, प्रमाणों के रूप में व्यक्त होना मानव सहज है। सम्पूर्ण प्रमाण अनुभव मूलक व अनुभवगामी प्रणाली से स्पष्ट होते हैं। प्रमाणों की अभिव्यक्ति अनुभवमूलक ही होती है क्योंकि सम्पूर्ण प्रमाण प्रयोग, व्यवहार और अनुभव ही हैं। व्यवहार और प्रयोग में जो प्रमाणित होना है वह भी, अनुभव साक्ष्य के आधार पर स्पष्ट होता

है। यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता प्रमाणित होती है। न होना, प्रमाण भी नहीं होता, सम्पूर्ण प्रमाण, प्रयोजनों के रूप में होना सहज है।

मनुष्य भी अस्तित्व में अविभाज्य है और द्रष्टा पद प्रतिष्ठा सम्पन्न है। यही अनुभव क्षमता का प्रमाण है। अनुभव क्षमता ही, दृष्टा पद में प्रकाशित है। दृष्टापद, विकास व जागृति की महिमा है। जागृति प्रत्येक मनुष्य का अभीष्ट है क्योंकि जागृति पूर्वक ही मनुष्य का निर्भ्रम और सफल होना अस्तित्व सहज है। जागृति ही अनुभव प्रकाश है। मनुष्य जीवन और शरीर के, संयुक्त रूप में प्रकाशित है। जागृति क्रम में मनुष्य, अग्रिम जागृति का प्रयास करते आया है। अभी भी प्रामाणिकता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति पूर्वक जीने की कला का समृद्ध होना समीचीन है। मानव परम्परा उनकी धारक–वाहक है, हर मानव संतान को इसकी अवश्यकता है। यह परम्परा है।

अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना की यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता के फलस्वरूप अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वसुलभ होती है। अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही मानव कुल का प्रमाण और प्रामाणिकता का प्रयोजन है तथा उसकी निरंतरता हो, यह इसलिए अनिवार्य है कि धरती में दूरी का बोझ हल्का हो गया है। यह विज्ञान की कार्य महिमा है। सार्वभौम व्यवस्था को पहचानने के क्रम में, मानव स्वयं ही अखंड समाज, समाधान, समृद्धि, अभय तथा सह–अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होता है।

सार्वभौम व्यवस्था में मानव में न्याय, विनिमय, उत्पादन, स्वास्थ्य–संयम और **मानवीय शिक्षा–संस्कार** सुलभ होता है। तभी सुखद, सुन्दर, समाधान पूर्ण समृद्ध मानव परम्परा वैभवित होगी। अतएव ऐसी सर्व वांछित घटनाओं को साकार एवं सर्वसुलभ करने के लिए प्रामाणिक परम्परा ही एक मात्र शरण है। प्रामाणिकता पूर्वक ही **शिक्षा**–संस्कार, संविधान व स्वराज्य व्यवस्थाएं सफल हो पाती हैं। इसीलिए प्रामाणिक परम्परा को पाने के लिए आचार्य, शिक्षक, गुरू, व्यवस्थापक, संविधान एवं **शिक्षा** की वस्तु का प्रामाणिक होना अनिवार्य है। इसे पाने के लिए अस्तित्व सहज जीवन–विद्या, वस्तु–विद्या का संतुलित अध्ययन, प्रतिभा व व्यक्तित्व के संतुलित उदय का अध्ययन व व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलम्बन के संतुलित क्रियान्वयन का अध्ययन, प्रामाणिक परम्परा के लिए आवश्यक है। इस प्रकार गुरू का स्वरूप, प्रामाणिकता का स्वरूप, लोक मानसिकता में स्वीकृत होना पाया जाता है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 76–78)**

- **शिष्य – जिज्ञासु**

परिभाषा : शिष्य :– जागृति लक्ष्य की पूर्ति के लिए **शिक्षा संस्कार** ग्रहण करने, स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति, जिसमें गुरू का सम्बन्ध स्वीकृत हो चुका रहता है। यही जिज्ञासात्मक शिष्टता है।

जिज्ञासु :– जीवन ज्ञान सहित निर्भ्रम **शिक्षा** ग्रहण करने के लिए तीव्र इच्छा का प्रकाशन।

समझने, सीखने, करने के लिए पूर्ण जिज्ञासा सहित प्रयत्न संपन्न व्यक्ति, शिष्य के रूप में शोभनीय होता है। सफल होने के सभी लक्षणों से युक्त वातावरण में विश्वास होना और विश्वास को वातावरण में प्रभावित करने, प्रमाणित करने की सभी प्रक्रिया अध्ययन है।

अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना, सम्पूर्ण मानव के लिए समझने–समझाने की वस्तु है। सीखने की जो कुछ भी प्रमाणित वस्तु है, यह मानव में मानवीयतापूर्ण आचरण, कर्म अर्थात व्यवसाय में स्वावलम्बन, व्यवस्था में भागीदारी, मानवीयता पूर्ण आचरण का अभ्यास, प्रामाणिकता सहज अभिव्यक्ति है। साथ ही सार्वभौम व्यवस्था और अखंड समाज में निष्ठा है। ये सम्पूर्ण जिज्ञासाएं व्यावहारिक रूप में चरितार्थ होती हैं। प्रौढ़ता की पराकाष्ठा में, से, के लिए स्वानुशासन की जिज्ञासा का होना पाया जाता है। जिज्ञासा मानव सहज प्रकाशन है।

जिज्ञासा में ही न्यायिक अपेक्षाएं संयत, नियंत्रित होती हैं। मानव मूलत: सहज रूप में सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक है, न्याय सहज अपेक्षा और सत्य वक्ता है। इस आधार पर – जिज्ञासाएं उद्गमित होते ही रहती हैं। जब तक प्रमाणिकता का स्रोत, मानव परम्परा में स्थापित न हो जाए, तब तक इसी जिज्ञासा की पुष्टि में, कल्पनाशीलता–कर्म स्वतंत्रता पुन:प्रयास के साथ क्रियान्वित रहते ही हैं। इसे प्रत्येक मनुष्य में देखा जा सकता है। सम्पूर्ण जिज्ञासाएं अज्ञात को ज्ञात करने, अप्राप्त को प्राप्त करने के क्रम में हैं। कर्मस्वतंत्रता और कल्पनाशीलता, जीवन तृप्ति के पक्ष में, प्रमाण और स्रोतों को अन्वेषण करने की प्रक्रिया है। यह सदा ही जीवन सहज अभीप्सा है। अभीप्सा का तात्पर्य – अभ्युदय के लिए कल्पना और इच्छाओं को बनाए रखने की क्रिया है।

जीवन तृप्ति का तात्पर्य – स्वराज्य और स्वतंत्रता में प्रमाणित होना है। इसे पाने के पहले, इस संदर्भ में सम्पूर्ण अध्ययन संपन्न होने में **शिक्षा–संस्कार** की प्रमुख भूमिका है। यह अध्ययन भी, जिसका एक अनिवार्य भाग है। मानव परम्परा के जागृत होने के उपरान्त ही इसके, सबको सुलभ होने की संभावना समीचीन है।

परम्परा जागृत होने का तात्पर्य है – मानवीय **शिक्षा संस्कार**, मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य रूपी अखंड समाज व्यवस्था और स्वास्थ्य–संयम सम्बन्ध में पूर्णतया प्रामाणिकता को, व्यवहार में प्रमाणित करना। यही जागृति की सफलता का स्वरूप है। इसीलिए समझदारी सहज **शिक्षा** की आवश्यकता है। जागृति परम्परा की आवश्यकता इस दशक में बढ़ रही है, जो मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित करने के स्वरों के रूप में, सुनने को मिलता है। यह सभी राजनैतिक दलों, संस्थाओं और सभी समाज–सेवी संस्थाओं के लोक शिक्षण में, धर्म नैतिक संस्थाओं इतना ही नहीं व्यापार केन्द्र संस्थाओं की, उदारता पूर्ण विधि को व्यक्त करते हुए (अथवा उदारतावादी विचारों को व्यक्त करते हुए) संवादों के रूप में सुनने को मिला है।

कम से कम, इस दशक में मानवतावादी दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल देने वाली गोष्ठियां सभी स्तरों पर पाई जाती हैं। इसलिए मानव परम्परा जागृत होने की संभावना समीचीन होती है। जागृति के आधार पर मानव संचेतना सहज वर्तमान में सभी समुदाय चेतनाएं विलय होने की घटना की संभावना समीचीन हो चुकी है। क्योंकि आदर्शवाद और भौतिकवाद सदूर विगत से अभी तक जो कुछ भी समुदायों और वर्गों का संघर्ष मतभेद और शक्ति प्रयोग (संघर्ष और सामरिक विधि से) करता हुआ मानव तंत्र के परिणाम स्वरूप आज की स्थिति में प्रदूषण, बढ़ती हुई जनसंख्या, धरती का तापमान, बढ़ती हुई समुद्र की सतह, ये सब प्रधान संकट हैं।

इन संकटों के साये में जीने का रास्ता केवल संघर्ष और युद्ध ही है। इसी मोड़ पर धरती पर जीते–जागते 600 करोड़ से अधिक मानवों को जीने के लिए मजबूर कर दिया है। यह केवल उक्त दो प्रकार की विचार प्रर्वतन योजना कार्य का ही परिणाम है।आदर्शवादी धरती के साथ कम से कम अपराध करते रहे हैं। भले ही मानव के साथ परस्पर परिवार, समुदाय, वर्ग के रूप में संघर्षरत रहे हैं। इसी संघर्ष के साथ जुड़े भौतिकवादी आविष्कारों के सहारे धरती

के साथ अपराध करना राज्य स्तर पर स्वीकृत हो चुका है अर्थात हर राज्य ऐसे अपराध करना स्वीकार कर चुका है।

पर्यावरण समस्या का मूल तत्व खनिज तेल व कोयला ही है। इसके विकल्प के रूप में सूर्य–उष्मा, प्रवाह–बल की उपयोगिता विधि व उसके लोकव्यापीकरण की आवश्यकता है। इसी से जल, थल व वायु प्रदूषण निवारण होना सुस्पष्ट है। बढ़ती हुई जनसंख्या का कारण केवल असुरक्षा, वह भी मानव में निहित अमानवीयता का भय ही है। प्राकृतिक भय के रूप में भूकम्प, बाढ़, ये सब आता ही है। इसी के साथ बीमारी भी भय का स्रोत है। जहां तक रोग की बात है औषधि, उपचार, उपाय के सहारे निराकरण कर लेना सहज है।

भूकम्प और बाढ़ जनित भय का निराकरण बाढ़ की सीमायें व भूकम्प की निश्चित दिशा में मानव को पहचानने में आता है, उसी के आधार पर इसका निराकरण होता है। जब से धरती के साथ अपराध अर्थात धरती के भीतर की चीजों का अपहरण करने के लिए या शोषण करने के लिए प्रयत्न किया है, तब से धरती की भूकम्प सम्बन्धी दिशायें विचलित हुई हैं। यह भी मानव को पता है। धरती के साथ अपराध बन्द करने पर धरती अपनी निश्चित विधि से ही अपने सौभाग्य को बनाये रखने में सक्षम है। अतएव धरती के साथ अपराध करने की स्वीकृतियों में परिवर्तन करने की आवश्यकता, इसके लिए भरपूर समझदारी की आवश्यकता है।

नासमझीवश ही मानव अपराध करता पाया जाता है। अतएव भयमुक्ति के उपरान्त ही मानव परम्परा में स्वयं स्फुर्त जनसंख्या नियन्त्रण होने की व्यवस्था है। "ऐसी व्यवस्था ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अनुसार परम्परा बनने की स्थिति में हर गांव व नगर कितने जनसंख्या के आवास योग्य हैं, इसका निर्धारण होता है। इसी विधि से जनसंख्या नियन्त्रण होना समीचीन है।

धरती का तापक्रम बढ़ना परिणामत: समुद्र में जलस्तर बढ़ना। अत: यह सुस्पष्ट है कि धरती में निहित खनिज, तेल एवं कोयला ही ताप पचाने के द्रव्य हैं। अतएव इन द्रव्यों का शोषण न किया जाए, तभी संतुलन की स्थिति आना संभव है। चक्रवात व तूफान भी अपने निश्चित दिशा व स्थान में आना पाया जाता है। इससे बचकर मानव सुखपूर्वक पीढ़ी–दर–पीढ़ी धरती पर बने रह सकता है। अतएव **शिक्षा** की परिपूर्णता मानव परम्परा में प्रमुख मुद्दा है।

जन्म से मानव संतान अनुकरण–अनुसरण करती हुई देखने को मिलती है। यही आज्ञापालन और सहयोग कार्यों में प्रमाणित होने का सूत्र है। परम्परा, जागृति और प्रामाणिकता का, सहज धारक–वाहक होने के आधार पर ही, परम्परा से अग्रिम पीढ़ी को, प्रामाणिकता पूर्ण **शिक्षा–संस्कार** सुलभ होता है। ऐसी स्थिति पाने के लिए जागृति विधि से, **शिक्षा–संस्कार** को स्थापित करना, सर्वप्रथम आवश्यकता है। फलस्वरूप मानव संतानों में सहज ही जिज्ञासा उद्गमित होना समीचीन है।

मानव परम्परा में प्रामाणिकता ही प्रधान वैभव है। जागृति ही इसका मूल स्रोत है। इसका धारक–वाहक केवल मानव है। सम्पूर्ण प्रमाणों की अभिव्यक्ति तथा संप्रेषणा का आधार भी केवल मानव है। मानव संतानों में प्रयासोदय, शैशव अवस्था में ही देखने को मिलता है। उसी के साथ–साथ आज्ञापालन और सहयोग प्रवृत्ति प्रकारान्तर से सभी मानव संतानों में देखने को मिलती है। इसी के साथ अनुकरण कार्यों में प्रमाणित करने का (अथवा अनुकरित कार्यों को प्रमाणित करने का) सिलसिला दिखाई पड़ता है।

प्रत्येक संतान में पांचों ज्ञानेन्द्रिय सहज कार्य–कलापों को व्यक्त करने की स्वाभाविक क्रियाएं देखने को मिलती हैं। यह शरीर यात्रा के आरंभ से ही होना स्पष्ट है। प्रत्येक शिशु में स्वस्थता की पहचान, परम्परा से ही पांचों

ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों के क्रिया–कलाप से ही है। इस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय पूर्वक, कर्मेन्द्रियों सहित **शिक्षा** ग्रहण करना भी देखा जा रहा है। इस प्रकार मानव संतानों में, कोई ऐसी अड़चन नहीं है कि जिसे परम्परा प्रावधानित करना चाहती है उसे वह ग्रहण न करे। इससे यह पता लगता है कि शिशु काल की अपेक्षा के अनुरूप प्रौढ़ पीढ़ी में समाधान एवं तृप्ति प्रदान करने योग्य वस्तु ही नहीं है।

शैशविक (शिशु) मानसिकता के आधार पर हर शिशु न्याय का याचक (अभिभावकों के भरोसे पर), सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक (अनुसरण और अनुकरण के आधार पर), और सत्य वक्ता होता है (सुने देखे के आधार पर), इसी से मानव संतान को क्या चाहिए पीछे पीढ़ी से यह स्पष्ट हो जाता है कि :–

1. न्याय प्रदायी क्षमता योग्यता को स्थापित करने की विधि से, न्यायापेक्षा की तृप्ति होना पाया जाता है।
2. सही कार्य–व्यवहार को करने की इच्छा की तृप्ति, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन की क्षमता, योग्यता, पात्रता को स्थापित करने के आधार पर संपन्न होता है।

सत्यवक्ता होने की तृप्ति, अस्तित्व सह–अस्तित्व रूपी सत्य बोध से होती है। अस्तित्व दर्शन से सत्य बोध, जीवन–ज्ञान से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन तथा मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होने से, न्याय प्रदायी क्षमता प्रमाणित होती है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 78–83)**

- मानव, परम्परा सहज रूप में बहु–आयामी पहचान प्रवृत्ति वर्तमान है। अस्तित्व ही, सह–अस्तित्व होने के फलस्वरूप पदार्थावस्था ने परिणामानुषंगीय विधि से, विविध तत्वों के रूप में, संतुलन को व्यक्त किया है। प्राणावस्था ने, बीजानुषंगीय विधि से, विविध वनस्पतियों के रूप में संतुलन को व्यक्त किया है। जीवावस्था में वंशानुषंगीय विधि से, अनेक प्रकार की जीव परम्परा ने, संतुलन को व्यक्त किया है। मानव के लिए संस्कारानुषंगीय विधि से, समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना सार्थकता है। इसे स्वराज्य व स्वतंत्रता पूर्वक, मानवीय संस्कृति (सम्बंधों की पहचान, स्थापित शिष्ट मूल्य का निर्वाह), मानवीय सभ्यता (मानव मूल्य व जीवन मूल्यों का वर्तमान में प्रमाणीकरण), विधि (मानवीयता पूर्ण आचारण संहिता) की रक्षा, व्यवसाय आवश्यकता से अधिक उत्पादन सहित (स्वयं व्यवस्था होने में विश्वास और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था जो – **(1) शिक्षा संस्कार** (2) न्याय–सुरक्षा (3) उत्पादन कार्य (4) विनियम कोष (5) स्वास्थ्य–संयम व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करना, मानव परम्परा की सार्थकता है। मानव, परम्परा के रूप में अखंड है। मानवीयता पूर्ण संस्कार परम्परा में, **मानवीय शिक्षा संस्कार** सार्वभौम है। मानव परम्परा में स्व–राज्य, स्वतंत्रता सार्वभौम है। मानव परम्परा में न्याय सुरक्षा, श्रम नियोजन व श्रम विनियम रूपी विनियम कार्य, सार्वभौम प्रमाणित होता है। साथ ही मानव जाति में अखंडता मानव धर्म, इसके अनुसंधान का उद्देश्य, प्रामाणिकता और सर्वतोमुखी समाधान, सार्वभौम है। इसलिए मानव, अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सहज है। **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर: 101)**
- माता ही शरीर का पोषण, भाषा का पोषण, नाम का पोषण, परिचयों का पोषण, संस्कृति का पोषण करने के क्रम में संस्कारों का निक्षेपण सहज रूप में करती है। प्रत्येक मां अपनी संतान को सम्बंधों का सम्बोधन, प्रारंभिक अवस्था में सिखाती है और जैसे ही उम्र बढ़ती है, वैसे ही सम्बोधन के साथ गौरव, विश्वास, सेवात्मक आचरणों को सिखाती है। यहां पर मानव को, मानवीयता के नाते सम्बोधनों एवं आचरणों को सिखाना आवश्यक है। जिससे सभी समुदाय चेतना, मानव संचेतना में विलय हो सके। मानव में मानवीयता पूर्ण संस्कार पोषण, बुनियादी कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति में यह महत्वपूर्ण कार्य मां से आरंभ होता है, यही मानव संस्कृति की अंकुरण क्रिया है। मानव जाति और धर्म, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था रूपी सत्य को, स्थापित करना, मानव संस्कार है। सम्बन्धों की

पहचान, शिष्टता का अभ्यास, मानव संस्कार है। मानव जाति, मानव में मानवीय सम्बन्ध, मानव समाज, मानवीय व्यवस्था (संविधान मानवीयता पूर्ण मानव का आचरण) के प्रति अवधारणाओं को स्थापित करना **शिक्षा संस्कार** है।

आरंभिक अथवा बुनियादी कार्य माता–पिता अथवा अभिभावकों और बंधुओं से सम्पन्न होता है। दूसरा, **शिक्षा** संस्थानों में दृढ़ होता है। राज्य व्यवस्था, संविधान पूर्वक पूर्ण एवं मूल्यांकित व प्रमाणित हो पाता है। इस प्रकार मां का पोषण कार्य शरीर, संस्कार, शिक्षा, व्यवहार, आचरण की बुनियाद है। (माता –पोषण) **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर:104–105)**

- पिता – संरक्षण

  परिभाषा : संरक्षण :– जीवन जागृति के क्रम में निर्बाधता। सुगमता के अर्थ में है। संतान को, संतान के रूप में स्वीकार किये हो, ऐसी स्थिति में वे अभिभावक (अभ्युदय भावना सम्पन्न) अपने बच्चों का संरक्षण करते हैं यह एक सर्वसाधारण क्रिया है।

  प्रधानत: पिता संरक्षण में, माता पोषण में सर्वाधिक रूप में प्रमाणित होते हैं या होना चाहते हैं। संरक्षण का प्रधान कार्य स्वास्थ्य, **शिक्षा– संस्कार**, संस्कृति–सभ्यता, आचरण और मूल्यों का आस्वादन, ये प्रधान मुद्दे हैं। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर:105)**

- संस्कार, नाम–जाति, धर्म, दीक्षा, **शिक्षा** सहज रूप में आवश्यक है। नाम संस्कार संबोधन के अर्थ में, जाति संस्कार – मानव जाति के अर्थ में, धर्म संस्कार मानव–धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) के अर्थ में, दीक्षा–संस्कार जीवन जागृति, स्वानुशासन के अर्थ में सार्थक है। **शिक्षा संस्कार** पहले कहे चारों संस्कारों को सार्थकता प्रदान करते हुए –
  1. अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित
  2. स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान
  3. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन का उदय।
  4. व्यवहार में सामाजिक (धार्मिक) तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी प्रमाणित होने के रूप में, मानवीय संस्कार सार्थक होता है।

  फलस्वरूप सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहजता से संपन्न होता है। साथ ही मानवीय संस्कृति और सभ्यता स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होती है। इसका आधार है अखंड समाज में भागीदारी, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी। इस प्रकार **मानवीय शिक्षा संस्कार** पूर्वक, पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित होना, सहज है। **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर: 106–107)**
- ....जागृत मनुष्य में दया, कृपा, करूणा, सहज ही प्रवाहित होती है। जो स्वयं सुख, सुन्दर, समाधान है। ऐसी जीवन शैली व परम्परा को, मानव के लिए अनुसंधान करना आवश्यक रहा है। वह सुलभ हो गया है। इसके सर्व सुलभ होने के लिए ही **मानवीय शिक्षा–संस्कार परम्परा**, मानवीय संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, अखंड समाज और उसकी निरंतरता आवश्यक है। यह पूर्णतया कृपा, करूणा पूर्ण स्वभाव का ही कार्यक्रम है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:125)**

- जागृति परम्परा ही, मानव का एक मात्र शरण है। इसकी संभावना नित्य समीचीन है। जागृति परम्परा में ही **मानवीय शिक्षा–संस्कार** सुलभ होता है। अध्ययन पूर्वक विकास और जागृति का लोकव्यापीकरण सहज है। जागृति क्रम में सहज ही कृतज्ञता–सौम्यता से प्रत्येक व्यक्ति व परिवार सम्पन्न होता है।**(अध्याय:5.21, पृष्ठ नंबर: 131)**
- व्यवस्था में न्याय सुरक्षा सुलभता, विनिमय कोष सुलभता, उत्पादन कार्य सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता और मानवीय **शिक्षा संस्कार** सुलभता का संयुक्त रूप है। इसी व्यवस्था में जीने की कला, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, व्यवस्था में भागीदारी का, संयुक्त रूप में प्रकाशित होना पाया जाता है। यह मानव संस्कृति का मध्य बिंदु है। मानव अपनी संस्कृति को व्यक्त करता है। उस समय आवास, अलंकार, उत्सव, सम्मिलित उत्सव, मानवीयता का प्रकाशन, प्रदर्शन और प्रचार, ये सब प्रधान रूप में रहना स्वाभाविक है। **(अध्याय:5.21, पृष्ठ नंबर:140)**
- समझदार व्यक्ति, समझदार व्यक्ति के साथ पूरक होना परिवार में चिन्हित हो जाता है प्रमाणित होता है। फलस्वरूप समाधान समृद्धि हर जागृत परिवार में प्रमाणित होता ही है। ऐसे परिवार में हर व्यक्ति उपकार अर्थात् उपाय पूर्वक उत्थान (जागृति और विकास के अर्थ में किया गया तन, मन, धन रूपी अर्थ का प्रयोग उपयोग) से है। जागृति पूर्वक अर्थ का सदुपयोग होना प्रयोजनशील होना, प्रमाणित होता है। इसी तथ्यवश समझदार परिवार में भागीदारी करने वाले उपकार कार्य में प्रवृत और कार्यरत होते है। यह समाधान समृद्धि का वैभव रूपी प्रमाण है। वैभव का तात्पर्य स्वीकारने योग्य प्रयोजन, आचरण, और समझदारी से है। इस प्रकार उपकार करने वाले होने वाले का योग, संगीत अर्थात सार्थकता के अर्थ में उभय स्वीकृति के रूप में सम्पन्न होना पाया जाता है। इस प्रकार प्रयोजनशील सार्थकवादी उपकार कार्यक्रम **शिक्षा संस्कार** के रूप में ही सार्थक होना पाया जाता है। हर मानव समझदारी से संपन्न होने के उपरांत ही स्वायत्त सम्पन्न होता गया। ऐसी स्वायत्तता को छ: प्रकार से पहचाना गया प्रमाणों के रूप में विदित कराया जा चुका है। ऐसे समझदार मानव की पहचान पहले समझाये गये छ: समाधान सहज गति के रूप में होने के आधार पर ही हर आयाम दिशा कोण के परिपेक्ष्यो में लिया गया निर्णय समाधानकारी होना स्वाभाविक है। स्वाभाविक का तात्पर्य व्यक्ति जो समझदार हुआ रहता है उनमें समाधानकारी न्यायकारी, प्रयोजनकारी निर्णय बिना दूसरे के सहायता के सम्पन्न होता है। फलत: उपकारकारी होता है। इस प्रकार समझदार परिवार में भागीदारी करने वाले सभी नर नारी उपकारकारी कार्य में प्रवर्तित होते हैं। उपकार कार्य में तीन स्वरूप को पहचाना गया है वह समझा हुआ को समझाना, किया हुआ को कराना, सीखा हुआ को सिखाना ही है। सीखा क्रिया के मूल में समझदारी ही सबल, सार्थक प्रवर्तन है। मानव का प्रवर्तन सह–अस्तित्ववादी विचार शैली के आधार पर सार्थक होना पाया गया। फलस्वरूप समझकर सीखने का सिद्धांत अपने आप सार्वभौम हो जाता है। सार्वभौमता का तात्पर्य सर्वमानव में स्वीकार होने से है। अतएव उल्लेखनीय बिन्दु यही है कि हर नर–नारी समझदारी पूर्वक ही परिवार में भागीदारी करता है। फलत: परिवार सार्थकता रूपी समाधान, समृद्धि रूपी उपकार हर समझदार परिवार में स्वस्फूर्त विधि से प्रमाणित होता है। उपकार विद्या ही मुख्य बिन्दु है। धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा का प्रमाण सर्वविदित होने और सर्वसुलभ होने का तथ्य है। धीरता वीरता पूर्वक मानव सम्पूर्ण उपकार कार्य करता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:165–166)**
- अध्ययन के लिए, सह–अस्तित्ववादी, विश्व दृष्टिकोण, **अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान**, समीचीन हुआ है। इसके आधार पर जीवन ज्ञान सम्पन्न होकर, स्वयं के प्रति विश्वास, और श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व का संतुलित उदय, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में (उत्पादन में) स्वावलम्बी बनता है। फलस्वरूप

अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने की अर्हता स्थापति हो पाती है और अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, सहज सफल होती है। मानव सहज मौलिक भाव और संवेग पूर्वक इसी क्रम में जीवन अपने सम्पूर्ण वैभव को जानने, मानने के क्रम में भाव और संवेगों को पहचानने के क्रम में यह मनोविज्ञान प्रस्तुत है। इसीलिए मानवत्व रूपी भाव सहित, मानवीय आचरण व्यवहार को और **मानवीय शिक्षा संस्कार** को पहचानना ही एक मात्र उपाय है। इन सबके मूल में, अस्तित्व में मानव का अध्ययन ही प्रधान बिंदु है। सह–अस्तित्व रूपी अस्तित्व ही सम्पूर्ण भाव है। **शिक्षा** स्वयं में भाव है, वह सम्पूर्ण वस्तु (वास्तविकता) का स्रोत है। **जागृत शिक्षा** सहज अध्ययन से सम्पूर्ण भाव विदित होता है, विदित हुआ है। मूल्य स्वयं भाव है, अखंड समाज का यह सूत्र है। व्यवस्था एक भाव है। न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता, उत्पादन सुलभता, स्वास्थ–संयम सुलभता और **मानवीय शिक्षा संस्कार** सुलभताएं उसके रूप, गुण, स्वभाव, धर्म, मात्रा, उपयोग, सदुपयोग प्रयोजनशीलता के आधार पर ध्रुवीकृत होता है, परम्परा में सार्थक होता है। हरेक क्रिया के मूल में रूप, गुण, स्वभाव व धर्म अविभाज्य है। रूप और गुण में से गुण ही अर्थात गति ही संवेग है, स्वभाव व धर्म भाव है।। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:169)**

- 'स्वराज्य" का तात्पर्य न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता व उत्पादन सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता, मानवीय **शिक्षा संस्कार** सुलभता से है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:179)**
- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था की अक्षुण्णता के लिए **मानवीय शिक्षा संस्कार** व स्वास्थ्य संयम की अनिवार्यता है। तभी न्याय सुरक्षा, उत्पादन कार्य और विनियम कोष कार्य सुचारू रूप में संचालित हो पाता है, यही पाँचों आयाम परिवार मूलक स्वराज व्यवस्था की नित्य गति है। यह समझदारी और जागृति पूर्वक ही सार्थक होना पाया जाता है। मानवीय **शिक्षा संस्कार** अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिन्तन–ज्ञान सहज उद्यम है, जिससे पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था व ज्ञानावस्था (मनुष्य) का अध्ययन, सह–अस्तित्ववादी विधि से सम्पन्न होता है।...**(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:181)**
- कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिंदु स्वतंत्रता है जो स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होता है। स्वानुशासन जीवन–जागृति, मानव जागृति, अस्तित्व में जागृति का प्रमाण है। जबकि स्वतंत्रता, मानव परम्परा अर्थात **मानवीय शिक्षा संस्कार**, संविधान, राज्य व्यवस्था का सामरस्यता है। यही अस्तित्व में, मानव के जागृत होने का साक्ष्य है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:181–182)**
- इस धरती में भौतिक व रासायनिक क्रियाकलाप परम्परा के रूप में स्थापित होने के उपरान्त तक, पदार्थावस्था व प्राणावस्था का समृद्ध होना, भ्रमित मनुष्य पहचानता है। इसी क्रम में जीवावस्था के जलचर, नभचर, भूचर जीवों को पहचानता है। इतना ही नहीं, मानव परम्परा को अथवा मानव प्रकृति को भी इस धरती पर होना, मानव भली प्रकार से पहचानता है। ऐसी भ्रमित अवस्था तक में भी मनुष्य शरीर सर्वाधिक विकसित है यह पहचानता है। अपनी परम्परा को अभी तक समुदाय चेतना में ग्रसित रहते हुये भी, संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था के नाम पर (अर्थात **शिक्षा–संस्कार**, संविधान और राज्य व्यवस्था के रूप में) परस्परता को पहचानने का प्रयास सुदूर विगत से भ्रमित मानव ने किया। अभी जिस प्रकार से मनुष्य है, वह सर्वविदित है। मनुष्य की सम्पूर्ण संप्रेषणा, अनुभव, विचार, व्यवहार, उत्पादन व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है। इसलिए जागृति–विधि साधना को व्यवस्था में जीने के रूप में पहचानना एक अपरिहार्यता समीचीन है। संभावना और समझदारी सहज आपूर्ति के अर्थ में यह मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र है। **"जागृति विधि साधना"– अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित**

चिंतन का फल है। यह "जीवन–विद्या" पूर्वक, जीवन–ज्ञान अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण पूर्वक संपन्न होने वाली प्रक्रिया है। प्रत्येक मनुष्य, जीवन और शरीर के, संयुक्त साकार रूप में है, यह जीवन–विद्या में स्पष्ट हो जाता है। जीवन सहज रूप में चयन, आस्वादन, विश्लेषण, तुलन, चित्रण व चिंतन, संकल्प, बोध और प्रामाणिकता अनुभव है। यह अक्षय रूप मानव में है, यही जीवन विद्या का सार और स्वीकृत है। इसीलिए यह सार्वभौम होना स्पष्ट है, आवश्यक है। ये सभी क्रियाएं जीवन में अविभाज्य हैं। ऐसी अविभाज्यता को मानव परम्परा में प्रमाणित करना ही जीवन सहज न्याय, सुख, शांति, संतोष, आनंद के रूप में है और मानव सहज न्याय सूत्र, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में सूत्र प्रमाणित होता है। जीवन क्रियाकलाप अविभाज्य रहते हुए न्याय अर्थात मानव धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) और सत्यपूर्ण प्रणाली से कार्य करने की व्यवस्था प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए समीचीन है। **(अध्याय:5.21, पृष्ठ नंबर:183–184)**

- मानव का अध्ययन ही जागृत मानव परम्परा के लिए प्रमुख कार्य है। अस्तित्व में जागृत मनुष्य ही द्रष्टा पद में है। जागृत मनुष्य अपने जीवन के रूप में द्रष्टा है। शरीर के रूप में मानव परम्परा है। साथ ही परम्परा की संपूर्णता, **मानवीय शिक्षा संस्कार**, मानवीय संविधान और मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है, यह दृष्टा पद के आधार पर ही सार्थक होता है। यही अध्ययन, अवधारणा, अनुभव योजना, कार्य योजना का फलन है।**(अध्याय:5.31, पृष्ठ नंबर:194)**
- जागृत मानव सहज स्वराज्य और स्वतंत्रता पूर्वक सम्पूर्ण प्रमाणों को प्रस्तुत करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। स्वराज्य कार्य–कलाप में प्रमाणित होने के क्रम में स्वाभाविक रूप में हर मुद्दे, हर परिस्थिति संयोग योग वियोगों में सार्थकता को अनुभव करने योग्य हो जाता है। नियति सहज घटना क्रम में मंजिल अपने आप में विकास और जागृति ही है। मानव सहज अध्ययन क्रम में यह हमें समझ में आया है कि जीवन विकसित वस्तु है शरीर विकासशील वस्तु है। जीवन विकास के अनंतर जागृति मंजिल को पाना ही एक मात्र उद्देश्य नियति विधि से स्पष्ट है। जागृति सहज आवश्यकता मानव में सदा सदा निहित है ही। यही संस्कारानुषंगीयता का संभावना सहज सूत्र है। इसी सूत्र के अनुरूप शोध और अनुसंधान मानव के द्वारा ही संपादित करना नियति है। यही रहस्य मुक्त प्रणाली बद्ध निश्चित प्रक्रिया है। यह यांत्रिकता से भी मुक्त है। इसे संप्रेषित अभिव्यक्त करने के क्रम में श्रुति अपने महत्व को स्पष्ट करता ही है जैसे यह वांङमय अपने में एक मिसाल है ही। सह–अस्तित्ववादी श्रुति के अनुसार अस्तित्व सहज स्थिरता से बोध सुलभ हो जाता है। जैसे सत्ता में संपृक्त प्रकृति।

  सह–अस्तित्व सहज का मूल रूप यही है। यह बोध सुलभ होना आवश्यकता और समीचीनता है ही। श्रुति संयोजन पूर्वक यह बोध सुलभ होता हुआ अनेकानेक नर–नारियों के साथ अध्ययन विधि को प्रयोग कर चुके है यह सहज ही बोध होना पाया गया है। मानव जितना अधिकाधिक सार्थक विचार शैली के लिए जिज्ञासु बन चुका रहता है निरर्थकता का समीक्षा बन चुकी रहती है। ऐसे मन: पटल पर यह सह–अस्तित्व वादी मूल रूप तत्काल ही जानने–मानने में होता हुआ देखा गया है। देखा गया का तात्पर्य समझा गया है। इस तथ्य के आधार पर आगे और भी सफल कार्य गवाहित हुए है। इसे प्राथमिक **शिक्षा** के रूप में श्रुति बद्ध किया गया, प्रयोग किया गया है। यह हर मानव संतान में स्वीकृत होना, इंगित होना पाया गया है। आगे और भी प्रयोग श्रृंखला **शिक्षा** विद्या में संपन्न करने का उद्देश्य है ही यह मानव संचेतना वादी मनोविज्ञान रूपी श्रुति भी **जागृत मानव शिक्षा संस्कार** की कड़ी के रूप में सार्थक होने का उद्देश्य निहित है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर:195–196)**

- हर जागृत मानव परिवार में **शिक्षा संस्कार** प्रयोजन प्रयोग, प्रमाणों को स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकित किया करता है यह परिवार संतुष्टि के लिए अति आवश्यक प्रक्रिया है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर:199)**
- सर्वमानव जागृत रहने की स्मृति से ऊपर चिन्हित किये गये (पृष्ठ– 197–202) परिवारों के स्वरूप में होता। ऐसा परिवार, व्यवस्था में भागीदारी कर पाता है। इसलिए गांव या मोहल्ला में, कम से कम १०० परिवार, व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होने की स्थिति में, ग्राम परिवार या मोहल्ला परिवार की व्यवस्था साकार होना सहज है। व्यवस्था के साकार होने का तात्पर्य, न्याय सुलभता व विनियम–सुलभता व उत्पादन सुलभता स्वास्थ्य संयम सुलभता, **मानवीय शिक्षा संस्कार** सुलभता होने से है। इस प्रकार स्वराज्य व्यवस्था के पांचों अवयव परस्पर पूरक और गति है। इसके विशद अध्ययन के लिए समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद, मानव के लिए अर्पित है। ये तीनों वाद विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से, तर्क प्रणाली पहचान सकते हैं। उसी विधि से तीनों वादों को अर्पित किया है। इसी के साथ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र, आवर्तनशील अर्थ शास्त्र एवं व्यवहारवादी समाजशास्त्र अर्पित है।... **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 202–203)**
- सम्बंधों का स्वीकार सहित जीने का क्रम **मानवीय शिक्षा संस्कार** पूर्वक ही स्पष्ट और स्वीकार हो पाता है फलत: निष्ठा होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। मानव परम्परा की जागृति का पहला स्वरूप **शिक्षा संस्कार** ही है। यह विज्ञान क्रम विधि उपक्रम पूर्वक, जड़ चैतन्य प्रकृति का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रधानत: चैतन्य प्रकृति का अध्ययन करना विज्ञान संसार में रिक्त रहा है। अभी इसको सुगम रूप में अपना लेना बनता है। परमाणु सहज ज्ञानार्जन अथवा भाषा विज्ञान संसार दावा के रूप में प्रस्तुत करता ही है। इसलिए विज्ञानियों को गठनपूर्ण परमाणु को स्वीकारने में कोई बाधा दिखाई नहीं पड़ती। बाधा न बाधा एक ही है कि दुष्ट सामरिकता के लिए तरफदारी जिसके आधार पर आजीविका बिताता हुआ अनेकानेक विज्ञानी कहलाने वाले मेघावियों को तकलीफ हो सकता है क्योंकि गठनपूर्ण परमाणु के आधार पर जागृति तूल पकड़ना आता ही है और परमाणु सहज वैभव सम्पूर्ण जड़ चैतन्य प्रकृति सहज व्यवस्था का मूलरूप होना प्रतिपादित हो जाता है।

  सबसे बड़ा संकट यही है कि इसको पकड़ कर अर्थात जीवन परमाणु को पकड़ कर विघटित कर देखने के इरादे निष्फल इसलिए होते हैं कि परमाणु को पकड़ धकड़ कर उनमें निहित अंशों को घटा बढ़ाकर कुछ नई विपदाओं को पैदा करते हैं। यह हविश जीवन परमाणु के साथ पूरी नहीं होगी क्योंकि अभी तक जितने भी पकड़ धकड़ वाले है जीवन सहज अक्षय कल्पना के आधार पर ही किये है। यही सबसे बड़ा संकट है, इसे दोहराया गया।

  व्यवस्था सहज विधियों को, निश्चयन सहज विधियों को, स्थिर सहज विधियों को आवश्यकता के रूप में स्वीकारने की स्थिति में विज्ञानी, सामाजिक चेतना में और जीवन जागृति और उसके प्रमाणीकरण क्रियाकलाप में विधिवत भागीदारी कर सकते है। काल क्रम संयोग प्रकृति जहां भी विज्ञान मानसिकता अपने को अतिमहत्वपूर्ण मानता है उसमें से दूरसंचार कार्य, कार्य योजना, तकनीकी मानव कुल के लिए सार्थक है अन्य सभी निरर्थक सिद्ध हो चुका है। जैसे बीजगुणन, इसकी स्थिरता होती नहीं है। नस्ल सुधार जिसकी स्थिरता होती नहीं है। कृत्रिम स्वाद, धरती को बर्बाद, विषाक्त करता है कीटनाशक खाद्य को विषाक्त बनाता है। खनिज तेल और कोयला धरती के वातावरण को क्षतिग्रस्त कर चुका है।

अस्तु, सामाजिक ज्ञान विवेक व्यवहार तंत्र जागृति प्रमाण सूत्रित होने के लिए आवश्यकता महसूस होने की स्थिति में चैतन्य पक्ष को समझने की आवश्यकता समीचीन है ही क्योंकि शरीर रचना विधि क्रम में मानव विश्लेषित नहीं हो पाया। इसलिए जीव मानसिकता के सदृश्य ज्ञान गलियारा सर्वाधिक सहायता किये रहा।

अस्तित्व मूलक, मानव–केन्द्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व में, विकास क्रम में, रासायनिक भौतिक रचनाएं–विरचनाएं स्पष्ट होती है। परमाणु विकास पूर्ण (गठनपूर्ण) होने के उपरान्त, चैतन्य पद में संक्रमित होता है यह समझ में आता है। ऐसी चैतन्य इकाई का जीवन पद में होना, समृद्ध मेधस युक्त शरीर को संचालित करना तथा मानव शरीर व जीवन के संयोग से जागृति को प्रमाणित करना ही, उद्देश्य है। इसी क्रम में मानव विकल्पात्मक विश्व–दृष्टि को विकसित करना, आवश्यक रहा। इसी तथ्यवश, अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित विश्व दृष्टि का, लोक व्यापीकरण विधि से विवेक और विज्ञान का मानव व्यवहार में प्रमाणित होना ही विकल्प का प्रयोजन है।

मानव व्यवहार का तात्पर्य और प्रमाण है अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का वर्तमानित होना। "जीवन–विद्या" का लक्ष्य स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान है। जीवन–विद्या में पारंगत अधिकांश व्यक्तियों में इस प्रभाव को देखा गया है।

दूसरे चरण में मानववाद है जो अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को, लोक व्यापीकरण करने के कार्यक्रम को प्रस्तुत करता है। इसके अध्ययन से मानव संस्कार सुलभ होता है। इसके अवगाहन से, मानवीय संस्कार से, देव–मानव व दिव्य मानव कोटि का संस्कार, स्वयं स्फूर्त होता है।

इसकी पुष्टि के लिए, जीवन सहज कार्य–कलापों को, परस्पर परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक जागृत होने की विधि को सर्व सुलभ करता है। जिससे नि:श्रेयस की, आदिकालीन वांछा रही है, वह भ्रम–मुक्ति के रूप में सुलभ हो गया है। जिसका लोकव्यापीकरण करना शुरु किया है।

अभ्युदय ही सर्वतोमुखी समाधान के रूप में, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में व्यवहारान्वित होता है। ऐसा सर्वतोमुखी समाधान सर्वसुलभ होने के लिए विवेक व विज्ञान का सम्मिलित रूप में **मानवीय शिक्षा संस्कार** के रूप में प्रमाणीकरण की आवश्यकता है।

विवेक व विज्ञान में सामरस्यता ही सर्वतोमुखी समाधान और न्याय सुलभता का सहज स्रोत है। यह प्रत्येक व्यक्ति में समीचीन है। जन जीवन में जागृति रूप देने के लिए विज्ञान व विवेक सम्मत **शिक्षा** क्रिया का लोकव्यापीकरण आवश्यक है। और न्याय, धर्म, सत्य को स्वीकार करने वाली क्रिया के रूप में, मेधा जीवन सहज रूप में सार्थक होता है (यह प्रत्येक व्यक्ति में समीचीन है)। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 208–210)**

- प्रेमानुभूति योग्य जन–मानस का निर्माण करने के लिए **मानवीय शिक्षा संरकार** की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। **शिक्षा** ही जीवन विश्लेषण पूर्वक, यथार्थताओं वास्तविकताओं पर आधारित, जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट करती है। यही प्रत्येक मनुष्य में पाई जाने वाली कामना एवं उसकी आवश्यकता है। यही **शिक्षा** का दायित्व है। **शिक्षा** ही जीवन में गुणात्मक परिवर्तन का स्रोत है चरितार्थ होने का आधार है। अंततोगत्वा यही अनुभव के लिए प्रेरणा है। वरिष्ठ अनुभूति, प्रेमानुभूति ही है। यही पूर्णतया सामाजिक एवं व्यवहारिक है।
  जागृति पूर्णता से सम्पन्न जीवन की आकांक्षा मानव में प्रसिद्ध है अथवा प्रसिद्ध होने योग्य है। उसके योग्य वातावरण निर्माण करना ही सामाजिक कार्यक्रम है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है। यही समाधान, विश्राम एवं स्वर्ग है। सम्पूर्ण

प्रकार के संयम, प्रमाण, और प्रमाणिकता का संप्रषेण और अभिव्यक्ति है। यही अखंडता सार्वभौमता, अक्षुणता सहज स्रोत और गति है यही जागृति परम्परा है। प्रेमानुभूति की चरितार्थता है। **मानवीय शिक्षा संस्कार**, समझदारी, सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज, संस्कृति सभ्यता, विधि, मूल्यांकन, निरीक्षण, परीक्षण, संप्रेषणा, प्रकाशन, संगीत, स्वर, लय, श्रुति, उत्सव, मानव सम्बंध और नैसर्गिक सम्बंधों में जीने की कला, स्थिति, गति समुच्चय प्रेमानुभूति सहज है। समझदारी सहित जागृत मानव सहज किया गया प्रत्येक क्रिया प्रक्रिया एवं कार्यक्रम के फलन में मानव लक्ष्य, जीवन लक्ष्य सार्थक होता है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर:228–229)**

- वात्सल्यता अपने आप में भावी पीढ़ी में जागृति को सार्थक बनाने में निश्चयन के साथ उत्सवित रहने का उद्गार ही वात्सल्य कहलाता है। हर सम्बंधों के साथ उत्सव के साथ ही उद्गार होना देखा गया है। ऐसे उद्गार स्वयं भाषा के रूप में शब्द के रूप में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है। हर मानव भाषा भाव भंगिमा, अंगहार समेत ही प्रस्तुत होता है इससे पता लगता है कि मानव परम्परा में भाषा भावों का संप्रेषित करने का एक सहज स्रोत है। भाव ही मौलिकता और मूल्य है। प्रमाणों में जितने भी तथ्य आये रहते है उसका भाषा तो बना ही रहता है जो आये नहीं रहते है उसके सम्बंध में पहले से भी भाषा बना ही रहता है यही मानव परम्परा का अत्यंत चमत्कारी अथवा अग्रिम गतिकारी अभिव्यक्ति है। सर्वाधिक विद्याओं में अनुसंधान न होने के पहले से ही अनुसंधान होने वाले वस्तु का नामकरण परम्परा में होना पाया जाता है जैसे अस्तित्व, सह–अस्तित्व, सत्य, धर्म, न्याय, समाधान, नियम ये सब शब्द हर भाषा में प्रकारान्तर से परंपराओं में प्रचलित है ही।

  क्योंकि सह–अस्तित्व को परम सत्य के रूप में समझना, सम्बंध मूल्य मूल्यांकन उभय तृप्ति संतुलन को न्याय के रूप में, व्यवस्था में भागीदारी को समाधान के रूप में, सह–अस्तित्व, जीवन और मानवीयता पूर्ण आचरण को समझदारी के मूल तत्व के रूप में, मानव जाति को अखंड समाज के अर्थ में, मानवीयता पूर्ण व्यवस्था को सार्वभौम व्यवस्था के रूप, **मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार** को संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था के रूप में, मानव लक्ष्य को समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व के रूप में, मानव सहज लक्ष्य पूर्ति के लिए दिशा को व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में समझा गया है। इसे समझाने की व्यवस्था भी प्राप्त कर ली है। इसलिए अब हमें यह भरोसा है कि मानव संतान में, से, के लिए मानव परम्परा को जागृति पूर्वक लक्ष्य और दिशा के रूप में पहचानना संभव हो गया है। इन्हीं आधारों पर अथवा प्रामाणिक आधारों पर यह मनोविज्ञान अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुआ है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 233–234)**
- प्राकृतिक संतुलन के लिए आर्वतनशीलता भी आवश्यक प्रणाली है और धरती के ऊपरी सतह में जो कुछ भी वस्तुएं है उनका अनुपाती अर्थात प्राकृतिक संतुलन के साथ आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन वस्तुओं का उत्पादन उपयोग सदुपयोग करना, प्रकृति के साथ मानव का पूरकता संपन्न होता हुआ प्रमाणित होता है। यह परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विश्व परिवार के रूप में जागृत होने के उपरांत ही सार्थक सुलभ होना प्रमाणित होता है।

  ऐसी परम स्थिति को पाने के लिए परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को एक ग्राम या मुहल्ले में प्रमाणित करना ही शुभारंभ है इसके लिए हम कटिबद्ध है प्रयत्नशील है। परिवार से ग्राम परिवार के साथ ही नैसर्गिक और मानव सम्बंध का पहचान और निर्वाह आरंभ होता और विश्व परिवार सभा तक विस्तृत होता है इसी क्रम में मानव तथा नैसर्गिक सम्बंधों का निर्वाह और पूर्ण तृप्ति और संतुलन सर्वसुलभ होता है। जागृति पूर्वक ही परम्परा में जागृति की

ओर **मानवीय शिक्षा संस्कार** पूर्वक लक्ष्य और दिशा निर्धारित और स्वीकृत हो जाता है फलस्वरूप इसका प्रमाण जागृति के रूप में हर पीढ़ी से पीढ़ी में सहज होता है। हर मानव **शिक्षा संस्कारपूर्वक** ही जीवन जागृत होता है, प्रमाणित होता है यही परम्परा है। उसी के साथ यथार्थता, वास्तविकता, व सत्यताओं को जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने की अर्हता बना ही रहता है। जागृत जीवन सदा ही अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्नता को जानता है, मानता है और पहचान लेता है। निर्वाह करने के लिए तत्पर रहता है। ऐसा होते हुए जीवन शक्तियों का दूर दूर तक फैलने बहने की क्रिया–कलापों के साथ, प्रवर्तन व्यवस्था जीवन में समाई रहती है।

जीवन जागृति ही, मानव का परम लक्ष्य है। दूसरा लक्ष्य स्वयं व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदार होना है। तीसरा लक्ष्य स्वयं समाजिक होना तथा अखंड समाज में भागीदारी का निर्वाह करना है। चौथा लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना है। परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना समृद्धि का स्वरूप है। इन लक्ष्यों को पाने के लिए मानवीय **शिक्षा संस्कारों** को पाना (अथवा उसका सर्वसुलभ होना) और स्वास्थ्य संयम को बनाए रखना है।... **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर:239)**

- "स्थिति सत्य", "वस्तु स्थिति सत्य", "वस्तु गत सत्य" को जानना–मानना, अनुभव करना, अस्तित्व–दर्शन सूत्र है। कारण, गुण, गणितात्मक मानव भाषा को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानवीयता पूर्ण संप्रेषणा सूत्र है। वास्तविकता, यथार्थता व सत्यता पूर्ण विधि से, सम्पूर्ण कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत–कारित अनुमोदित कार्यक्रमों को परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और प्रामाणिकता व स्वानुशासन रूपी कार्यक्रमों में जानना–मानना, अनुभव करना यह जागृति पूर्ण मानव परम्परा सूत्र है। निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पूर्ण **शिक्षा संस्कार** सहजता को जानना–मानना और अनुभव करना यही **मानवीय शिक्षा सूत्र** है। जीवन सहज सम्पूर्ण क्रियाकलापों को जानना–मानना और अनुभव करना जीवन विद्या सूत्र है और मानवीयता पूर्ण व्यवहार, स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन, को जानना–मानना व्यवहार सूत्र है। व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता विधि को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानव परिवार सूत्र है। **(अध्याय:5.5, पृष्ठ नंबर:252)**

मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण:प्रथम, मुद्रण:2007)

- संविधान – पूर्णता के अर्थ में अनुभव–प्रमाण व्यवहार–कार्य रूप में संविधान है।समझदारी के रूप में अनुभव प्रमाण मूलक **शिक्षा संस्कार** परंपरा सहज प्रावधान ही संविधान का प्रमुख भाग है। हर नर–नारी में–से–के लिए समझदारी सम्पन्न होने का अधिकार सहज मानवीय **शिक्षा** सहज प्रावधान फलस्वरूप मानव चेतना सहज प्रतिष्ठा सहित देव चेतना, दिव्य चेतना सहज प्रमाण ही संस्कार और यही संविधान। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:31)**
- **मानवीय शिक्षा–संस्कार प्रकाशन परम्परा**

  मानवीय शिक्षा = शिष्टता अर्थात् अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण सम्पन्न अभिव्यक्ति संप्रेषणा।

  संस्कार = समझदारी सहित ईमानदारी, जिम्मेदारी व भागीदारी में स्वतंत्रता।

  हर जागृत मानव ही ज्ञान–विवेक–विज्ञान सम्पन्नता पूर्वक मानव लक्ष्य को सुनिश्चित करता है और जिम्मेदारी, भागीदारी सहित अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या के रूप में कार्य–व्यवहार में प्रमाणित होता है यही स्वत्व, स्वतन्त्रता, अधिकार है।

  स्वत्व = समझदारी सम्पन्नता और अभिव्यक्ति सम्प्रेषणा।

  स्वतंत्रता = स्वयं स्फूर्त विधि से समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी में–से–के लिये प्रमाण परंपरा।

  हर जागृत मानव समझदारी सहित मानवत्व रूपी अधिकार को प्रमाणित करने में स्वतंत्र है।

  अधिकार = समझदारी सहज समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को वर्तमान में प्रमाणित करना, कराना, करने के लिए सहमत होना।

  स्वराज्य = मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी परंपरा।

  स्वराज्य अर्थात् मानवत्व सहित दस सोपान में सार्वभौम व्यवस्था के रूप में समाधान, समृद्धि , अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण परम्परा है।

  स्वतंत्रता = स्वयं स्फूर्त विधि से सर्वतोमुखी समाधान में–से–के लिये प्रमाण वर्तमान। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 59–60)**

- **मौलिक अधिकार**

  परिचय संकेत– मानव चेतना सहज वैभव में–से–केलिए **मानवीयतापूर्ण शिक्षा–दीक्षा** शिक्षण पूर्वक परम्परा सहज मौलिक अधिकार फलन के रुप में जागृत मानव परंपरा है। यह **शिक्षा–संस्कार** परंपरा में पूर्णता सहज अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 65)**

- **मानवीय शिक्षा–संस्कार का अधिकार (अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:71–85)**

  तात्विक अर्थ में मानवीय शिक्षा = अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन सहज, 'मध्यस्थ दर्शन' सह–अस्तित्ववादी विधि पूर्वक चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** का अध्ययन।

बौद्धिक अर्थ में मानवीय शिक्षा = ज्ञान–विवेक–विज्ञान सहज **शिक्षा** संस्कार परंपरा।

व्यवहारिक अर्थ में मानवीय शिक्षा = अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने में प्रतिबद्धता पूर्ण शिक्षा।

तात्विक अर्थ में संस्कार = जीवन–मूल्य, मानव–मूल्य, स्थापित–मूल्य का धारक–वाहकता।

बौद्धिक अर्थ संस्कार = **शिक्षा** संस्कारों में पारंगत रहना, करना और कराने के लिए सहमत रहना।

व्यवहारिक अर्थ में संस्कार = हर उत्सवों में मानव–लक्ष्य, जीवन–मूल्य संगत विधि से व्यवस्था व समग्र व्यवस्था में भागीदारी की दृढ़ता व स्वीकृति को संप्रेषित, प्रकाशित करना, कराना, करने के लिए सहमति होना, जिसमें गीत, संगीत, नृत्य, साहित्य, कला वैभव समाहित रहना।

सार्वभौम–व्यवस्था विधि से ही मानवीय शिक्षा–संस्कार का लोकव्यापीकरण होता है। यही मौलिक अधिकार का स्त्रोत है।

मानवीयतापूर्ण परंपरा, दस सोपानीय व्यवस्था यह सब मौलिक अधिकार है।

1.1 पर्यावरण सुरक्षा = धरती के वातावरण अर्थात् वायु मंडल को पवित्र रखने, धरती को पवित्र, ऋतु संतुलन सुरक्षित रखने, वन खनिज को सन्तुलित बनाये रखने में प्रमाणित होना यह मौलिक अधिकार है।
सर्व मानव मानवीयता पूर्ण आचरण सम्पन्न रहना ही समाधान–समृद्धि–अभय–सहअस्तित्व परंपरा के रूप में वर्तमान प्रमाण मौलिक अधिकार है।

1.2 मानवीय व्यवसाय = हर नर–नारी स्वयं में व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य, राज्य वैभव, आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना यही समृद्धि का सहज सूत्र है। यह मौलिक अधिकार है।
उत्पादन मूल्य अर्थात् उत्पादित वस्तु श्रम नियोजन के आधार पर उपयोगिता सुंदरता मूल्य को श्रम–मूल्य के रूप में निश्चयन करना मौलिक अधिकार है।
मानवीयतापूर्ण व्यवहार मौलिक अधिकार है।

1.3 मानवीय व्यवहार = हर जागृत मानव मनाकार को साकार करने मन: स्वस्थता को प्रमाणित करने के क्रम में दस सोपानीय व्यवस्था में भागीदारी करना यह मौलिक अधिकार है।
मानव सम्बन्ध व मूल्यों का निर्वाह व मूल्यांकन परस्पर तृप्त रहना मौलिक अधिकार है।
मानवेत्तर प्रकृति यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था का सम्बन्ध मूल्यों का निर्वाह करना, सन्तुलन सहित नियम–नियंत्रण को प्रमाणित करना जिसके लिए उत्पादन यथा –
सामान्य आकाँक्षा सम्बन्धी वस्तुऐं –आहार, आवास, अलंकार सम्बन्धी वस्तुऐं व उपकरण
महत्वाकाँक्षी सम्बन्धी वस्तुऐं – दूरगमन, दूर श्रवण, दूरदर्शन संबन्धी उपकरण व वस्तुऐं
उक्त दोनों प्रकार के वस्तुओं के उत्पादन में भागीदारी यह मौलिक अधिकार है।
पूर्णता के अर्थ में अनुबंध प्रमाण, संकल्प, प्रतिज्ञा, स्वीकृतियों, सहित आचरण, सम्बन्ध में मौलिक अधिकार है

1.4 पूर्णता = क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता (जागृति) सहज अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन यह मौलिक अधिकार है।

1.5 संबंध प्रयोजन

i. **माता–पिता** पोषण एवं संरक्षण सहज प्रयोजनों को जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।

ii. **भाई–बहन** अभ्युदय के अर्थ में मूल्य निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।

iii. **पुत्र–पुत्री** अभ्युदय नि:श्रेयश के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।

iv. **पति–पत्नी** परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी करने के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।

v. **गुरु–शिष्य** गुरु शिष्य के साथ जीवन जागृति के अर्थ में, ज्ञान–विवेक–विज्ञान सहज पारंगत प्रमाणिकता के अर्थ में संबंध निर्वाह निरंतरता मौलिक अधिकार है।

vi. **साथी–सहयोगी** कर्तव्य दायित्वों को निष्ठापूर्वक निर्वाह करने के अर्थ में संबंधों का निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।

vii. **मित्र–मित्र** अभ्युदय, सर्वतोमुखी समाधान सहज प्रामाणिकता सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।

सभी सम्बन्धों को पूरकता–उपयोगिता प्रयोजनों के अर्थ में जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।

सम्बन्ध सहज पहचान –

◆ पोषण प्रधान संरक्षण के रूप में माता का दायित्व–कर्तव्य के रूप में प्रमाण।

◆ संरक्षण प्रधान पोषण रूप में पिता का दायित्व कर्तव्य प्रमाण मौलिक अधिकार है।

पोषण–संरक्षण = शरीर पोषण, स्वास्थ्य–संरक्षण, संस्कारों का पोषण–संरक्षण, भाषा का पोषण–संरक्षण, स्वच्छता का पोषण–संरक्षण, परिवार व्यवस्था का पोषण–संरक्षण। व्यवहार–व्यवस्था का पोषण संरक्षण ज्ञान विवेक विज्ञान सहज सूत्र व्याख्या रुप में अखण्डता सार्वभौमता वैभव का पोषण संरक्षण परंपरा के रुप में होना।

उत्सव = जन्म दिन उत्सव, नामकरण उत्सव, विद्यारम्भ उत्सव, स्नातक उत्सव, विवाह उत्सव, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त शिशिर कालोत्सव यह मौलिक अधिकार है।

स्नातक– सनातन कालीन सत्य सहज वैभव में समझ को प्रमाणित करने हेतु सत्यापन।

1.6 मानवीय संस्कार (मौलिकता) मानव चेतना सहज

अनुभव–प्रमाण

i. माना हुआ को जानना एवं जाना हुआ को मानना।

ii. जानना–मानना, समझदारी–ईमानदारी, ज्ञान–विवेक–विज्ञान सम्पन्नता सहज प्रमाण वर्तमान।

मानव होने का, प्रयोजनों को, सहअस्तित्व होने का, चार अवस्था होने का, चार पद होने का, सामाजिक अखण्डता सहज, व्यवस्था सहज, सार्वभौमता सहज, उपयोगिता सहज, पूरकता सहज, प्रयोजनों को जानना–मानना सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन जागृति है। जागृति के आधार पर परस्परता में पहचानना, निर्वाह करना सहज है।

i. नाम = पहचानने सम्बोधन करने के अर्थ में।
ii. जाति = मानव जाति के अर्थ में अखण्ड समाज।
iii. धर्म = सुख–शांति के अर्थ में समाधान समृद्धि एवं सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में वर्तमान सहज प्रमाण।
iv. कर्म = परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में (समृद्धि)।
v. **शिक्षा** = ज्ञान–विवेक–विज्ञान सम्मत कार्य व्यवहार पूर्वक जिम्मेदारी भागीदारी के रूप में मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी स्पष्ट होना
vi. विवाह = समाधान–समृद्धि पूर्वक मानवीयता पूर्ण आचरण सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी, एक पत्नी, एक पति के रूप में निर्वाह करने की प्रतिज्ञा संकल्प व निष्ठा के अर्थ में मौलिक अधिकार है।

1.7 भाषा–विधि

भाषा :– भास=परम सत्य रूपी सहअस्तित्व कल्पना में होना, वाचन व श्रवण भाषा के अर्थ रूप में सत्य स्वीकार होना।

आभास :– भाषा सहित अर्थ कल्पना अस्तित्व में वस्तु रूप में स्वीकार होना, अर्थ संगति होने के लिए तर्क का प्रयोग होना, अर्थ वस्तु के रूप में अस्तित्व में स्पष्ट तथा स्वीकार होना फलस्वरूप तर्क संगत होना।

प्रतीति :– तर्क संगत विधि से सहअस्तित्व रूपी वस्तु बोध होना। अर्थ अस्तित्व में वस्तु के रूप में समझ में आना ही प्रतीति है। फलत: बोध व अनुभव पूर्वक प्रमाण बोध चिंतन प्रणाली से अभिव्यक्ति होना सहज है।

तर्क :– अपेक्षा एवं संभावना के बीच सेतु।

तात्विकता प्रमाण समाधान, आवश्यकता, उपयोगिता, प्रयोजन शीलता के आधार पर सार्थक होता है। सम्पूर्ण संभावनाएं यथार्थता, सत्यता, वास्तविकता सहज प्रमाण है। अध्ययन पूर्वक स्पष्ट है।

1.8 भाषा–विधि = कारण, गुण, गणित

कारण = सहअस्तित्व विधि सहित स्थितिपूर्ण सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज डूबा, भीगा, घिरा स्पष्ट होना।

गुण = उपयोगिता–पूरकता विधि से वस्तु–प्रभाव व फल–परिणाम स्पष्ट होना।

गणित = वस्तु मूलक गणना विधि जोड़ने–घटाने के रूप में स्पष्टता।

स्पष्ट होने का तात्पर्य तर्क समाधान संगत विधि सम्पन्नता पूर्वक समझ पाना और समझा पाने से है और जीने देने एवं जीने के रुप में प्रमाण वर्तमान। जीना अनुभव मूलक मानसिकता सहित कायिक–वाचिक–मानसिक, कृत–

कारित–अनुमोदित रुप में। व्यापक वस्तु में सम्पूर्ण एक–एक चार अवस्था व चार पदों में स्पष्ट होना भाषा सहज अर्थ है, यह मौलिक अधिकार है।

1.9 साहित्य

साहित्य = यथार्थता–वास्तविकता–सत्यता को प्रयोजनों के अर्थ में कलात्मक विधि से स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त भाषा।

प्रयोजन= हर नर–नारी मानवत्व व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में पूरकता, नियम–नियंत्रण–संतुलन, न्याय–धर्म–सत्य सहज प्रमाण परंपरा है।

निबंध= निश्चित अर्थ में किया गया एक से अधिक अनुच्छेद रचना।

प्रबंध= निश्चित समाधानवादी प्रयोजनों का सूत्र व्याख्या सहज वांगमय।

वास्तविकता–सत्यता को, यथार्थता को इंगित कराने के लिए प्रयुक्त भाव–भंगिमा, मुद्रा, अंगहार सहित भाषा सहज संप्रेषण सार्थक होता है। यथार्थता–वास्तविकता–सत्यता को स्पष्ट करने के लिए निर्मित वातावरण व परिस्थितियाँ भाषाकरण का स्रोत उत्प्रेरणा है।

चित्र कला = किसी पृष्ठ भूमि पर किया गया चित्रण।

मूर्ति–कला, शिल्प = सभी ओर से निश्चित आकृति के रूप में मिट्टी, पत्थर और धातुओं से की गई रचना।

कविता–संगीत–साहित्य = सर्वतोमुखी समाधान के लिए सुरीली शैली से प्रस्तुत सुरीली शब्द–रचना व वाक्य अनुच्छेदों की रचना।

गद्य साहित्य = शब्द व वाक्य रचनायें सच्चाई, यथार्थता–वास्तविकता, सत्यता सहज न्याय सम्बन्ध, समाधान श्रवण करने वालों को इंगित कराना।

1.10 शास्त्र

i. जागृत मानव परंपरा में स्वानुशासित होने–रहने, में, से, के लिए हर परिवार समाधान–समृद्धि–अभय पूर्वक वर्तमान में विश्वास, सहअस्तित्व प्रमाण सहज न्याय–समाधान रूप में जीने का अध्ययन सहज प्रमाण।
ii. सहअस्तित्व सहज सामाजिक अखण्डता सहित सार्वभौम व्यवस्था का अध्ययन व भागीदारी सहज रूप में आचरण।
iii. जागृत मानव परंपरा में जागृत मानसिकता प्रवृत्ति, अखण्ड सामाजिक सम्बन्ध मूल्य, मूल्यांकन, परस्परता में (उभयता में) तृप्ति, समाधान सहज निरन्तरता का अध्ययन आचरण प्रमाण।
iv. सार्वभौम व्यवस्था क्रम में तन–मन–धन रूपी अर्थ इनमें अविभाज्यता, वस्तु रूपी धनोपार्जन, विनिमय, उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन सहज सुनिश्चितता का अध्ययन सहज क्रियान्वयन।

1.11 वाद–विचार

वाद–विचार = विचार, वाद–संवाद, आख्यान, व्याख्यान, उपदेश, भाषण, चर्चायें, भाव अर्थात् मूल्य सहज प्रयोजन तर्क संगत विधि से समाधान मानसिकता का अध्ययन, अभिव्यक्ति है।

चर्चा = चिन्तन पूर्वक प्रयोजनों का स्पष्ट होना।

भाषण = मौलिकता, मूल्य, प्रयोजन सहज रूप में संप्रेषित होना।

व्याख्या = व्यवहार व व्यवस्था में प्रमाणित होने के अर्थ में स्पष्ट होना।

आख्यान = आवश्यकता–अनिवार्यता स्पष्ट होना।

संवाद = पूर्णता अर्थात् गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरण पूर्णता के अर्थ में है एवं तर्क विधि से समाधान सुलभ होना है।

वाद = वास्तविकता पूर्वक समाधान सहज निष्कर्ष पूर्ण अध्ययन सुलभ रूप में प्रस्तुत करना।

विचार = विधिवत प्रयोजन के अर्थ में विवेचना, विश्लेषण करना, स्पष्ट करना, स्पष्ट होना।

मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही जागृत मानव परंपरा में विचार प्रयोजन है।

विवेचना = विधिवत् प्रयोजन व लक्ष्य आवश्यकता सहज स्पष्टीकरण।

भाषा विधि प्रयोजन = भाषा सहज अर्थ में अस्तित्व में सह– अस्तित्व–पद, अवस्था–बोध होना।

पद	**अवस्था**	**बोध**
प्राणपद	पदार्थावस्था	वस्तु–बोध
भ्रांतिपद	प्राणावस्था	क्रिया–बोध
देवपद	जीवावस्था	स्थिति–बोध
दिव्यपद	ज्ञानावस्था	गति–बोध
		परिणाम–बोध
		फल प्रयोजन–बोध
		मानव में, से, के लिए जागृति–बोध

बोध = अध्ययन–पूर्वक अनुभवगामी क्रम में बोध, अनुभव मूलक विधि से प्रमाण बोध, अनुभव प्रमाण बोध सहअस्तित्व सहज अनुभव प्रमाणों को व्यवहार व प्रयोगों में प्रमाणित करना ही ज्ञान–विवेक–विज्ञान है।

अनुभव = जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने की संयुक्त क्रिया और जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह पूर्वक कार्य–व्यवहार–व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होने की क्रिया है।

1.12 इतिहास

i. विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति सहज परंपरा।

ii. सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति सहज भौतिक, रासायनिक जीवन क्रिया–कलाप।

iii. मानव परंपरा में–से–के लिए जागृति सहज वैभव सर्वशुभ रूप में समाधान–समृद्धि–अभय सहअस्तित्व प्रमाण परंपरा।

iv. सर्व शुभ, नित्य शुभ सहज वैभव सार्वभौम व्यवस्था परंपरा में, से, के लिए है।

v. सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व सहज वैभव रूप में प्रमाण परंपरा है। यही इतिहास का आधार है।

इस धरती पर मानव पीढ़ी से पीढ़ी परंपरा में घटित प्रवृत्ति क्रम का आंकलन सहित जागृति सहज परंपरा आवश्यक है।

जंगल युग से – शिला युग

शिला युग से – धातु युग

धातु युग से ग्राम–कबीला युग

ग्राम–कबीला युग से – राज्य शासन एवं धर्म शासन युग

राज्य शासन एवं धर्म शासन युग से – लोकतंत्र युग प्रधान रूप में।

यह शक्ति केन्द्रित शासन युग रहा।

रहस्य मूलक आदर्शवाद में – भक्ति विरक्ति का प्रेरणा, रहस्यमय स्वर्ग मोक्ष के रूप में आश्वासन इसका प्रमाण रिक्त रहा, रहस्यमय देव कृपा, रहस्यमय ईश कृपा, वेद कृपा, गुरु कृपा से मुक्ति का आश्वासन रहा। प्रेरणा विधि रहस्यमय रहा।

अस्थिरता–अनिश्चयता मूलक भौतिकवाद में–संग्रह सुविधा का प्रेरणा इसका तृप्ति बिन्दु नहीं मिलना प्रयोग क्रम में धरती बीमार होना रहा।

राज युग से गणतंत्र विधि से जनप्रतिनिधियों का सहमति से शासन, सभी देश, राज्य, राष्ट्र के संविधान, व्यक्ति समुदाय चेतना से ग्रसित एवं शक्ति केन्द्रित शासन के रूप में है, जिसका विकल्प अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन, ज्ञान, विवेक, विज्ञान रूप में मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद), शास्त्र अखण्डता, सार्वभौमता के अर्थ में प्रस्तुत है। यह प्रस्तुति रहस्य, भ्रम,अपराध मुक्ति के अर्थ में है।

1.13 जागृत मानव परंपरा का सहज वैभव

i. मानव चेतना विधि से मानवत्व सहज परिवार व्यवस्था से व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी से है।

ii. मनाकार को साकार करने एवं मन:स्वस्थता का प्रमाण से है।

iii. खनिज, वन, वन्य जीव को संतुलित बनाये रखते हुए और घरेलू जीवों को पालते हुए कृषि के आधार पर आहार, वन खनिज के आधार पर आवास, इन्हीं आधार पर अलंकार, वस्तुओं का उत्पादन या निर्माण और उपयोग से है। प्रौद्योगिकी विधि से दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन संबंधी सुविधा प्राप्त करना।

iv. कृषि व पशु पालन के आधार पर आहार संबंधी वस्तुओं से संपन्न होने से है। ग्राम–शिल्प–वन– खनिज के आधार पर आवास, अलंकार संबंधी वस्तुओं से सम्पन्न होने से है।

v. जागृत मानव के नृत्य : अंग हार, भंगिमा मुद्रा भेद से भाव–भाषा प्रकाशन।

नृत्य = मानव चेतना सहज प्रयोजन के अर्थ में नाट्य,गीत–संगीत, भाषा, भाव = मूल्य = मौलिकता = समाधान = सुख = मानवापेक्षा भाव–भंगिमा, मुद्रा–अंगहार सहज संयुक्त अभिव्यक्ति, संप्रेषणा प्रकाशन व्यवहारिक है।

सुख–शान्ति–सन्तोष व आनन्द सहज सम्प्रेषणायें आप्लावन सहज स्वीकृति में सार्थक होता है। सर्वतोमुखी समाधान ही सुख, समाधान–समृद्धि ही शान्ति, समाधान–समृद्धि–अभय ही संतोष, समाधान–समृद्धि–अभय–सहअस्तित्व प्रमाण ही आनन्द है। यही सर्वशुभ सूत्र है। यही सार्थक नृत्य भावों का आधार है। सर्व–शुभ में स्व–शुभ समाया है।

भाव = मौलिकता, मूल्य, मूल्य सम्प्रेषणा।

भंगिमा = मूल्य में तदाकार–तद्रूपता भाषा विहिन मुखमुद्रा।

मुद्रा = मुख में मूल्य प्रभावी झलक, इसके अनुकूल मुद्रा अंगहार जिससे मूल्य व मूल्य संप्रेषणा दर्शकों में स्वीकृत व प्रभावी होना ही प्रयोजन है।

श्रवण = श्रेष्ठता, सहजता को सुनने की क्रिया यह मौलिक अधिकार है।

मौलिकता = जीव चेतना से मानव चेतना श्रेष्ठ, मानव चेतना से देव चेतना श्रेष्ठतर, देव चेतना से दिव्य चेतना श्रेष्ठतम होना स्पष्ट होना।

1.14 शिक्षा–संस्कार व्यवस्था

शिक्षा = शिष्टता पूर्ण दृष्टि का उदय होना मूल्य–चरित्र–नैतिकता स्पष्ट एवं प्रमाणित होना।

शिष्टता

i. समझदारी–ईमानदारी–जिम्मेदारी–भागीदारी सहज प्रमाण होना।
ii. दृष्टा–पद प्रतिष्ठा का जागृति सहज प्रमाण होना।
iii. मानवीयता पूर्ण आचरण सहज प्रमाण होना।

संस्कार

i. जीवन जागृति एवं विधि स्वीकृति होना।
ii. सहअस्तित्व नियति सहज विधि स्वीकार होना।
iii. अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था व सम्पूर्ण विधि स्वीकार होना, प्रमाणित होना।

व्यवस्था = उपयोगिता–पूरकता सहज मानवीयता पूर्ण आचरण वैभव को दस सोपानीय व्यवस्था में–से–के लिये प्रमाणित करने का कार्यक्रम में भागीदारी करना।

उद्देश्य = मानव–लक्ष्य, जीवन–मूल्य मानव परंपरा में प्रमाणित रहना, करना–कराना–करने के लिए सहमत होना।

1.15 शिक्षा–संस्कार व्याख्या स्वरूप

शिक्षा में वस्तु = सह अस्तित्व सहज ज्ञान–विवेक–विज्ञान सहित कायिक–वाचिक–मानसिक व कृत–कारित–अनुमोदित प्रमाण।

शिक्षक और अभिभावक = अस्तित्व दर्शन बोध ज्ञान प्रमाण, जीवन ज्ञान–बोध–प्रमाण सम्पन्न होना, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान प्रमाण होना रहना।

विवेक = मानव लक्ष्य, जीवन मूल्य बोध अनुभव प्रमाण।

विज्ञान = मानव लक्ष्य में, से, के लिए सुनिश्चित दिशा, व्यवहार व कर्माभ्यास नियम बोध अनुभव प्रमाण परम्परा में, से, के लिए सहज सुलभ होना।

शिक्षा वस्तु सहज ज्ञान–विवेक–विज्ञान–सहज विधि से सिद्धांतों का धारक–वाहक शिक्षक–अभिभावक होना–रहना है।

शिक्षा = अभिभावक–शिक्षकों के साथ विद्यार्थियों को अभ्युदय के अर्थ में सहमत सहित रूप में प्रमाणित रहना।

शिक्षक = पूर्णतया समझदार, ईमानदार, जिम्मेदार, भागीदार रहना **शिक्षा** प्रणाली सहज वैभव है। जागृति स्रोत व वर्तमान में प्रमाण रूप में होना वैभव है।

अभिभावक = अभ्युदय को भावी पीढ़ी में आवश्यकता अपेक्षा सहित स्वयं की उपयोगिता–पूरकता को प्रमाणित करने वाला अभिभावक है।

विद्यार्थी = भ्रम मुक्ति व समझदारी के लिए साक्षरता, भाषा व अध्ययन मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होने के लिए, करने के लिए, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित मानव लक्ष्य को साकार करने के लिए आशा, अपेक्षा, आवश्यकता व जिज्ञासु होना है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:71–85)**

- **शिक्षा–संस्कार कार्य व्यवस्था समिति**

शिक्षा में वस्तु स्वरूप :– सहअस्तित्व सहज अर्थ में भौतिक रासायनिक एवं जीवन क्रिया–कलापों का अध्ययन सर्वसुलभ होना है – विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति में ही यथा स्थिति गति सहित परस्परता में उपयोगिता–पूरकता विधि सहित सिद्धांत, अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिन्तन (नजरिया) सहज अध्ययन बोध, अनुभव प्रमाण मूलक अभिव्यक्ति–संप्रेषणा–प्रकाशन प्रबुद्ध परंपरा।

संस्कार स्वरूप :– जागृति, जागृति सहज प्रमाण, जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह रूप में प्रमाण होना, रहना परंपरा है।

समझदारी–ईमानदारी–जिम्मेदारी–भागीदारी को अखण्ड समाज सहज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी प्रमाण। प्राकृतिक, बौद्धिक, सामाजिक नियमों का पालन करते हुए मानव लक्ष्य को साकार करने के रूप में प्रमाण।

2.1 उद्देश्य –

व्यवहारिक उद्देश्य

मूल उद्देश्य :– सम्पूर्ण मानव मानवत्व सहित व्यवस्था में होना–रहना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज प्रमाण परम्परा के रूप में होना। मन: स्वस्थता पूर्वक मनाकार को साकार करना–रहना।

फलस्वरूप :– जीवन मूल्य और मानव लक्ष्य परंपरा प्रमाण के रूप में प्रमाणित होना, साथ ही साथ विकास विधि से ऊर्जा संतुलन एवं पर्यावरण संतुलन, पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञान अवस्था में सन्तुलन पूरकता–उपयोगिता सिद्धांत परंपरा के रूप में प्रमाणित होना–रहना है। यही सर्वकालीन सार्थक उद्देश्य है।

मूल उद्देश्य को प्रमाणित करने के क्रम में न्याय, उत्पादन–विनिमय–सुलभता, सार्वभौम व्यवस्था विधि में समाहित रहता है। साथ में शिक्षा–संस्कार सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता भी समाहित रहेगा ही। इस विधि से जागृत मानव परंपरा की संभावना आवश्यकता सहज रुप में समीचीन है।

मानव लक्ष्य :– समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में प्रमाण परंपरा है। यही अनुभव सहज प्रमाण है।

अनुभव प्रणाली मानवीय शिक्षा सहज उद्देश्य में निहित है :–

भ्रम से निर्भ्रमता, जीव चेतना से मानव चेतना, अजागृति से जागृति, समस्या से समाधान, समुदाय से अखण्ड समाज, समुदाय राज्य से सार्वभौम राज्य, असत्य से सत्य, अन्याय से न्याय, अव्यवस्था से व्यवस्था, असंतुलन से संतुलन, आवेशित गति से स्वभाव गति, अभाव से भाव, अज्ञान से ज्ञान–विवेक–विज्ञान, विखण्डता से अखण्डता, विपन्नता से सम्पन्नता, संकीर्णता से विशालता, पराधीनता से स्वतंत्रता, भय से अभय, असत्य से सत्य चेतना में परिवर्तन, भोग मानसिकता से उपयोगी सदुपयोगी प्रयोजनशील मानसिकता, व्यापार लाभोन्मादी मानसिकता से लाभ–हानि मुक्त विनिमय प्रवृत्ति, मानव चेतना सहज समझदारी में पारंगत प्रमाण परंपरा ही मानव परंपरा है। यह चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार से सार्थक होता है।

प्रलोभन भय के स्थान पर यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता सहज मौलिक, मौलिकता, जागृत मानव में न्याय, धर्म, सत्य सहज पहचान वर्तमान में विश्वास।

2.2 मानसिकता :– अनुभव मूलक प्रामाणिकता सहज प्रवृत्ति।

1) वर्चस्व जागृति सहज मानसिकता पूर्वक मूल्यांकन = सम्बन्धों का निर्वाह करना समझदारी में, से, के लिए प्रमाण।
2) ज्ञान–विवेक–विज्ञान ही समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी व आचरण में श्रेष्ठता का सम्मान प्रतिष्ठा।
3) प्रतिभा अनुभव मूलक प्रमाणों को प्रमाणित करने की गति।
4) आहार–विहार–व्यवहार के आधार पर व्यक्तित्व।
5) व्यवहार में सामाजिक, अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या के रूप में आचरण।
6) व्यवसाय (उत्पादन कार्य) में स्वावलम्बन सम्पूर्ण वर्चस्व है।

इस तरह सदा हर नर–नारी मूल्यांकन करने में समर्थ रहेंगे ही। ऐसी अर्हता मानवीय **शिक्षा** परंपरा में, से, के लिए सम्पन्न व सार्थक होता है।

हर नर–नारियों में–से–के लिए मूल्यांकन का आधार उपरोक्त बिन्दु है।

मूल्यांकन का उद्देश्य :– व्यवहार में सामाजिक, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन में स्वावलम्बन पूर्वक समृद्धि सहित सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के अर्थ में है।

2.3 मानवीय–शिक्षा संस्कार पाठ्यक्रम में गुणात्मक परिवर्तन सूत्र

सम्पूर्ण आयाम

1) सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व स्थिर, विकास एवं जागृति निश्चित है सिद्धान्त का अध्ययन विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति सहज बोध सुलभ होने का अध्ययन है।
2) सहअस्तित्व में भौतिक–रासायनिक और जीवन पद, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति व निरन्तरता सहज अध्ययन उपयोगिता–पूरकता सिद्धान्त जैसे तथ्यों के सभी आयामों के प्रधान मुद्दों को निम्नानुसार पहचाना गया है।

प्रचलित (विषय) :– जागृति के लिए वस्तु

1) विज्ञान के साथ – चैतन्य पक्ष का अध्ययन
2) मनोविज्ञान शास्त्र के साथ – संस्कार (अनुभव मूलक–प्रमाण) पक्ष का अध्ययन
3) दर्शन शास्त्र के साथ – क्रिया पक्ष (प्रमाण) का अध्ययन
4) अर्थशास्त्र के साथ – प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य का (ग्राम स्वराज्य विधि से) सदुपयोग व सुरक्षात्मक पक्ष का अध्ययन
5) राजनीति शास्त्र के साथ – मानवीयता का संरक्षण एवं संवर्धनात्मक विधि व्यवस्था नीति पक्ष का अध्ययन
6) समाजशास्त्र के साथ – मानवीय संस्कृति अखंड समाज तथा सभ्यता पक्ष का अध्ययन
7) भूगोल, इतिहास के साथ – मानव तथा मानवीयता पक्ष का अध्ययन
8) साहित्य के साथ – तात्विकता का अर्थात् सहअस्तित्व रूपी परम सत्य का अध्ययन

उक्त सभी आयामों के विस्तृत अध्ययन हेतु 'मध्यस्थ दर्शन–सहअस्तित्व वाद' शास्त्र के रूप में प्रस्तावित है। यही जागृत चेतन परंपरा के लिए स्रोत है क्योंकि सहअस्तित्व नित्य वर्तमान और प्रभावी है।

2.4 मानवीय शिक्षा

1) कितना समझना – सहअस्तित्व में–से–के लिए सम्पूर्ण समझ, सहअस्तित्व चार पद, चार अवस्था के रूप में समझना प्रमाणित कराना ही जागृत अथवा समझदार परंपरा है।
2) क्या समझना (जीना) – जीवन एवं जीवन मूल्य, मानव लक्ष्य प्रमाण सहज अभिव्यक्ति सम्प्रेषणा में–से–के लिए मानवीयतापूर्ण आचरण सहित व्यवस्था में जीना।

3) कब तक समझना – जागृत मानव परंपरा सहज रूप में प्रतिष्ठित, परम्परा होते तक, इसके अनन्तर निरन्तरता है ही होना रहना। इस प्रकार मानव परंपरा के रूप में से के लिए निरन्तर समझदारी होते ही रहना यही निरंतरता है। पीढ़ी से पीढ़ी में।

मैं क्या हूँ –

मैं मानव हूँ।

कैसा हूँ –

मैं जीवन व शरीर का संयुक्त रूप हूँ। शरीर मानव परंपरा सहज प्रजनन विधि की देन है। जीवन सह– अस्तित्व में गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई है।

क्या चाहता हूँ –

सुख, समाधान, समृद्धि सम्पन्न रहना चाहता हूँ।

क्या होना चाहता हूँ –

जागृत होना/ रहना चाहता हूँ। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:101–107)**

- **शिक्षा–संस्कार में न्याय**

शिक्षा :– शिष्टता पूर्ण दृष्टि का उदय होना।

शिष्टतापूर्ण दृष्टि :– अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन रूपी दृष्टि दृष्टा पद प्रतिष्ठा में पारंगत क्रियाशील रहना।

संस्कार :– ज्ञान–विवेक–विज्ञान सहज स्वीकृति, अनुभव प्रमाण परंपरा, जिसका प्रमाण ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या में पारंगत होना प्रमाण परंपरा है।

परंपरा :– परंपरा में मानव सहज मानवीयता पीढ़ी से पीढ़ी में अन्तरित होना न्याय है।

मानवीयता :– मूल्य–चरित्र–नैतिकता सहज संयुक्त अभिव्यक्ति, सम्प्रेषणा, प्रकाशन परंपरा होना न्याय है।

1. शिक्षा में मानव का अध्ययन सम्पन्न होना न्याय है।

2. भौतिक–रासायनिक और जीवन वस्तु का अध्ययन होना न्याय है।

3. सहअस्तित्व में अध्ययन न्याय है।

4. हर मानव में–से–के लिये आत्मनिर्भर होने योग्य शिक्षा सर्वसुलभ होना न्याय है।

5. **शिक्षा–संस्कार** में मानव–लक्ष्य, जीवन मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य व वस्तु मूल्य बोध होना न्याय है।

6. मानव संस्कृति–सभ्यता, विधि–व्यवस्था बोध होना न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 126 –127)**

- **मानवीय शिक्षा** का प्रयोजन संस्कार मानवीयता में,से,के लिए स्वीकृति को कार्य–व्यवहार में, कार्य–व्यवहार सामाजिक अखण्डता व सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होता है। यह दायित्व हर सदस्यों में समान रहेगा, यही सर्वशुभ है। यही न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:133)**
- **मानवीय–शिक्षा–संस्कार** पूर्वक हर मानव सन्तान का स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में सन्तुलन, व्यवहार में सामाजिक, उत्पादन में स्वावलंबी होना न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:133)**
- ज्ञानावस्था में **मानवीय शिक्षा–संस्कार** सम्पन्न मानव को, जीवावस्था में जीने की आशा सम्पन्न जीवों को, प्राणावस्था में रसायन–उर्मी, पुष्टि एवं रचना तत्व सहित प्राण कोषाओं से रचित रचना में पौधों के रूप में कार्य–विधियों को, यौगिक विधि से प्रकट रसायन द्रव्यों को, इनके ठोस–तरल–विरलता को, पदार्थावस्था में मृत–पाषाण–मणि धातु के ठोस व विरल रूप को जानना, मानना, पहचानना व निर्वाह करने में पारंगत होना न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:134)**
- निपुणता–कुशलता–पांडित्य सम्पन्नता सहित श्रम नियोजन के फलन में सामान्य व महत्वाकाँक्षा सम्बन्धी वस्तु व उपकरणों का फलित होना स्पष्ट है। यह मानव की परिभाषा में–से–के लिये मनाकार को साकार करने के सौभाग्य का फलन है, जो सुविधा–संग्रह जैसी प्रवृत्ति रहने के साथ भी सुलभ हुआ है। मनस्वस्थता: सर्वतोमुखी समाधान सर्व सुलभ होने के रूप में **मानवीय शिक्षा–संस्कार** चेतना विकास मूल्य शिक्षा रूप में सार्वभौम है। **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 136–137)**
- **स्वास्थ्य संयम कार्य व्यवस्था समिति**

  ग्राम स्वास्थ्य समिति : कार्य एवं दायित्व

  ग्राम के सभी व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं संयम की जिम्मेदारी ग्राम स्वास्थ्य समिति की होगी। यह समिति **शिक्षा संस्कार समिति** के साथ मिलकर कार्य करेगी। आवश्यकतानुसार स्वास्थ्य संयम संबंधी पाठ्यक्रम और कार्यक्रम को तैयार कर शिक्षा में सम्मिलित कराएगी। ग्राम में चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था, योगासन, व्यायाम, अखाड़ा, खेल कूद व्यवस्था, स्कूल के अलावा खेल मैदान (स्टेडियम), सांस्कृतिक भवन क्लब आदि व्यवस्था का दायित्व ग्राम स्वास्थ्य समिति का होगा। समिति स्थानीय रूप से उपलब्ध जड़ी–बूटियों द्वारा औषधि बनाने के लिए आवश्यकीय व्यवस्था करेगी। इसके साथ ही पशु चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था का दायित्व भी स्वास्थ्य समिति का होगा। समिति "समन्वित चिकित्सा" (आयुर्वेद, एलोपैथी, होम्योपैथी, यूनानी, योग, प्राकृतिक, मानसिक) के उन्नयन की व्यवस्था करेगी। **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 161–162)**

- **ग्राम में शिक्षा संस्कार व्यवस्था**

  ग्राम **शिक्षा** संस्कार व्यवस्था का संचालन "**शिक्षा संस्कार** समिति" करेगी। **शिक्षा संस्कार** समिति में कम से कम एक व्यक्ति होगा या अधिक से अधिक तीन अथवा आवश्यकतानुसार अधिक हो सकते हैं जिसका निश्चयन ग्राम सभा करेगी।

  शिक्षा संस्कार समिति के सदस्य की अर्हता :–

  शिक्षा संस्कार समिति के सदस्यों की अर्हताएँ निम्न प्रकार होंगी:–

  1. प्रत्येक सदस्य जीवन–विद्या एवं वस्तु–विद्या ज्ञान– विवेक– विज्ञान में पारंगत रहेगा।

2. वह व्यवहार में सामाजिक व व्यवसाय में स्वावलम्बी होगा।
3. उसमें स्वयं में विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने का प्रमाण रहेगा।
4. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलित होने का प्रमाण रहेगा।

शिक्षा संस्कार व्यवस्था के मूल उद्देश्य:–

प्रत्येक मानव को –

1. व्यवहार में सामाजिक
2. व्यवसाय में स्वावलंबी
3. स्वयं के प्रति विश्वासी
4. श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने में पारंगत, जिससे व्यक्तित्व व प्रतिभा का संतुलन प्रमाणित हो।

शिक्षा संस्कार व्यवस्था का स्वरूप :–

1. प्रत्येक मानव को व्यवहार शिक्षा में पारंगत बनाना।
2. प्रत्येक को व्यवसाय शिक्षा में पारंगत कर एक से अधिक व्यवसायों में स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर निपुण व कुशल बनाना।
3. प्रत्येक को साक्षर, समझदार बनाना।
4. ग्राम–सभा पाठशाला की व्यवस्था स्थानीय आवश्यकतानुसार करेगी।
5. आयु वर्ग के आधार पर शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था होगी।

शिक्षा की व्यवस्था ग्रामवासियों के लिए निम्नानुसार की जावेगी–

1. बाल शिक्षा।
2. बालक जो स्कूल छोड़ दिए हैं व दस वर्ष से अधिक आयु के हैं, ऐसे बच्चों को 30 वर्ष के अन्य अशिक्षित व्यक्तियों के साथ व्यवहार शिक्षा व व्यवसाय शिक्षा में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी।
3. 30 वर्ष की आयु से अधिक स्त्री पुरुषों को साक्षर–समझदार बनाकर व्यवहार शिक्षा में पारंगत बनाने की व्यवस्था होगी।
4. स्थानीय परिस्थितियों केआधार पर आवश्यकता होने पर स्त्री पुरुषों के लिए अलग शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था होगी।
5. अनावश्यक, अव्यवहारिक, असामाजिक आदतों को छुड़ाने के लिए अलग से शिक्षा व्यवस्था होगी जो कि "स्वास्थ्य संयम समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी।
6. व्यवसाय शिक्षा के लिए "**शिक्षा संस्कार** समिति" "उत्पादन सलाहकार समिति" एवं "वस्तु विनिमय कोष समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी व सम्मिलित रूप से यह तय करेगी कि ग्राम की वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, किस–किस व्यक्ति को, किस–किस उत्पादन की **शिक्षा** दी जाए। "विनिमय कोष समिति" ऐसे उपायों की जानकारी देगी, जिनकी गाँव के बाहर अच्छी माँग है व जिसे वह अच्छी कीमत पर विनिमय कर सकती है।
7. कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग व सेवा में जो पहले से पारंगत हैं, उनके द्वारा ही अन्य ग्रामवासियों को पारंगत करने की व्यवस्था की जायेगी।

8. यदि उपर्युक्त शिक्षा में कभी उन्नत तकनीकी विज्ञान व प्रौद्योगिकी को समावेश करने की आवश्यकता होगी तो उसको समाविष्ट करने की व्यवस्था रहेगी।
9. व्यवहार शिक्षा के लिए "**शिक्षा संस्कार समिति"** "स्वास्थ्य संयम समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी। मानवीयता पूर्ण व्यवहार (आचरण) व जीने की कला सिखाना व अर्थ की सुरक्षा तथा सदुपयोगिता के प्रति जागृति उत्पन्न करना ही, व्यवहार शिक्षा का मुख्य कार्य है।

रुचि मूलक आवश्यकताओं पर आधारित, उत्पादन के स्थान पर मूल्य व लक्ष्य–मूलक अर्थात उपयोगिता व प्रयोजनीयता मूलक उत्पादन करने की शिक्षा प्रदान करना। जिससे प्रत्येक नर –नारी में आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि (असंग्रह), अभयता (वर्तमान में विश्वास), सरलता, दया, स्नेह, स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, बौद्धिक समाधान, प्राकृतिक संपत्ति का उसके उत्पादन के अनुपात में सदुपयोग व उसके उत्पादन में सहायक सिद्ध हो ऐसी मानसिकता का विकास करना, व्यवहार शिक्षा में समाविष्ट होगा। इसके लिए शिक्षा के निम्न अवयवों का अध्ययन आवश्यक होगा:–

1. अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन–जागृति व रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना के प्रति निर्भ्रम होना (जानना एवं मानना) रहेगा।
2. मानव, मानव जीवन का स्वरूप, मानव अपने "त्व" सहित (मानवत्व सहित) व्यवस्था है, मानव संचेतना, अक्षय बल व अक्षय शक्ति की पहचान, अमानवीय चेतना से मानवीय चेतना में परिवर्तन व अतिमानवीय दृष्टियों स्वभाव व विषयों का स्पष्टता व ज्ञान सुलभ करना रहेगा।
3. मानवीय स्वभाव गति, आवेशित गति की पहचान।
4. मानव व नैसर्गिक संबंधों की पहचान, संबंधों के निर्वाह में निहित मूल्यों की पहचान व बोध कराने की शिक्षा। "संबंधों के निर्वाह से ही विकास होता है" इसकी शिक्षा सर्वसुलभ करना।
5. मूल्य, चरित्र व नैतिकता अविभाज्य वर्तमान है वह क्रम से अनुभव बल, विचार शैली व जीने की कला की अभिव्यक्ति है। इसकी पहचान होना सर्व सुलभ होना रहेगा।
6. रुचि मूलक प्रवृत्तियों के स्थान पर मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक कार्य–व्यवहार, विश्लेषण का स्पष्टीकरण सुलभ रहेगा।
7. आवर्तनशील अर्थ चिंतन व व्यवस्था की शिक्षा रहेगा।
8. उपयोगिता पूरकता, उदात्तीकरण सिद्धांत सर्वविदित होने का व्यवस्था रहेगा।
9. न्याय पूर्ण व्यवहार (कर्तव्य व दायित्व) सर्व विदित रहेगा।
10. नियम पूर्ण व्यवसाय सहज कर्माभ्यास परंपरा रहेगा।
11. सामान्य आकाँक्षा व महत्वाकाँक्षा संबंधी उत्पादन कार्य में हर नर– नारी पारंगत होने का व्यवस्था रहेगा।
12. संतुलित आहार पद्धति में प्रत्येक को जागृत करने की शिक्षा।
13. योगासन व व्यायाम सिखाने की शिक्षा एवं व्यवस्था।
14. शरीर, घर, आसपास का वातावरण, मोहल्ला व ग्राम में स्वच्छता की आवश्यकता व उसको बनाए रखने का कार्यक्रम।

15. शैशव अवस्था में रोग–निरोधी विधियों से हर परिवार में आवश्यक जानकारी और इसमें निष्ठा बनाए रखने की व्यवस्था।
16. सीमित व संतुलित परिवार के प्रति प्रत्येक व्यक्ति में विश्वास और निष्ठा को व्यवहार रूप देने का कार्यक्रम।
17. स्थानीय रूप से उपजने वाली जड़ी–बूटियों की पहचान और औषधि के रूप में प्रयोग करने में पारंगत बनाने की शिक्षा।

कालांतर में "ग्राम **शिक्षा संस्कार** समिति" क्रम से ग्राम समूह सभा, क्षेत्र सभा, मंडल सभा, मंडल समूह सभा, मुख्य राज्य सभा, प्रधान राज्य सभा व विश्व राज्य सभा की "**शिक्षा संस्कार** समिति" से जुड़ी रहेगी। अत: विश्व में कहीं भी स्थित कोई जानकारी "ग्राम–**शिक्षा संस्कार** समिति" को उपरोक्त सात स्रोतों से तुरंत उपलब्ध हो सकेगी। पूरी जानकारी का आदान–प्रदान कम्प्यूटर व्यवस्था द्वारा आपस में जुड़ा रहेगा। इसी प्रकार अन्य चारों समितियाँ भी ऊपर तक आपस में जुड़ी रहेगी। **(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर:171–176)**

- **शिक्षा संस्कार सुरक्षा :–**

1. न्याय सुरक्षा समिति यह सुनिश्चित करेगी कि प्रत्येक ग्रामवासी को मानवीय शिक्षा (व्यवहार शिक्षा व व्यवसाय शिक्षा) ठीक से मिल रही है या नहीं। जो स्कूल छोड़ दिए हैं, स्कूल में नहीं आते हैं, उनके लिए उनके परिवार वालों से मिल जुलकर **शिक्षा संस्कार** को सुलभ कराएगी।
2. मानवीय शिक्षा में कहीं से भी व्यतिरेक उत्पन्न होता है तो उसको दूर करने की व्यवस्था करेगी।
3. शिक्षकों का मूल्यांकन करेगी कि वे ठीक से शिक्षा प्रदान कर रहे हैं या नहीं ? समय–समय पर आकर निरीक्षण–परीक्षण पूर्वक मार्ग दर्शन देगी। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:186)**

- **शिक्षा संस्कार समिति के कार्यों का मूल्यांकन**

"ग्राम सभा" ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति व परिवार में "**शिक्षा संस्कार** समिति" के कार्यों का मूल्यांकन निम्न आधारों पर करेगी :–

1. संबंधों का पहचान मूल्यों का निर्वाह, मानवीयतापूर्ण आचरण व व्यवहार का मूल्यांकन। परस्परता में समाधान।
2. स्वयं के प्रति विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान क्रिया, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, उत्पादन कार्य में स्वावलंबन सहज विधि से मूल्यांकन।
3. मानवीय आचरण स्व धन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार का मूल्यांकन।
4. ग्राम जीवन व परिवार व्यवस्था में विश्वास व निष्ठापूर्ण आचरण का मूल्यांकन।
5. ग्राम व्यवस्था व ग्राम जीवन में भागीदारी का मूल्यांकन।
6. प्रत्येक व्यक्ति व परिवार से किया गया तन, मन व धन रूपी अर्थ की सदुपयोगिता का मूल्यांकन।
7. मानव स्वयं व्यवस्था के रूप में संप्रेषित, अभिव्यक्त, प्रकाशित होने व समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने व उसकी संभावना का मूल्यांकन।
8. किसी व्यक्ति में बुरी आदत हो तो उसके, उससे (बुरी आदत से) मुक्त होने के आधार पर सुधार का मूल्यांकन। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:190–191)**

- **शिक्षा–संस्कार–समिति से सत्यापन**

1. मानवीय–शिक्षा–संस्कार सर्व सुलभ होने का कार्यक्रम, प्रमाणित होने में से के लिए सत्यापन।
2. मानवीय **शिक्षा** का प्रमाण हर परिवार में वर्तमान होने का सत्यापन।हर परिवार–समूह–सभा सदस्य, निरीक्षण–परीक्षण विधि से सत्यापित करने का कार्यक्रम, ग्राम–सभा में सत्यापनों की प्रस्तुति सहज कार्यक्रम।

   शिक्षा–संस्कार किसी परिवार में अपूर्ण रहने पर पूर्णता के लिए कार्यक्रम परिवार समूह सभा में निहित रहेगा। इसके लिए शिक्षा–संस्कार समिति दायी होगा। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:193–194)**

- **शिशु काल से जागृति यात्रा घोषणा**

1. शिशु कालीन लालन–पालन, पोषण–संरक्षण कार्यों का दायित्व व कर्तव्य अभिभावकों का है।
2. मानव सन्तान का लालन–पालन, पोषण–संरक्षण का कार्य अभिभावक का है। इस परंपरा में उत्सव, प्रसन्नता, खुशियाली है। शैशवकाल के अनंतर पड़ोसी बन्धुओं का मानव संस्कार पक्ष में दायित्व रहेगा।
3. मानव में सभी सम्बन्धों मे सम्बोधन सभी परिवार–परंपरा में प्रचलित है। इसे अखण्डता सहज प्रयोजन सार्थकता के अर्थ में प्रमाणित करना जागृति है।

   मानवत्व सहित व्यवस्था में जीना–

4. मानव परंपरा **शिक्षा संस्कार** सहित जागृति पूर्वक अपने सन्तानों को ज्ञान–विवेक–विज्ञान सम्पन्न बना सकते हैं, तद्अनुरूप संभाषण, अपेक्षानुरूप प्रमाण निर्देश सम्पन्न होना स्वभाविक है।
5. सम्बन्धों का सम्बोधन, शिष्टता का दिशा निर्देशन सम्बोधन के साथ प्रयोजन भाव–भंगिमा, मुद्रा, अंगहार विधि से सन्तानों को निर्देशित करना हर अभिभावकों, पड़ोसी बन्धु, मित्रजनों का कर्तव्य–दायित्व होता है।
6. शिशु कालीन **शिक्षा**, **शिक्षा–संस्कार** के दायी अभिभावक होंगे। जीते हुए के आधार पर स्वीकृति, जीने के आधार पर **शिक्षा संस्कार** सार्थक होता है।
7. कौमार्य काल में ग्रामवासी, शिक्षा–संस्था व अभिभावकों का संयुक्त रूप में जीने के आधार पर सफल बनाने का कर्तव्य–दायित्व रहेगा।
8. युवावस्था में मानवीय **शिक्षा–संस्कार** को विद्यार्थियों में–से–के लिये आचरण सहित प्रमाण रूप देना अनुभव प्रमाण सम्पन्न अध्यापकों में अनिवार्य रहेगा।
9. हर मानव–सन्तान युवकों के फलन के रूप में अनुभव प्रमाण सम्पन्नता फलित होना ही **मानवीय–शिक्षा–संस्कार** की सफलता है। इसका सत्यापन अभिभावक, विद्यार्थी करेंगे। अध्यापक दृष्टा पद में वैभव सम्पन्न होगा।
10. हर नर–नारी का **मानवीय–शिक्षा संस्कार** सम्पन्न रहना ग्राम–देश–धरती में मानव का वैभव है।
11. जागृत मानव परंपरा में सम्पूर्ण मानव का अपने में सामाजिक अखण्डता और सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या में प्रमाण होना सहज है।
12. जागृत मानव परंपरा में ही समाधान–समृद्धि–अभय–सहअस्तित्व प्रमाण सहित नियम–नियंत्रण–संतुलन समेत सर्व सुख–शान्ति सहज विधि से जीना होता है। यही स्वराज्य है।

13. कम से कम सोलह–अट्ठारह अधिक से अधिक बीस वर्ष की अवस्था में श्रम–साध्य कार्यों को करने का दायित्व–कर्तव्य होना आवश्यक है।
14. प्राकृतिक–ऐश्वर्य पर उपयोगिता मूल्य के अर्थ में श्रम–नियोजन फलस्वरुप समृद्धि सार्थक होना पाया जाता है।
15. श्रम–कार्य हर नर–नारी में–से–के लिये स्वस्थता समृद्धि सेवा के लिए आवश्यक है।
16. खेल,व्यायाम एवं श्रम स्वस्थ रहने का उपाय है। आवश्यकता व समय के अनुसार श्रम नियोजन हर ग्राम–सभा, परिवार समूह सभा के निश्चित सामूहिक कार्य और परिवार से स्वीकृत होना भी रहेगा।
17. श्रम–नियोजन हर मानव में–से–के लिये आवश्यक है।
18. श्रम–नियोजन पूर्वक उपयोगिता व कला मूल्य ही प्रमाणित होता है। स्वास्थ्य सन्तुलन के लिए भी श्रम, समय नियोजन होता है।
19. सम्पूर्ण उपयोगितायें सामान्य व महत्वाकाँक्षा सम्बन्धी उपलब्धि होगी।
20. हर नर–नारी युवा काल से प्रौढ़ावस्था के फलन तक श्रम–नियोजन योग्य होते हैं। श्रम करने की प्रवृत्ति जागृति पूर्वक सफल विधिवत् होता है।
21. शरीर की सभी अवस्थायें सदा दृष्टव्य है।
22. **मानवीय शिक्षा–संस्कार** पूर्वक ही हर नर–नारी में–से–के लिए मानवत्व सहज मानसिकता प्रमाणित होना पाया जाता है।
23. हर मानव का समझने के लिए ध्यान देना आवश्यक है और समझा हुआ को प्रमाणित करने के लिए ध्यान देना बना रहता है।
24. हर मानव का ज्ञानावस्था में होना ही समझदारी में–से–के लिए प्रवृत्ति व अध्ययन व समझ प्रमाण है। यही परंपरा है।
25. सर्वमानव सहअस्तित्व में ही समझदार होना नित्य समीचीन है।

सर्व मानव अपने वैभव को समझदारी–ईमानदारी–जिम्मेदारी–भागीदारी सहज विधि से प्रमाण पहचान होना ही मानवीय परंपरा इतिहास वर्तमान है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:202–205)**

- **स्वराज्य व्यवस्था सहज गति –** "अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या पर आधारित ग्राम मोहल्ला स्वराज्य है"

ग्राम स्वराज्य की मूलभूत इकाई समझदार परिवार है। परिवार स्वयं मानव चेतना मूल्य **शिक्षा** सम्पन्न मानवीयता पूर्ण व्यवस्था सहज मौलिक रूप है। मानवीयता स्वयं स्वराज्य एवं स्वतंत्रता का सूत्र स्वरुप है। स्वराज्य का तात्पर्य न्याय–सुलभता, उत्पादन–सुलभता और विनिमय–सुलभता है। इसके पूरकता में **शिक्षा – संस्कार**, स्वास्थ्य–संयम आवश्यक है। स्वतंत्रता का तात्पर्य प्रत्येक मानव का स्वानुशासन सहज प्रामाणिकता और समाधान पूर्वक अभिव्यक्त, संप्रेषित व प्रकाशित होने से है, जो सहअस्तित्व रूपी परम सत्य अनुभव पूर्वक विधि से जानने व मानने से है अर्थात् सह–अस्तित्व में परस्पर संबंधों व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने से है। यही **शिक्षा–संस्कार**, न्याय–सुरक्षा सुलभता स्त्रोत है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 216)**

- परम्परा का तात्पर्य **शिक्षा संस्कार** अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था व सार्वभौम समाधान जो बीसवीं शताब्दी तक स्थापित नहीं हो पाया। भौतिक विचार परम्परा के अनुसार, संरचना के आधार पर चेतना निष्पत्ति बताई जाती है जबकि ईश्वर वादी विचार के अनुसार चेतना से वस्तु निष्पत्ति बताई जाती है। इन दोनों का शोध करने के उपरान्त, अनुसन्धानपूर्वक पता लगा कि सह–अस्तित्व नित्य वर्तमान, परम सत्य होना पाया गया। इसमें उत्पत्ति की कल्पना ही गलत निकली। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 239)**
- जागृत परम्परा में ही **मानवीय शिक्षा संस्कार**, मानवीय आचरण संहिता रूपी संविधान, मानवीयता पूर्ण परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहित सह–अस्तित्व में अनुभव मूलक व्यवहार व प्रयोग उत्पादन कार्य, विनिमय कार्य, स्वास्थ्य संयम कार्य, न्याय सुरक्षा कार्य, **मानवीय शिक्षा –संस्कार कार्य** सहज प्रमाण सम्पन्नता का बोध सहित स्वयं में विश्वास पूर्वक श्रेष्ठता का सम्मान सम्पन्न होना है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 245)**
- मानव ही जागृति सहज **शिक्षा – संस्कार** पूर्वक मानवीय संस्कृति–सभ्यता, विधि–व्यवस्था का धारक–वाहक है। यही मानवीयता पूर्ण परंपरा है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 260)**
- समझदारी का वैभव सुख, समाधान, समृद्धि, परस्परता में विश्वास और नित्य उत्सव होता ही रहता है। इसके लिए समझदारी बौद्धिक प्रयोग, विवेकपूर्वक तथा समाधान, समृद्धि, अभय सह अस्तित्व प्रमाणित होने की विधि से सर्व मानव सुखी होते हैं। इसका प्रयोग न्याय व समाधानपूर्वक – सार्थक सुखी होना पाया जाता है। धन का प्रयोग उदारतापूर्वक करने से सार्थक सुखी होते हैं। बल का प्रयोग दया पूर्वक जीने देने व जीने के रूप में सार्थक होता है। रूप के साथ सच्चरित्रता, यथा–स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष, दयापूर्वक किया गया कार्य–व्यवहार विचार से ही सार्थक सुखी होना होता है। यह सर्व शुभ होने की विधि है जो लोक शिक्षा और **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक सार्थक होता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 267)**
- **दृष्टापद**: मानव में शून्याकर्षण ही नियंत्रित संवेदना सम्पन्न प्रभाव समेत सह–अस्तित्व में अनुभव प्रमाण बोध संकल्प सहित, बोध संकल्प चिंतन चित्रण सहित, चिंतन चित्रण क्रम सहित तुलन विश्लेषण पूर्वक आस्वादन चयन क्रिया–कलाप सहित दृष्टा पद में होना रहना है। यही समझदारी संपन्नता है। इसके लिए स्त्रोत चेतना विकास मूल्य **शिक्षा –संस्कार** है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 273)**
- मानवीय –**शिक्षा संस्कार** अनुभव प्रमाणमूलक होना समाधान है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 286)**
- मानवत्व **शिक्षा संस्कार** का सूत्र व्याख्या है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 291)**
- मानवीय **शिक्षा संस्कार** का प्रमाण मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:292)**
- मानवीय **शिक्षा संस्कार** ही जागृत परंपरा में,से, के लिए सार्थक सूत्र व्याख्या प्रक्रिया है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:294)**
- जागृति पूर्ण मानव परंपरा में ही **शिक्षा – संस्कार**, संविधान, व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता सार्थक रूप में प्रमाण मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 300)**
- ज्ञान–विवेक–विज्ञान पूर्ण **शिक्षा संस्कार** परंपरा ही मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 301)**
- मानवीय **शिक्षा–संस्कार** का दायित्व–कर्तव्य परिवार–सभा से विश्व परिवार–सभा में दायित्व–कर्तव्य रूप में निहित रहता है। इसका निर्वाह योग्य होना मानवीयता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:302)**
- **शिक्षा–संस्कार** सर्वतोमुखी समाधानकारी ज्ञान–विवेक–विज्ञान सम्पन्न होने का प्रमाण मानवत्व है। यह परंपरा का कर्तव्य हर मानव संतान का अधिकार है। यह मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:302)**

- अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ही मध्यस्थ दर्शन सह–अस्तित्ववाद है। इस पर **शिक्षा संस्कार** में सह–अस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान बोध, जीवन ज्ञान बोध, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान बोध परंपरा होना मानवत्व है।**(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:302)**
- सह–अस्तित्ववादी **शिक्षा संस्कार** पूर्वक प्रत्येक एक विद्यार्थी अपने "त्व" सहित व्यवस्था है। समग्र व्यवस्था में भागीदार करने का अध्ययन व प्रमाण मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:303)**
- मानवीय **शिक्षा –संस्कार** में सह–अस्तित्व नित्य प्रमाण होने के लिए बोध सम्पन्न होना, करना–कराना, करने के लिए सहमत होना मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:303)**

जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- ....तो पहला मुद्दा समझदारी सहज **शिक्षा** –संस्कार विधि से सर्वसुलभ हो जाए। समझदारी के साथ जीने की कला को अपनाया जाए। जीने की कला में धरती जल व वायु के साथ कैसे जिया जाए, वनस्पति के साथ कैसे जिया जाए, पशु संसार के साथ कैसा जिया जाए और मानव के साथ कैसे जिया जाए। इनमें से किसी एक को भी नहीं छोड़ा जा सकता, सबके साथ जीना ही है। हर व्यक्ति अनुभव कर सकता है, मूल्यांकन कर सकता है। यह दावा हर मानव करता ही है। हर मानव में दावा करने की यह प्रवृत्ति सहज है, थोपा हुआ किसी को स्वीकार नहीं है, हर व्यक्ति में यह मूल रूप में है, उत्साह है, स्वयं स्फूर्त है। हर मानव की ये आवश्यकता है। इतना सहज स्रोत रहते हुए भी हम कैसे अपेक्षा कर लिए कि हम दूसरों को तारूँगा। यह एक आश्चर्यजनक घटना है और इसमें हम सब भी आस्था करते रहते हैं अब यह सोचना है कि आश्वासन के ऊपर आस्था करना है या प्रमाणों के आधार पर विश्वास करना है। मुझे आरंभिक काल से जैसे ही प्रवृत्ति हुई, प्रमाणों के आधार पर विश्वास करने के लिए हमारा विचार हुआ। हमारा स्वाभाविक रूप में उत्साह बढ़ा। प्रमाणों को खोजने के आधार में ही ये सब पुनर्विचार करने की प्रवृत्ति बनी उसके परिणाम स्वरूप जो कुछ हुआ उसे मानव सम्मुख रखने के लिए हम प्रवृत्त है, जैसे सात सौ करोड़ आदमी के सम्मुख रास्ता बंद हो चुका है, उसी भांति मेरे साथ भी रहा होगा। इसको आप अंदाज कर सकता हैं।

  सभी मानवों जैसे ही स्थिति में मैं भी था। संसार में प्रचलित **शिक्षा** संस्कार,कर्मकांड संस्कार, इसी जंगल से मैं भी गुजरा हूँ। गुजरने के बावजूद हमारी स्वीकृति ना तो मेकाले **शिक्षा** के साथ रही ना परंपरागत आदर्शवादी संस्कार के साथ रही। हमारी आस्था इसमें स्थिर नहीं हो पाई। यह हमारा सम्पूर्ण उद्देश्यों की ओर दौड़ने का आधार और कारण बना। हमारी आस्था ना **शिक्षा** परंपरा में, न संस्कार परंपरा में बनी इसलिए हम शायद रिक्त हो गए और यही हमारा अपने ढंग से दौड़ने का आधार बना। दो घटनाएँ तो घट चुकी। इसमें एक घटना जीवन को समझना महत्वपूर्ण रही। जीवन में ही समझदारी समाई है एवं समझदारी पूर्ण विधि हमारे हाथ लगी।.... **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 54–55)**

- परिवार में, हर आदमी में, हर बच्चे में समझदारी का सूत्र देना ही **शिक्षा–संस्कार** व्यवस्था है। इसे समझदारी का लोकव्यापीकरण करना भी कह सकते हैं। पहले आपको बताया दर्शन; दर्शन के बाद विचार; विचार के बाद शास्त्र; शास्त्र के बाद योजना। योजना में एक है जीवन विद्या योजना जिसमें मानव परिवार मानव चेतना सम्पन्न होने के लिए पूरी गुंजाइश है। इस समझ से आदमी परिवार में व्यवस्था के रूप में जी सकता है। दूसरी योजना है मानवीय **शिक्षा–संस्कार** का मानवीकरण। इसमें बच्चों के लिए **शिक्षा** व्यवस्था है। ऐसी **शिक्षा** को हम एक स्कूल में (बिजनौर, उ. प्र.) प्रयोग किए। यह पाँच वर्ष का अनुभव है। जीवन विद्या के आधार पर **शिक्षा** का मानवीकरण करने गए उसका क्या प्रभाव पड़ा वहाँ देखा गया। लोग कहते रहे हैं कि विद्यार्थियों के ऊपर वातावरण का प्रभाव पड़ता है जिसे हम नकारते रहे। यदि वातावरण का प्रभाव पड़ता तो हम अनुसंधान कैसे कर पाते? इस स्कूल से यह प्रमाण मिलने लगा है कि बच्चों का प्रभाव परिवार पर एवं उनके परिवार वालों का प्रभाव वातावरण पर पड़ने लगा है। बच्चे

जीवन के रूप में अपने को पहचानने लगे और व्यवस्था में जीना अति आवश्यक है इसे स्वीकारने लगे। इसके फलस्वरूप बहुत से बच्चे टीवी, व्यर्थ वार्तालाप आदि में अरूचि दिखाये जाने वाले चीजों का मूल्यांकन करने लगे और यह सब निस्सार है ऐसा समझने लगे। साथ ही गाँव में एक परिवार में दूसरे परिवार के साथ बैर भाव था, मारपीट, मुकदमा होता था। व भी धीरे–धीरे शमन होने लगा। अब उन गांवों में मेरी जानकारी के अनुसार झगड़ा – झंझट कम हो गया है। इसी को हम कहते हैं बच्चों का आचरण रूपी वातावरण का प्रभाव पड़ा और इसी के अनुसार हम कहते हैं कि इस **शिक्षा** में दम खम है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:77–78)**

- **शिक्षा** में विज्ञान के साथ चैतन्य प्रकृति का, दर्शन के साथ क्रिया पक्ष का, मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का, भूगोल और इतिहास में मानव तथा मानवीयता का समावेश करेंगे। इस ढंग से **शिक्षा** में मानवीयता के समावेश होने से मानव की प्रवृत्ति सहज रूप से व्यवस्था में जीने की, अपने को प्रमाणित करने की होगी। अपने पहचान के साथ समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व में जीने के अवसर आवश्यकता सफलता के स्थान पर हम पहुँच जाएंगे। इसलिए **शिक्षा–संस्कार** मानवीयता के साथ ही पूर्ण होता है, दूसरी विधि से नहीं होता। अभी हम जिन संस्कारों की बात करते हैं वे हमारी प्रचलित मान्यताओं पर आधारित हैं उनमें सार्वभौमता नहीं है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 80)**
- व्यवस्था में जीना शुरू करते हैं तो हमारी भागीदारी व्यवस्था में होती है। **शिक्षा संस्कार** में भागीदारी करते हैं तो निरंतर उपकार विधि से हम **शिक्षा संस्कार** सम्पन्न कर पाते हैं। **शिक्षा संस्कार** उपकार विधि से ही सार्थक होता है प्रतिफल विधि से सार्थक होता नहीं। प्रतिफल विधि से **शिक्षा संस्कार** देकर हम सत्य बोध, यथार्थता का बोध नहीं करा पाते हैं।

  मैं इस विधि से **शिक्षा संस्कार** सम्पन्न करता हूँ। प्रतिफल (भौतिक वस्तु) मिलने का कभी मन में खाका आया ही नहीं। समझदारी को समझाने के लिए भौतिक द्रव्य की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा कार्यक्रम में जो अध्यापक है वह अपने में स्वायत्त रहने, स्वालम्बी रहने की आवश्यकता है। समझदारी से यह आता है कि जो मानव स्वायत्त रहेगा उसका स्वावलंबी रहना स्वाभाविक है तो आवश्यकीय वस्तुओं को निर्मित करेगा, समर्थ रहेगा, उपकार करेगा ही। हर मनुष्य में सहयोग, उपकार प्रवृत्ति रहती है। इसका सर्वेक्षण कर सकते हैं यही उपकारवादी विधि की उपज स्थली है। स्वाभाविक रूप में बचपन की सहयोगी प्रवृत्ति को सुदृढ़ करते जाएँ तो प्रौढ़ावस्था में वह उपकारी हो ही जाता है। इतना ही हमको करना है शिक्षा में ये स्त्रोत को सार्थक बनाने की आवश्यकता एवं प्रावधान चाहिए जिसे मानवीय शिक्षा ही सार्थक बनाएगा। यांत्रिक शिक्षा एवं व्यवसायी शिक्षा इसे सार्थक बनाएगा नहीं। इस ओर ध्यानकर्षण होने पर संभव है व्यवहार और व्यवस्था शिक्षा की ओर, प्रमाण शिक्षा की ओर आपकी प्रवृत्ति हो जाए। प्रमाण का आधार मनुष्य को होना है। यांत्रिक शिक्षा से, व्यवसायी शिक्षा से मानव सामाजिक होना तो बनेगा नहीं। इससे मानव के साथ अनाचार अत्याचार हो न हो किन्तु धरती के साथ अनाचार अत्याचार अवश्यंभावी है। यांत्रिक और व्यवसायक शिक्षा से यह धरती बर्बाद हुई है। अत: इसके विकल्प में मानवीय शिक्षा, व्यवहार शिक्षा, समाधान सम्पन्न शिक्षा, प्रमाण शिक्षा चाहिए। ऐसी शिक्षा के लिए मानवीयता पूर्ण आचरण को मध्य में रखा जाए। मानवीयता पूर्ण आचरण को संरक्षित करने केलिए मानव को समझदार बनाने के लिए सम्पूर्ण वाङ्मय तैयार किया जाए। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 93–94)**

- ...स्वयं को, स्वयं से, स्वयं के लिए ही परीक्षण की बात है। इसकी सबको जरूरत है। इसकी संभावना को सर्वसुलभ बनाने में विधि की बात आती है, नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय के मुद्दे पर ही **शिक्षा संस्कार** कार्य संपादित होता है। जब यह विधिवत संपादित होता है जीवन जागृत हो जाता है फलस्वरूप संबंधों को पहचानने में समर्थ हो जाता है। संबंधों को प्रयोजनों के अर्थ में पहचानता है फलस्वरूप आदमी सुखी हो जाता है।...**(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 98–99)**

विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- चेतना विकास मूल्य **शिक्षा संस्कार** सहित तकनीकी शिक्षण विधि से ही हर परिवार अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या तथा सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या रुप में जीना ही समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व सहज परंपरा वैभवित होना यही अपराध मुक्त परम्परा होना समीचीन है।

  हर नर नारी स्वयं में नियम नियंत्रण संतुलन न्याय धर्म सत्यसहज प्रमाणरुप में वर्तमान वैभव होना आवश्यक है। **(पृष्ठ नंबर: 9)**

- 126. **शिक्षा–संस्कार** :– ज्ञान, विवेक विज्ञान सम्पन्नता। **(पृष्ठ नंबर: 48)**

जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011, मुद्रण:2016)

- ऐसे ज्ञान (अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान) का लोकव्यापीकरण करने के क्रम में कार्यक्रम:–
  1. लोक शिक्षा के रूप में जीवन विद्या
  2. मानवीय **शिक्षा संस्कार** के लिए–शिक्षा का मानवीकरण
  3. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहज प्रमाण **(पृष्ठ नंबर:15)**
- शिक्षा–संस्कार व्यवस्था **(पृष्ठ नंबर:27)**
- मानवीय शिक्षा संस्कार सुलभता **(पृष्ठ नंबर:28)**
- मानवीय शिक्षा संस्कार कार्य **(पृष्ठ नंबर:29)**
- मानवीय शिक्षा संस्कार समिति **(पृष्ठ नंबर:30)**

मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003)

- समझदारी पाँच प्रकार अर्थात् मानवीय **शिक्षा–संस्कार**, न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य, विनिमय–कोष, स्वास्थ्य–संयम कार्य से – पहचान प्रकट रहता है। यह हर नर–नारियों में, से, के लिए मौलिक अधिकार व समाधान है। समझ न होने की स्थिति में भ्रम प्रवृत्तियाँ प्रभावकारी रहती हैं जो हर नर–नारियों में, से, के लिए समस्या, क्लेश, कष्ट के रूप में पाई जाती हैं। **(पृष्ठ नंबर: 2)**
- मानव–लक्ष्य मानवत्व के योगफल में ही जागृति मूलक शिक्षा, न्याय सुरक्षा, उत्पादन कार्य, विनिमय कार्य स्वास्थ्य संयम कार्य है।

संतुलन	नियंत्रण	नियम	(न्याय, धर्म, सत्य)
↓	↓	↓	↓
स्वास्थ्य के	उत्पादित वस्तुओं	उत्पादन	**शिक्षा संस्कार** न्याय,
रूप में	के मूल्यांकन के	कार्य में	सुरक्षा में

(पृष्ठ नंबर: 13)

- समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व सूत्र व्याख्या रूपी आचरण–व्यवहार–कार्य–व्यवस्था ही सर्व शुभ परम्परा है। स्वान्त: सुख वाद, सुविधा संग्रहवाद, व्यक्ति वाद, मनोगत मनोकामना वाद प्रवृत्ति से किया गया कार्य व्यवहार से मानव समाधानित नहीं हुआ, अस्तु सह–अस्तित्व वादी नजरिया से किया गया कार्य–व्यवहार, **शिक्षा–संस्कार,** संविधान–व्यवस्था ही मानव के लिये शरण है।**(पृष्ठ नंबर: 14)**
- सर्व मानव में, से, के लिये जागृति सहज **शिक्षा संस्कार** नियति सहज विधि से होता है। **(पृष्ठ नंबर: 16–17)**
- जागृत परम्परा में ही मानवीय **शिक्षा संस्कार**, मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान मानवीयता पूर्ण परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहित सह–अस्तित्व में अनुभव मूलक व्यवहार व प्रयोग उत्पादन कार्य, विनिमय कार्य, स्वास्थ्य संयम कार्य, न्याय सुरक्षा कार्य, **मानवीय शिक्षा–संस्कार** कार्य सहज प्रमाण सम्पन्नता का बोध सहित स्वयं में विश्वास सम्पन्न होना है। **(पृष्ठ नंबर: 18)**
- जागृत परम्परा में ही जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण–ज्ञान स्वीकृत रहता है और स्वीकार योग्य **शिक्षा संस्कार** प्रणाली पद्धति नीति स्पष्ट रहती है। **(पृष्ठ नंबर: 18)**
- मानव ही जागृत **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक मानवीय संस्कृति–सभ्यता, विधि–व्यवस्था का धारक–वाहक है। यही मानवीयता पूर्ण परंपरा है। **(पृष्ठ नंबर: 39)**
- समझदारी का वैभव सुख, समाधान, समृद्धि, परस्परता में विश्वास और नित्य उत्सव होता ही रहता है। इसके लिए समझदारी, बौद्धिक प्रयोग, विवेकपूर्वक तथा समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व प्रमाणित होने की विधि से सर्व मानव सुखी होते हैं। इसका प्रयोग न्याय व समाधानपूर्वक–सार्थक सुखी होना पाया जाता है। धन का

प्रयोग उदारतापूर्वक करने से सार्थक सुखी होते हैं। बल का प्रयोग दया के साथ जीने देने के रूप में सार्थक होता है। रूप के साथ सच्चरित्रता, यथा – स्व–धन, स्व–नारी, स्व–पुरुष, दयापूर्वक कार्य–व्यवहार विचार से ही सार्थक सुखी होना होता है। यह सर्व शुभ होने की विधि है जो लोक–**शिक्षा** और **शिक्षा–संस्कार** पूर्वक सार्थक होता है। **(पृष्ठ नंबर: 48)**

- **मानवीय–शिक्षा–संस्कार** प्रमाणमूलक होना समाधान है। **(पृष्ठ नंबर: 71)**
- मानवत्व **शिक्षा** संस्कार का सूत्र है। **(पृष्ठ नंबर: 79)**
- **मानवीय शिक्षा–संस्कार** का प्रमाण मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 79)**
- सर्व शुभ के अर्थ में ही मानव सहज परिभाषा मानवीयता की व्याख्या, मानवीयता पूर्ण आचरण संविधान सह–अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से **शिक्षा संस्कार** सुलभ है। **(पृष्ठ नंबर: 82)**
- मानवीय **शिक्षा** संस्कार ही जागृत परम्परा में, से, के लिये सार्थक सूत्र व्याख्या है। **(पृष्ठ नंबर: 82)**
- ज्ञान–विज्ञान–विवेक पूर्ण **शिक्षा** संस्कार ही मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 90)**
- मानवीय **शिक्षा–संस्कार** का दायित्व–कर्तव्य परिवार–सभा से विश्व पारिवार–सभा में दायित्व–कर्तव्य रूप में निहित रहता है। इसका निर्वाह योग्य होना मानवीयता है। **(पृष्ठ नंबर: 92)**
- **शिक्षा–संस्कार** सर्वतोमुखी समाधानकारी ज्ञान–विज्ञान–विवेक सम्पन होने का प्रमाण मानवत्व है। यह परम्परा का कर्तव्य हर मानव सन्तान का अधिकार है। यह मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 92)**
- अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ही 'मध्यस्थ दर्शन' सह–अस्तित्ववाद है। इस पर **शिक्षा** संस्कार में सह–अस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान बोध, जीवन ज्ञान बोध, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान बोध परम्परा होना मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 93)**
- सह–अस्तित्ववादी **शिक्षा** संस्कार में प्रत्येक एक अपने–अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है। समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का अध्ययन मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 93)**
- मानवीय **शिक्षा–संस्कार** में सह–अस्तित्व नित्य प्रमाण होने का बोध सम्पन्न होना, करना–कराना, करने के लिये सहमत होना मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 93)**

संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- Not found

संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- Not found

10 सोपानीय व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षा संस्कार

व्यवहारात्मक जनवाद (संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

1. तीसरे सोपान में शिक्षा संस्कार

शिक्षा–संस्कार की मूल वस्तु अक्षर आरंभ से चलकर सहअस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान सम्पन्न होने तक क्रमिक शिक्षा पद्धति रहेगी। हर गाँव में प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान बना ही रहेगा। गाँव के हर नर–नारी समझदार होने के आधार पर **स्वयं स्फूर्त विधि** से प्राथमिक शिक्षा को सभी शिशुओ में अन्तस्थ करने का कार्य कोई भी कर पायेंगे। इस विधि से प्राथमिक शिक्षा के कार्य के लिए कोई अलग से वेतन या मानदेय की आवश्यकता नहीं रहती है। गाँव के हर नर–नारी शिक्षित करने का अधिकार सम्पन्न होगें।

दूसरे विधि से हर गाँव में प्राथमिक शिक्षा शाला के साथ हर अध्यापक के लिए एक निवास साथ में ग्राम शिल्प का एक कार्यशाला, हर अध्यापक के लिए 5–5 एकड़ की जमीन और 5–5 गाय की व्यवस्था रहेगी यह पूरे गाँव के संयोजन से सम्पन्न होगा। यह शाला, अभिभावक विद्याशाला के रूप में कार्यरत रहेगी। इस दोनो विधि से शिक्षा–संस्कार कार्य को पूरे गॉव में उज्ज्वल बनाने का कार्यक्रम सम्पन्न होगा। मानवीय शिक्षा मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद पर आधारित रहेगी। शिक्षा सहअस्तित्व दर्शन जीवन ज्ञान के रूप में प्रतिपादित होगी। इस प्रकार हम एक अच्छी स्थिति को पायेंगे। जिससे सहअस्तित्ववादी मानसिकता बचपन से ही स्थापित होने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 113–114)**

2. चौथे सोपान में शिक्षा संस्कार (ग्राम समूह परिवार सभा, ग्राम के लिए शिक्षा)

इसमें दस गाँव के लिए शिक्षा संस्था रहेगी। पहले की तरह से दो विधियों से इसे क्रियान्वयन करना बन जाता है। स्वायत्त परिवार में से विद्वान नर नारी को भागीदारी करने का अवसर बना रहेगा। इसमें सामर्थ्यता की पहचान है। पढ़ाई लिखाई रहेगी समझदारी भी रहेगी और प्रतिभा की छः महिमाएँ प्रमाणित रहेगी। ऐसे कोई भी व्यक्ति के किये स्वयं स्फूर्त विधि से शिक्षा संस्था में उपकार के मानसिकता से कार्य करने के लिए अवसर रहेगा। दूसरे विधि से हर दस गाँव से अर्थात 1000–1000 परिवार के श्रम सहयोग से अथवा योगदान से अभिभावक विद्याशाला बनी रहेगी।

इस विद्या शाला में दस गाँव से विद्यार्थियों को पहँुचने के गतिशील साधन को ग्राम समूह सभा बनाए रखेगा। इन साधनो का उपार्जन 1000 परिवार के योगदान से बना रहेगा। हर परिवार उपने श्रम नियोजन के फलस्वरूप उपार्जित किये (धन) गये में से प्रस्तुत किये गये अंशदान के फलस्वरूप विद्यालय सभी प्रकार से सम्पन्न हो पाता है। इसी ग्राम समूह परिवार से संचालित शिक्षा संस्थान में जो भागीदारी करते हैं यह अध्यापक, विद्वान, संस्कार कार्यों को, समारोहो को, उत्सवो को सम्पादित करने का कार्य करेंगे। जैसे जन्म उत्सव, नामकरण उत्सव, अक्षराभ्यास उत्सव, विवाह उत्सव आदि संस्कार कार्यो को सम्पन्न करायेंगे। जहाँ स्वतंत्र उत्सव, मूल्यांकन उत्सव, कार्यक्रम उत्सव को ग्राम परिवार सभा, ग्राम समूह परिवार सभा संचालित करेंगे। हर उत्सव में विद्यार्थियों और अध्यापको के

प्रेरणादायी वक्तव्यों को प्रस्तुत करायेंगे। प्रेरणा का आधार समझदार होने, समझदारी के अनुसार ईमानदारी, ईमानदारी के अनुसार जिम्मेदारी रहेगी। जिम्मेदारी के अनुसार भागीदारी रहेगी। इसी मंतव्य को व्यक्त करने के लिए साहित्य का प्रस्तुतिकरण रहेगा। स्वास्थ्य संयम प्रेरणादायी प्रस्तुतियाँ स्वागतीय रहेगी। शोध अनुसंधान का स्वागत और मूल्यांकन करता रहेगा। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 117–118)**

3. पांचवे सोपान में शिक्षा संस्कार

इसकी भी प्रथम कड़ी शिक्षा–संस्कार कार्यक्रम है। इन शिक्षा संस्कार कार्यो में यथावत एक विद्यालय रहेगा। इसके पहले की सीढ़ी में जो प्रौद्योगिकी बनी रहती है उसके योगदान पर उत्तर माध्यमिक शालाएँ और स्नातक शालाएँ क्रम विधि से कार्य करेगी। क्रम विधि का तात्पर्य हर इन्सान चाहे नारी हो, नर हो समझदार होने के लिए कार्य करेगा। समझदारी का किसी उँचाई इस क्षेत्र परिवार सभा के अन्तर्गत प्रमाणित होना स्वाभाविक है। ऐसे प्रमाण के लिए तमाम व्यक्ति प्रशिक्षित रहेंगे। इसी कारणवश स्नातक पूर्व और स्नातक विद्यालय किसी क्षेत्र सभा के अन्तर्गत संचालित रहेंगे। जिसमें मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद की रोशनी में ज्ञान, विज्ञान, विवेक सम्पन्न विधि से हर विद्यार्थी की मानसिकता में स्थापित करने का कार्य होगा। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:119)**

4. छठवें सोपान में शिक्षा संस्कार

शिक्षा–संस्कार कार्य स्नातक व स्नातकोत्तर रूप में प्रभावित रहेगी। स्नातकोत्तर शिक्षा–संस्कार में जीवन ज्ञान सहअस्तित्व दर्शन में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी। इसी के साथ साथ अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का सम्पूर्ण तकनीकी विज्ञान विवेक कर्माभ्यास सम्पन्न कराना बना रहता है। ऐसी संस्था में कार्यरत सारे अध्यापक संस्कार कार्यो के लिए जहाँ–जहाँ जरूरत पड़े वहाँ–वहाँ पहुँचेगे और कार्य सम्पन्न कराने के दायी रहेंगे। उत्सव सभा मूल्याँकन प्रक्रिया सब ग्राम सभा सम्पन्न करेगी।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:120)**

5. सातवें सोपान में शिक्षा संस्कार

मंडल समूह परिवार सभा दस मंडल परिवार सभा में से एक एक व्यक्ति निर्वाचित होकर मंडल समूह परिवार सभा कर्णधार रहेंगे। सभी प्रकार के कार्यकलापो को तथा पांचों कड़ियो के कार्यक्रमों को इस सातवीं सोपान में प्रमाणित करने का दायित्व रहेगा इसमें सम्पूर्ण मानव प्रयोजनो को स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया जाना कार्यक्रम रहेगा।

ऐसे मानव अधिकार परिवार सभा से ही प्रमाणरूप में वैभवित होते हुए शनै: शनै: पुष्ट होते हुए मंडल समूह परिवार सभा में मानव अधिकार का सम्पूर्ण वैभव स्पष्ट होने की व्यवस्था रहेगी। समान्यत: मानव अर्थात समझदार मानव शनै: शनै: दायित्व के साथ अपनी अर्हता की विशालता को प्रमाणित करता ही जाता है। अपनी पहचान का आधार होना हर व्यक्ति पहचाने ही रहता है। समूचे अनुबंध समझदारी से व्यवस्था तक को प्रमाणित करने तक जुड़ा ही रहता है। प्रबंधन इन्हीं तथ्यो में, से, के लिए होना स्वाभाविक है। समझदारी में परिपक्व व्यक्तियों का समावेश मंडल समूह सभा में होना स्वाभाविक है। ऐसे देव मानव दिव्य मानवता को प्रमाणित करते हुए दृढ़ता सम्पन्न विधि से शिक्षा विधा में शिक्षा–संस्कार कार्य को सम्पादित करते है।

शिक्षा–संस्कार एक प्रथम कड़ी है इसमें अति सूक्ष्मतम अध्ययन, शोध प्रबंधो को तैयार करने की व्यवस्था रहेगी। शोध प्रबंधो का मूल उद्देश्य मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था को और मधुरिम सुलभ करना ही रहेगा। इसके लिए सारी सुविधाएँ जुटाने का कार्यक्रम मंडल समूह सभा बनाये रखेगा। इसका प्रबंधन मंडल सभा के जितने भी प्रौद्योगीकी रहेगी उसकी समृद्धि के आधार पर व्यवस्थित रहेगा। ऐसी व्यवस्था के तहत में और विशाल विशालतम रूप में व्यवस्था सूत्रों को सुगम बनाने का उपाय सदा–सदा शोध विधि से व्यवस्थापन रहेगा। ऐसे शोध कार्यो के लिए सामग्री में सातो सीढ़ियों की गतिविधियाँ रहेगी इस प्रकार शोध प्रबंधन का स्रोत बनी रहेगी। ऐसे शोध प्रबंधन स्वाभाविक रूप में दसो सीढ़ी और पाँचों कड़ियो की समग्रता के साथ नजरिया बना रहेगा। इस विधि से मंडल समूह सभा की प्रथम कड़ी का लोक उपकारी और मानव उपकारी होने के रूप में प्रमाणित रहेगी।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:121–122)**

6. आठवें सोपान में शिक्षा संस्कार

आठवीं सोपान में मुख्य राज्य सभा होगी। जिसके लिए मंडल समूह सभा से एक एक निर्वाचित सदस्य रहेंगे। जिनके आधार पर समूचे कार्यकलाप सम्पन्न होगे। जिसमें पहली कड़ी शिक्षा–संस्कार कार्य की गतिविधियों में सर्वोत्कृष्ट समाज गति, सर्वोत्कृष्ट न्याय–सुरक्षा कार्य, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट विनिमय कार्य गति और सर्वोत्कृष्ट स्वास्थ्य–संयम का शोध संयुक्त रूप में होता रहेगा। ये सभी सोपानीय परिवार सभाओं के लिए प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत होती रहेगी। इस विधि से अपनी गरिमा सम्पन्न शिक्षण कार्य, कर्माभ्यास पूर्ण कार्यक्रम को सम्पन्न करता रहेगा। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:123–124)**

7. नवें सोपान में शिक्षा संस्कार

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा–संस्कार ही रहेगी। प्रधान राज्य परिवार सभा से संचालित शिक्षा समूचे दसो मुख्य राज्यों की संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था की सार्थकता और समग्र व्यवस्था की सार्थकता के आँकलन पर आधारित श्रेष्ठता और श्रेष्ठता के लिए अनुसंधान, शोध, शिक्षण, प्रशिक्षण, कर्माभ्यासपूर्वक रहेगी। प्रौद्योगिकी विधा का कर्माभ्यास प्रधान रहेगा। व्यवहार अभ्यास प्रक्रिया में प्रमाणीकरण प्रधान रहेगा। इस प्रकार यह उन सभी जनप्रतिनिधियो के लिए प्रेरणादायी शिक्षा व्यवस्था रहेगी और लोकव्यापीकरण करने के नजरिये से चित्रित करने की प्रवृत्ति रहेगी। इसी मानवीय शिक्षा कार्यक्रम में साहित्य कला की श्रेष्ठता के संबंध में प्रयोजन के अर्थ में मूल्यांकन रहेगी। श्रेष्ठता प्रबंध, निबंध, कला प्रदर्शन, साहित्य, मूर्ति कला, चित्रकलाओं के आधार पर मूल्यांकन और सम्मान करने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:124–125)**

8. दसवें सोपान में शिक्षा संस्कार

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा संस्कार कार्य रहेगी। शिक्षा संस्कार कार्य में प्राकृतिक संतुलन, (उद्योग वन व खनिज) जीव संतुलन, मानव न्याय संतुलन का कार्य सम्पादित होगा। साथ में जलवायु संतुलन, ऋतु संतुलन, धरती का संतुलन, वन खनिज का संतुलन सम्बंधी अध्ययन करने की व्यवस्था रहेगी। ऐसे अध्ययन के लिए किसी भी

सोपानीय सभा के सीमा में किसी भी व्यक्ति को भेज सकते हैं विद्वान बना सकते हैं और लोकव्यापीकरण के लिए प्रावधानित कर सकते है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:126)**